अध्यात्म बारहखड़ी

रचनाकार

पण्डित दौलतराम कासलीवाल

सम्पादक

ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

राजस्थान

आरम्भिक व प्रकाशकीय

अध्यात्म-प्रेमी पाठकों के हाथों में पण्डित दौलतराम कासलीवाल कृत 'अध्यात्म बारहखड़ी' समर्पित करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है।

बसवा में जन्मे पण्डित दौलतराम कासलीवाल ढूँढारी भाषा के जाने-माने कवि हैं। इन्होंने 'अध्यात्म-बारहखड़ी' की रचना संवत् 1798 (सन् 1741) में उदयपुर में की थी। इसमें शुद्ध आत्मा/परमात्मा/जिनेन्द्र की भक्ति में 'अ' से लेकर 'ह' तक की बारहखड़ी से बननेवाले पदों से रचना की गई है। अध्यात्म रस से भरी इस रचना में कवि ने 'अविनाशी आनन्दमय आतमराम' को गाया है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कवि धर्म के क्षेत्र में ऊँच-नीच की मान्यता को स्वीकार नहीं करते। जो प्रभु को भजता है वह उनका हो जाता है। कवि साधर्मी उसे ही मानते हैं जो परमात्मा की भक्ति में लीन है तथा जो विमुख हैं वे विधर्मी हैं।

आध्यात्मपरक इस ग्रन्थ में शान्त, वैराग्य, भक्तिरस के अतिरिक्त शृंगार, वीर, वीभत्स आदि सभी रसों को यथाअवसर स्थान प्राप्त हुआ है। अरिल, त्रिभंगी, इन्द्रवज्रा, मोतीदान, भुजंगीप्रयात, दोहा, चौपाई, छप्पय, सवैया, सोरठा आदि विविध छन्दों का कुशल प्रयोग कवि ने किया है।

हमें लिखते हुए हर्ष है कि शास्त्र-मर्मज्ञ श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला ने इस ग्रन्थ का सम्पादन कर जैनविद्या संस्थान को प्रकाशित करने के लिए सौंपा, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित 'जैनविद्या संस्थान' जैनधर्म दर्शन एवं संस्कृति ही बहुआयामी दृष्टि को सामान्यजन एवं विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु प्रयत्नशील है। इसका प्रकाशन इसी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है।

पुस्तक प्रकाशन के लिए जैनविद्या संस्थान के कार्यकर्त्ता एवं जयपुर प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

नरेन्द्रकुमार पाटनी — मंत्री

नरेशकुमार सेठी — अध्यक्ष

प्रबन्धकारिणी कमेटी
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

डॉ. कमलचन्द सोगाणी — संयोजक
जैनविद्या संस्थान

प्रस्तावना

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पं. दौलतराम कासलीवाल का जन्म जयपुर रियासत के बसवा कस्बे में हुआ था। आपके पिता का नाम आनन्दराम था। आप जयपुर के राजा जगतसिंह की सेवा में उदयपुर में थे तब वहाँ ही उनकी अध्यात्म सैली (स्हैली/मंडली)के साथी श्री पृथ्वीराज, चतुर्भुज, चीमा पंडित आदि की प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना संवत् १७९८ में की गई थी। इस 'अध्यात्म रस की भरी' रचना में कवि ने 'अविनासी आनन्दमय आतमराम' को गाया है (३००/१०,११)।

पं. दौलतराम कासलीवाल ढूँढारी भाषा के जाने-माने जैन कवि हैं। आपके सरस भजन गायकों और श्रोताओं को भगवद्भक्ति और अध्यात्म का रस पिलाते रहे हैं। भजनों के अतिरिक्त आपकी अन्य कृतियाँ भी हैं। अब तक १८ रचनाओं की खोज की जा चुकी है।[1] इन रचनाओं को हम निम्न तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

(i) मौलिक रचनाएँ

१. त्रेपन क्रियाकोश, २. जीवंधर चरित, ३. अध्यात्म बारहखड़ी, ४. विवेक विलास, ५. श्रेणिकचरित, ६. श्रीपालचरित, ७. चौबीस दण्डक, ८. सिद्ध पूजाष्टक।

(ii) अनूदित रचनाएँ (भाषा वचनिका)

१. पुण्यास्रव कथाकोष, २. पद्मपुराण, ३. आदिपुराण, ४. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, ५. हरिवंशपुराण, ६. परमात्मप्रकाश, ७. सारसमुच्चय।

(iii) टब्बा टीकाएँ

१. तत्वार्थसूत्र टब्बा टीका, २. वसुनन्दि श्रावकाचार टब्बा टीका, ३. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका।

---

१. महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रस्तावना, पृ. ४१-४२, डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल, साहित्य शोध विभाग, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, ई. सन् १९७३।

अध्यात्म बारहखड़ी आपकी एक श्रेष्ठ प्रौढ़ रचना है। इसके पारायण से कवि की भाषा-विशेषज्ञता के साथ भाषा के सम्बन्ध में उनका तात्त्विक बोध भी उजागर होता है। वे भाषा को मात्र अर्थ-संप्रेषण का साधन ही नहीं मानते, वरन् वे पुनः-पुनः शब्द-शब्द में प्रभु स्वरूप देखते हैं और कहते हैं - 'सर्वाक्षर मूरति तू क्यो अक्कार में न होय' (१३१/८)।

अध्यात्म बारहखड़ी रचना को कवि 'भक्त्याक्षर मालिका' कहते हैं। इसमें शुद्ध आत्मा/परमात्मा/जिनेन्द्र की भक्ति में पद रचना की गई है। यह उनकी चेतन देव और सुचेतना देवी की भक्ति में की गई रचना है। वे कहते हैं -

नाम अनंत सुदेव के, देवी नांम अनंत।
आपुन माँहैं पाइए भगवति अर भगवंत।
सव अक्षर आकृति हैं, सकल ज्ञेय मैं देव।
देवी हू सव मैं लसैं विरला वुझै भेव॥ (२९८/४०-४१)

अपने कर्मबद्ध संसारी रूप के प्रति कवि को बड़ा क्षोभ है। कर्मों ने उनके शुद्ध स्वरूप से अंतर कर दिया है और इस अंतर को मिटाने हेतु वे जिनेन्द्र से प्रार्थना करते हैं —

हांतौ पार्यौ नाथ, कर्म नैं मेरौ तोतैं।
हाथ पकरि अव देव, खैंचि लैं अपनैं पुर मैं॥ (२८७/१२)

कवि अच्छी तरह जानते हैं कि जिनेन्द्र स्वयं से अभिन्न हैं और उनसे तथा अन्य सभी ज्ञेयों से भिन्न हैं।

तू हि अभिन्न व्यापकौ स्वामी, निजगुन पर्यय मांहि।
भिन्न व्यापको सकल ज्ञेय मैं, राग दोष मैं नांहि॥ (२९७/२७)

प्रभु रागी-द्वेषी नहीं हैं कि भिन्न पदार्थों के प्रति उपकार में प्रवृत्त हों। ऐसे वीतरागी प्रभु जिनमें अन्य के उपकार करने की इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती कैसे भक्त को हाथ पकड़ कर अपने 'पुर' में खींच लेंगे? पर कवि जानते हैं कि भक्त को अपने भावों का, परिणामों का फल मिल जाता है, उसके पाप कर्म गल जाते हैं, आवरण कर रहे कर्मों का क्षयोपशम हो जाता है और भक्त की आत्मा दीप्तिमान

हो उठती है। प्रभु तो आलम्बन हैं, जगत के सभी पदार्थ आलम्बन हैं और उनके आलम्बनपूर्वक बनने वाले हमारे भावों/परिणामों से हमारी सुगति अथवा दुर्गति की रचना हो जाती है। कवि स्पष्ट जानते हैं कि आदेय स्वरूप एक केवल आत्मा है, अन्य कुछ नहीं —

आतम विनु सव हेय, एक आदेय स्वरूपा। (२८९/२१)

ग्रन्थ के आरंभ में परमात्मा को विविध नामों से अर्थ सहित स्तुति की गई है। आगे ओंकार के सम्बन्ध में कवि ने पद रचना की है और कहा है कि बिना प्रणव के कोई मन्त्र रचना नहीं होती, वह कार्यकारी नहीं होता। आगे श्री को लेकर कुछ पद रचना करने के बाद 'अ' से लेकर 'ह' तक की बारहखड़ी से बनने वाले कतिपय पदों से कवि ने शुद्ध आत्मा/परमात्मा/जिनेन्द्र की भक्ति की है। ये ही हरि हैं, हर हैं, बुद्ध हैं, सुगत हैं, रुद्र हैं, शिव हैं (परिशिष्ट में कतिपय अन्य नाम भी संकलित किये गये हैं) तथा राधा, भवानी, चण्डी आदि इनकी अपने से अभिन्न स्वभावभूत शक्तियाँ हैं। अन्य जो शिव, हरि, माधव आदि हैं वे इन्हीं का ध्यान करते हैं (१०/११४)। वास्तव में जितने भी आस्तिक, आध्यात्मिक पुरुष हैं वे अपने ही चेतन- स्व के सत्-चित्-आनन्द लोक में मग्न होते हैं और कौन आज तक अपने चेतन-स्व को छोड़कर अन्य में प्रवेश कर पाया, अन्य को ग्रहण कर पाया। यह ही चेतन-स्व अपने शुद्ध परमात्मस्वरूप में, जिनेन्द्रस्वरूप में कवि को इष्ट है। मुनिजन गृह-परिवार त्याग कर रूखा-सूखा आहार देह को देकर एकान्त वन में इसी शुद्ध आत्मा/परमात्मा की भक्ति करते हैं, ध्यान करते हैं। आत्मरसिक रुचि वाले गृहस्थ के लिये कवि कहते हैं कि वह घर में राहगीर, पाहुने की भाँति अलिप्त भाव से रहता है और परमात्मा की भक्ति का रसपान करता है।

जो साधु होकर बाह्य धन्धे में पड़ जाते हैं उनके लिए कवि कहते हैं कि वे गूढ़ तत्त्व को प्राप्त नहीं कर पाते। मुँह से जाप करना भी छोड़ अजपा जाप करने को प्रभुदर्शन/आत्मदर्शन का कवि प्रबल साधन मानते हैं (२९१/३१)। कवि बुरी-भली दोनों करणियों (कार्यों) को पाप-पुण्य की रचना करने वाली होने से आत्मोपलब्धि में बाधक मानते हैं (२०९/४९, १७२/६५)। आत्मोपलब्धि इनसे परे है।

परमात्मा सदा ही प्राणी के निकट है (१४६/९)। कवि कहते हैं कि हम में इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों से निरन्तर सोहं-सोहं का नाद गूँज रहा है, पर विरले जन ही उसे सुन-समझ पाते हैं (४०/३३, ३४), अन्य जन उसे सुनते हुए भी अपने परमात्मस्वरूप से बेखबर हैं (९/१०६, १११)। जब भव्यों के घट में इस नाद की गर्जना होती है तो मोह भाग खड़ा होता है (४८/९१)।

कवि की परमात्मा की भक्ति में बड़ी श्रद्धा है। भक्ति भुक्ति एवं मुक्ति की माता है (५३/२२), वह गुणों की जननी होने से सुरमाता है (५६/८)। परमात्मा की भक्ति में बड़ी शक्ति है। कास, सास और अन्य रोग परमात्मा के नाम से, भक्ति से पलायन कर जाते हैं (७७/३८), सर्प घर में प्रवेश नहीं करता, क्रूर पशु आक्रमण नहीं करते, राजदण्ड से मानव मुक्त रहता है। जिस प्रदेश में परमात्मा की भक्ति होती रहती है वहाँ अकाल नहीं पड़ता (७९/६३-६४)। परमात्मा का भक्त निर्भय होता है, ज्ञानी, वीर होता है। संसारी मिथ्यादृष्टिजन मृत्यु के आगे कातर हो जाते हैं (५९/३७), निरन्तर भयभीत रहते हैं।

जो जन हिंसक होते हैं, दूसरे प्राणियों को कष्ट देते हैं, उन्हें परमात्मा की भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती (३६/५४-५५)। मांस-भक्षण तो प्रकट निंद्य है ही, शाकाहारी भोजन में भी बासा, द्विदल मिश्रित, कांजा, बहुबीजा आदि परमात्मा के भक्त ग्रहण नहीं करते। विशेष दयालु तो हरी मात्र का त्याग कर देते हैं। कवि कहते हैं भव-रोग मिटाने हेतु जिनवाणीरूप औषध के साथ अभक्ष्य के त्यागरूप पथ्य आवश्यक है।

कवि धर्म के क्षेत्र में नीच-ऊँच की मान्यता को स्वीकार नहीं करते हैं। प्रभु को तजने पर ऊँचा नीचा हो जाता है और प्रभु को भजने पर नीचा ऊँचा हो जाता है। प्रभु तो शूद्रों का भी नाथ है (२/१९)। प्रभु को जो भजता है वह उसका हो जाता है (७८/५५)। कवि साधर्मी उसे ही मानते हैं जो परमात्मा की भक्ति में लीन है तथा जो विमुख हैं वे विधर्मी हैं (२७४/५२)।

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में पृ. १३४/१०-११ पर कवि कहते हैं कि ज्ञानानन्द-स्वरूप पुरुषाकार, निराकार, निराधार निजमूर्ति को पाने हेतु जिनेन्द्र की कृत्रिम-अकृत्रिम मूर्तियों का भव्यजन दर्शन, पूजन करते हैं।

यह ग्रन्थ अनेकान्तमय शब्द-प्रयोग का अच्छा उदाहरण है (१/२)। जो पद एक अर्थ में परमात्मा के नास्ति पक्ष को प्रकट करता है, दूसरे अर्थ में अस्ति रूप में स्वीकार हो जाता है, यथा — आत्मा असम-महासम, अवरण-वरण वाला, रूपी-अरूपी, संन्यासी-गृहस्थ (निज घर में रहने से), प्रेमी-प्रेम वितीत, अभू-स्वभू आदि हैं।

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ग्रन्थ में जिनेन्द्र भक्ति के अतिरिक्त जिनवाणी प्रणीत आचार्यों आदि के गुण, श्रावकों की क्रियायें, अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या, कर्म प्रकृति की व्युच्छित्ति आदि अनेक ही पक्षों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें विस्तार से समझने हेतु पाठक को अन्य ग्रन्थों का ज्ञान आवश्यक है। कवि जिनवाणी को भवकूप से निकालने वाली नेज (रस्सी) कहते हैं (२४६/३८)।

ग्रन्थ की भाषा २५० वर्ष पूर्व की ढूँढारी भाषा है। कितने ही कठिन शब्दों का अर्थ तो कवि ने स्वयं ने ही दे दिया है। कतिपय शब्दों का अर्थ परिशिष्ट में हमने संगृहीत किया है। समस्त ही कठिन शब्दों का अर्थ देना शक्य नहीं है। अतः सामान्य पाठकगण विद्वज्जनों का समझने में सहयोग लेंगे तो ग्रन्थ के हार्द को भली-भाँति ग्रहण कर पायेंगे।

ग्रन्थ में कवि के काव्य-कौशल का हमें अच्छा परिचय मिलता है। अध्यात्मपरक इस ग्रन्थ में शान्त, वैराग्य, भक्तिरस के अतिरिक्त शृंगार (१६१/७, १५८/६१, ६३), वीर (१५९/६८, २००/१८), वीभत्स (१४७/९) आदि सभी रसों को यथा अवसर स्थान प्राप्त हुआ है। अरिल, त्रिभंगी, इन्द्रवज्रा, मोतीदाम, भुजंगी प्रयात, दोहा, चौपई, छप्पय, सवैया, सोरठा आदि विविध छन्दों का कुशल प्रयोग कवि ने किया है।

इस ग्रन्थ रचना में कवि की अध्यात्म सैली का उपकार है। अध्यात्म सैलियों के सम्बन्ध में कवि लिखते हैं यह भव वन में सेरी (सीढी) है और इस सैली को प्राप्त करने पर बुद्धि मैली नहीं रहती, शैथिल्यभाव छोड़कर दृढ़ चित्त वीर मानव स्वरस को प्राप्त कर लेता है (२८१-८२/१८, २०)। उस काल में जयपुर में, एवं अन्यत्र भी, मन्दिर-मन्दिर में शास्त्र सभायें चलती थीं, शास्त्र पठन, अध्यात्म-चर्चा होती थी और उसके परिणामस्वरूप जहाँ पं. टोडरमलजी,

सदासुखदासजी, भूधरदासजी, बुधजनजी आदि अनेक कवि, विद्वानों द्वारा गद्य-पद्य में ग्रन्थ रचना द्वारा सरस्वती के भण्डार में वृद्धि हुई थी, वहाँ ही समाज में सामान्यजन का रत्नत्रय निर्मल था, चारित्र उज्ज्वल था, इतर जन राजा आदि तक उनकी चारित्रिक दृढ़ता के कायल थे, गाँव से लेकर नगर तक सर्वत्र वे सम्मान्य थे, प्रतिष्ठा प्राप्त थे। उनके प्रभाव से बिना उपदेश और प्रेरणा के ही इतर जन दयावान शाकाहारी थे।

अध्यात्म बारहखड़ी उन ग्रंथ रत्नों में से एक है जो मुद्रण के इस युग में आज तक अमुद्रित, अप्रकाशित है। यह पहली बार जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व तपस्वी सम्राट १०८ आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज एवं आर्यिका माता विजयमतिजी जब चातुर्मास प्रवास में जयपुर में ससंघ विराजमान थे तब चौकड़ी मोदीखाना स्थित छोटे दीवानजी के मन्दिर में इसका चतुर्विध संघ की उपस्थिति में नित्य अपराह्न पारायण हुआ था। आचार्यश्री एवं विदुषी माताश्री अपने श्रीमुख से पद्यों का अर्थ स्पष्ट करते थे एवं परस्पर चर्चा से उपस्थित जनसमुदाय पदों के अर्थ गाम्भीर्य को हृदयंगम करता था। सभी की उस समय से यह इच्छा थी कि यह ग्रन्थ रत्न जिनवाणी के उपासक सभी जनसमुदाय के लाभार्थ प्रकाशित होना चाहिए। उस समय से चली आयी इस भावना को मैंने डॉ. कमलचन्दजी सोगानी, संयोजक जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी को व्यक्त किया तो उन्होंने तत्काल संस्थान द्वारा प्रकाशित करना स्वीकार किया और यह अब पाठकों के सामने है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इस ग्रन्थ की प्रति डॉ. वीरसागर जैन, प्राध्यापक, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, देहली से प्राप्त हुई थी और वह ही इस प्रकाशन का आधार बन रही है। अत: डॉ. जैन विशेषत: धन्यवाद के पात्र हैं। प्रति में दो पद्य अपूर्ण हैं उन्हें अपूर्ण ही मुद्रित किया गया है। विज्ञजनों को अन्यत्र किसी प्रति में वे पूरे मिलें तो हमें सूचित करें।

जयपुर **ज्ञानचन्द बिल्टीवाला**
९ मार्च, २००२

अध्यात्म बारहखड़ी

॥ ॐ नमः परमात्मने ॥ श्लोक ॥

वंदे ज्ञानात्मकं धीरं, वीर गंभीर शासनं।
भक्तिदं भुक्तिमुक्तीशं, योगिनं कर्म दूरगं॥ १॥

गुरून्महामुनीन्नत्वा, दृष्ट्वानेकांत पद्धतिं।
नत्वा जितांह्रिपद्येव, वक्षे नामावलीं प्रभो॥ २॥

— दोहा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वंदों आदि अनादि कौं, जो युगादि जगदीश।
कर्म दलन खलबल हरन, तारनतरन अधीश॥ १॥

केवल ज्ञानानंदमय, परमानंद स्वभाव।
गुन अनंत अतिनाम जो, शक्ति अनंत प्रभाव॥ २॥

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध जो, अति समृद्ध अवनीश।
ऋद्धि सिद्धि धर वृद्धि कर, ईश्वर परम मुनीश॥ ३॥

शक्ति व्यक्ति धर मुक्तिकर, सदा ज्ञप्तिधर संत।
वीतराग सरवज्ञ जो, सो श्रीधर भगवंतः॥ ४॥

केवलराम अनाम जो, रमि जो रह्यौ सब मांहि।
ऐसी ठौर न देखिए, जहां देव वह नांहि॥ ५॥

केवल रूप अनूपकौं, हर हरि गणप दिनेश।
अतुल शक्ति मुनिवर कहै, सो विधि बुद्ध जिनेश॥ ६॥

वंधन हर हर नाम धर, हरी पराक्रम रूप।
तमहर दिनकर देव जो, गणनायक जगभूप॥ ७॥

शक्ति अनंतानंत जो, अतुलशक्ति गुणधाम।
विधि कर्त्ता सु विरंचि जो, प्रतिबोधक बुधनाम॥८॥

मदन जीत जगजीत जो, जिनवर जगत निधांन।
रम्यरमण अभिरांम जो, ज्ञानवांन भगवांन॥९॥

परमाल्हादक चंद जो, सुरपति क्षेत्राधीश।
नरपति अखिल प्रपाल जो, आदिपुरुष आदीश॥१०॥

संत महंत अनंत जो, रमाकंत भगवंत।
अरि रागादि निहंतको, अंत रहित अरहंत॥११॥

रमैं शुद्ध चिद्रूप मैं, शुद्ध चेतना जोय।
कमला विमला जो रमा, शक्ति प्रभू की सोय॥१२॥

ईश निरीश अनीश जो, धीश अधीश मुनीश।
जगत शिरोमणि सिद्ध जो, श्री जगपति अवनीश॥१३॥

आतमराम अकाम जो, काम रूप निर्नाम।
रामदेव मनराम जो, सुंदर सरस विराम॥१४॥

अखिल वेद विद्वान जो, अति उज्जल परभाव।
महाराज द्विजराज जो, शुक्ल रूप भव नाव॥१५॥

क्षिति पालक भय टालको, शरणागत प्रतिपाल।
धनुरद्धर धरणीधरो, क्षत्री कहियत लाल॥१६॥

तुलाधार अविकार जो, सुवरण रूप प्रशस्त।
ज्ञान तुला मैं तोलिया, लोकालोक समस्त॥१७॥

शर्मा वर्मा गुप्त जो, समिति गुप्ति धर धीर।
दासनि कौ आधार जो, महाव्रती अतिवीर॥१८॥

सुश्रूषा प्रतिभास जो, अखिल कर्म ज्ञातार।
शूद्रनि हूं कौ नाथ जो, स्याम सकल दातार॥१९॥

शुक्ल रक्त अति पीत जो, सुवरण वरण विशाल।
हर्‌योभर्‌यो घनस्याम जो, रहित स्यामता लाल॥२०॥

अवरण वरण कृपाल जो, रूप अरूपी नाथ।
मूरतिवंत अमूरती, जाकै निजगुण साथ॥ २१ ॥

व्रती ब्रह्मचारी सदा, लिखै घट माँहि।
अति गृहस्थ प्रभो स्वस्थ जो, यामैं संशय नाँहि॥ २२ ॥

वन विहार निरधार जो, वानप्रस्थ हू नांम।
जिती जितेन्द्री धीर जो, महावीर गुणधाम॥ २३ ॥

पातक सकल निपातको, मायाचार निपात।
अविनस्वर अनिपात जो, सो श्रीपति श्रीपात॥ २४ ॥

दंडै मन इंद्री सवै, खंडै विषय विकार।
मंडै ज्ञान विराग जो, सो दंडी अविकार॥ २५ ॥

त्रिविध कर्म दंडै प्रभु, नाम त्रिदंडी सोइ।
चंडी प्रकृति धरै महा, मायारूप न होइ॥ २६ ॥

हंसनि को आधार जो, परमहंस जग भूप।
हिंसाकर्म निवारको, धर्म अहिंसा रूप॥ २७॥

भयटारक भट्टारको, भवतारक भ्रम दूर।
कारक परम समाधि को, सकल उपाधि प्रचूर॥ २८ ॥

श्रीगुर सूरि अध्यापको, उपाध्याय गुनपूर।
उपन्यास निज पास को, रागादिक चकचूर॥ २९ ॥

शमी दमी प्रभू संयमी, साधु अवाध सुजांन।
ऋषि मुनि यति श्री पूज्य जो, अणागार भगवांन॥ ३० ॥

आचारिज आरिज प्रभू, अति संविग्न कृपाल।
संवेगी निर्वेद जो, जैन धर्म प्रतिपाल॥ ३१ ॥

निराभर्ण जगभूषणो, दिगपट दीनदयाल।
प्रभू दिगंवर देव जो, थिर चर को रछिपाल॥ ३२ ॥

योगी योगारूढ़ जो, जंगमथावर ईश।
यती तपोधन श्रुतिधरौ, संन्यासी जुगदीश॥ ३३ ॥

सं कहिये सम्यक दसा, न्यास कहावै थाप।
सम्यक थापक शुद्ध जो, संन्यासी निहपाप॥ ३४॥

प्रेमी प्रेम प्रकाश जो, प्रेमाप्रेम वितीत।
प्रेमलछिना भक्ति धरि, ध्यांवैं जाहि अतीत॥ ३५॥

विरकत वैरागी महा, भौतिक भूति स्वरूप।
अति विभूति अनुभूति जो, रहित प्रसूति अरूप॥ ३६॥

गोरक्षक है नाथ जो, शंकर सुखकर वीर।
वीतराग परब्रह्म जो, करुणाकारण धीर॥ ३७॥

दायक सब कल्याण को, तातैं हर कहाय।
शिव कल्याण स्वरूप जो, परमेश्वर जिनराय॥ ३८॥

निर्गुण निरबंधन प्रभू, सगुण अगुण तैं दूर।
व्यापक विश्व अविश्व जो, राम रमा भरपूर॥ ३९॥

सव देवनि कौ देव जो, परम उपासन रूप।
सदा उभयनय भास जो, एकानेक स्वरूप॥ ४०॥

वैदिक तांत्रिक तत्त्व जो, सिद्धांती अतिसिद्धि।
शुद्धि वृद्धिधर सिद्ध जो, धारक अतुल समृद्धि॥ ४१॥

शिवमारग पारग प्रभु, जिनमारग कौ मूल।
करुणासिंधु अगाधजो, पालक सूषिम थूल॥ ४२॥

धर्मराय जिनराय जो, देव धर्म गुर सोय।
परमगुरू मर्म जु गुरू, कर्मगुरू हरि होय॥ ४३॥

और न दूजौ देवता, और न दूजौ पंथ।
शिव विरंचि हरि बुद्ध सो, जो जिनवर निरग्रंथ॥ ४४॥

सूत्री आगम धारको, श्रुति संमृति कौ मूल।
पौराणिक परवीण जो, अध्यात्म अनुकूल॥ ४५॥

जो स्वरूप व्यापी सदा, पर रूपी न कदापि।
स्वस्थ समाहित स्वगत जो, सर्वातीत उदापि॥ ४६॥

व्यापि रह्यो प्रभु ज्ञान करि, लोक अलोक हु मांहि।
लोक शिखर राजै सदा, सर्वगतो सव पांहि॥ ४७॥

सव वामैं वह सवनि मैं, वह है सवतैं भिन्न।
वातैं सवही भिन्न हैं, वह भिन्नो हु अभिन्न॥ ४८॥

नरहरि धर्म धुरंधरो, धरणीधर जगभूप।
कर्मनाग निरदलन जो, अतिवीरज गुण रूप॥ ४९॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
नर कहिये बलवांन कौं, सिंह महाबलवांन।
महाबली नरसिंह जो, पुरुषोत्तम भगवांन॥ ५०॥

स्वैतत्त्व स्त्रिष्टी सवै, विरचै अततनि तैं जु।
वही विरंचि न दूसरौ, सही वसैं शिव मैं जु॥ ५१॥

महाकाल हर कष्टहर, महादेव निज देव।
सो प्रभु महा महेश्वरो, जिन वर देव अछेव॥ ५२॥

कर्त्ता आतम भाव कौ, धर्त्ता धृति कौ सोय।
हर्त्ता सकल विभाव कौ, भर्त्ता जग कौ जोय॥ ५३॥

गुन अनंत के जोगतैं, जोगी कहिये सोय।
अतुलित परमानंद कौ, भोगनहारौ होय॥ ५४॥

जोगी भोगी हरि सही, और न जोगी जोग।
और न भोगी भोग है, करि जन जिन संजोग॥ ५५॥

सर्वग सर्वज्ञो प्रभू, गुणधर गणधर साथ।
जयकारी जगदीस जो, सो गणेश गणनाथ॥ ५६॥

जो गुण गण कौ ईस है, जाकै ईश न कोय।
परब्रह्म परमातमा, परिपूरण प्रभु सोइ॥ ५७॥

जगनायक शिवनायको, मुनि नायक मुनि भेस।
विनुनायक परमेश्वरो, अखिल रूप अखिलेश॥ ५८॥

देव विनायक और नहिं, सोइ विनायक देव।
नायक देव अदेव कौ, दायक सकल अछेव॥ ५९॥

बुद्धि निवास कुबुद्धि हर, परणति शुद्ध धरेय।
शक्ति अनंत जिनिंद जो, आप विसाल करेय॥ ६०॥

शक्तिरूप सद्रूप जो, चिनमूरति चिद्रूप।
कर्मशत्रु निरनासनो, महारुद्र तद्रूप॥ ६१॥

दयावांन दैवांन जो, थिरचर को प्रतिपाल।
परमदयाल कृपाल जो, जोगी जुगति विशाल॥ ६२॥

सुगत सुगति दातार जो, सुमति कूमति तैं दूर।
नागर नित्य निरंजनो, निरवाणी भरपूर॥ ६३॥

भूधर गोधर गोप्य जो, प्रगट रहित गति च्यारि।
जाकौं जग जंजाल की, लागै नांहि बयारि॥ ६४॥

भुक्ति मुक्ति कौ मूल जौ, गोस्वामी गुणपाल।
जग जीवन जगनाथ जो, जग त्यागी जगभाल॥ ६५॥

केवलज्ञान प्रकाश मैं, सर्व प्रकाशै ज्ञेय।
आकरषै निजभाव जो, सो निज चेतन धेय॥ ६६॥

आकर्षण तैं कृश्न सो, व्यापक विश्नु असेस।
जिष्न पूज्य जगदीश जो, त्रिश्ना रहित अलेश॥ ६७॥

आराधै आराध्य कौं, निज आराधन सोय।
सब वाधातैं रहित जो, परणति प्रभु की होय॥ ६८॥

निज सत्ता निजभूति जो, ज्ञान चेतना जोय।
परमाह्लादनि शक्ति जो, रामा रूप न कोय॥ ६९॥

द्रव्य थकी नहि दूसरी, द्रव्य हि की परजाय।
सो राधा परमेश्वरी, परमेश्वर की काय॥ ७०॥

सो तामैं प्रभु ताहि मैं, वस्तु अभेद विलास।
तातैं राधारमण सों, शक्ति व्यक्ति परकास॥ ७१॥

गोपै निज मैं निज कला, प्रगटै आपुहि मांहि।
कला गोपिका जा विषै, विषै रूप सो नांहि॥ ७२॥

गोपीनाथ अनाथ सो, नित्य विहारी सोय।
अमित प्रदेश विहारवन, आपुहि माँहैं होय॥ ७३॥

विमलभाव नाटक नटै, नटवा अदभुत जोय।
नटवरलाल रसाल सो, रंग विहारी होय॥ ७४॥

प्रभु त्रिभंगी लाल जो, सकल त्रिभंगी भास।
सप्तभंग प्रतिभास जो, धारै अतुल विलास॥ ७५॥

एकानेक स्वरूप जो, भेदाभेद प्ररूप।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
नित्यानित्य निरूपकौ, अस्तिनास्ति द्वय रूप॥ ७६॥

हानिवृद्धि तैं रहित जो, जाहि न व्यापै काल।
सदा एकरस देव जो, थिरच्चर कौ प्रतिपाल॥ ७७॥

गुण पर्याय स्वभाव जो, सर्व विभाव वितीत।
अतुल प्रभा अगणित कला, जगनाथो जगजीत॥ ७८॥

वहिरंगा संगा तजें, अमला कमला पासि।
सो कमलापति ईस जो, काटै जग की पासि॥ ७९॥

कमला नाम न और कौ, कमला निज अनुभूति।
हृदै कमल राजै सदा, आत्मशक्ति प्रभूति॥ ८०॥

नांहि प्रदेश विभिन्न है, कमला अर प्रभु के जु।
आप वस्तु सो वस्तुता, एक रूप अधिके जु॥ ८१॥

आप ईश सो ईश्वरी, आप शांत सो शांति।
आप पद्म पद्मा वहै, आप कांत सो कांति॥ ८२॥

पद्मा परणति पद्म की, वसै पद्म कै मांहि।
पद्मनाभ कौं छांडि कैं, जाय और कहुं नांहि॥ ८३॥

कमला क्रिया कृपाल की, करता तैं नहि भिन्न।
कर्त्ता कर्म क्रिया त्रिधा, एक हि वस्तु अभिन्न॥ ८४॥

विद्या विभा विशाल की, स्वाभाविक परजाय।
कर्म कलंकहि नहि लिपै, कमल समान रहाय॥ ८५॥

न्यारी होय न नाथ सौं, नाथ हि कौ वह रूप।
भामा [illegible] अनूप ॥८६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जल तरंग दुविधा नहीं, भानु रस्मि नहि भेद।
तैसे कमला हरि विषै, श्रुति गावै जु अभेद॥८७॥

रत्न रत्नद्युति भेद नहि, ससि अर जौंन्ह न भेद।
तैसे चेतन चेतना, एक हि रूप अभेद॥८८॥

पुरुष न नारि कदापि जे, वस्तु अमूरत शुद्ध।
चिनमूरत चैतन्य जे, देवी देव प्रबुद्ध॥८९॥

सब घटमंदिर मैं प्रभु, सदा वसैं निज रूप।
विरला दरसन पावई, सम्यगदृष्टि अनूप॥९०॥

रमैं सकल मैं धीर जो, महावीर गंभीर।
रमता रांम विराम सो, रमा रमण वर वीर॥९१॥

सुर नर असुर सुखेचरा, चारण चित्त हरेय।
अति अभिराम सुधाम सो, राम नाम जग ध्येय॥९२॥

सब क्षेत्रनि मैं रमि रह्यौ, क्षेत्रपति भगवांन।
क्षेत्री क्षेत्रनिधांन जो, अति क्षेत्रज्ञ सुजांन॥९३॥

सिद्धक्षेत्र कौ नाथ जो, सव क्षेत्रनि कौ नाथ।
क्षेत्र कहावै देह हू, जाकै देह न साथ॥९४॥

असंख्यात परदेस जो, वस्तु तनौं विस्तार।
सो जिन कौ निजक्षेत्र है, नित्यानंद विहार॥९५॥

परक्षेत्र जु परद्रव्य हैं, जड़ चेतन बहु रूप।
मूरत और अमूरता, नित्य अनित्य स्वरूप॥९६॥

लोक मांहि सब पाइए, न हि अलोक मैं कोय।
तहां अकेलौ गगन ही, क्षेत्र अनंतौ होय॥९७॥

लोकालोक समस्त ही, अवलोकै भगवांन।
राखै अवगम उदर मैं, ज्ञायक परम सुजांन॥९८॥

स्वपरक्षेत्र पालक प्रभू, क्षेत्रपाल प्रतिपाल।
क्षेत्र न पीरै कोय कौ, करुणासिंधु विशाल॥९९॥

क्षेत्राधिप नहि दूसरौ, जिन विन जगत मझार।
सब क्षेत्रनि मैं सो वसै, लसै आप मैं सार॥१००॥

आप अकेलौ सर्बधर, सर्वेश्वर सव रूप।
अनेकांत आगम प्रगट, अनुभव रूप अनूप॥१०१॥

और न दूजो देवता, एक देव अतिभेव।
केवल भाव प्रभाव जो, परमानंद अछेव॥१०२॥

क्षमाधार क्षम देव जो, निर्मल सलिल स्वभाव।
पाप भस्म कर अनल सो, निस्संगी समवाय॥१०३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रभु अलिप्त आकाश सो, सोम समो अति शांत।
अर्क समो अति भास जो, अतुल तेज अतिकांत॥१०४॥

यज्य यजन यजमान सो, अष्टमूरती देव।
दिगाधीश दिगपाल जो, सुरनर धारहि सेव॥१०५॥

सो कमलाधर जगप्रभू, वसै सदा मो मांहि।
मैं मूरख न्यारो रहौं, मो सम मूरख नांहि॥१०६॥

वाही के परसाद तैं, खोलू मिथ्या ग्रन्थि।
तव वासौं विछुरूं नहीं, ध्याऊं हूं निरग्रन्थ॥१०७॥

हृदै कमल पधरायकरि, केवलदास कहाय।
पूजौं अहनिसि भावकरि, चिंता सकल विहाय॥१०८॥

रहौं सदा हरि के निकट, तजौं न हरि कौ संग।
जिन रंगैं रत्ता रहूं, तजिकै द्विविधा संग॥१०९॥

नमो नमो वा देव कौं, द्रव्यभाव मन लाय।
सव ते न्यारौ होय कैं, सेऊं वाके पाय॥११०॥

सेवक सेव्य सुभाव इह, साधकता मैं होय।
साध्य अवस्था आप ही, और न दूजौ कोय॥१११॥

— छंद नाराच —

प्रकृत्यभाव दूरगो, तू ही जिनो हरो हरी,
प्रभु हिरण्यगर्भ जो, अगर्भ जो परापरी।
महा स्वशक्ति पूरणो, पुरांण जो रमापती,
रमा जु नाम भाम नांहि, शक्तिरूप है छती॥ ११२॥

प्रभु विसेस है असेस, शक्ति कौ निवास है,
सुचिद्विलास ज्ञान शक्ति, व्यक्तता विकास है।
अवांतरो महा सुसत्त्व, तू जु है विधिंकरो,
शिवंकरो भयंहरो, तमंहरो दिनंकरो॥ ११३॥

रमावरो उमावरो, जपै जु ताहि माधरो,
सुधातरो मुधाहरो, कहै सुपंथ पाधरो।
सुयोगिताश्च नायको, महासुयोग दायको,
अनायको विनायको, अकायको अमायको॥ ११४॥

अनंतभाव ज्ञायको, सवै जु वात लायको,
महा विमोहघायको, धरें जु बोध सायको।
शिवोभवो धवो सदा, शिवो सही रमा धरो,
विभू प्रभू महाप्रभू, स्वभू अभू क्षमा धरो॥ ११५॥

महा सुदेवदेव देव, है अनंत भेव जो,
नरोत्तमो सुरोत्तमो, धुरोत्तमो अछेव जो।
तुही तुही तुही सही, न त्तो समोन्य दूज ही,
जहाँ तहाँ लखैं सुसाधु, एक तोहि पूज ही॥ ११६॥

अणाथि को जु आथि को, प्रभु नराधिनाथ को,
विभूतिनाथ नाथ है, सदा जु सर्व साथ को।
परंपरो परापरो, पुरांण पूरणो प्रभू,
सही जु तीरथंकरो हितंकरो महाविभू॥ ११७॥

प्रभा प्रपूर केवली, अनाद्यनंत ज्ञायको,
सुरासुरा सुपायको, दयाल देव नायको।
जनोत्तमो जिनोत्तमो, जितोत्तमो जगोत्तमो,
परोत्तमो पुरोत्तमो, गुरोत्तमो वरोत्तमो॥११८॥

चिदात्म है सुखात्म है, अनंत भाव आत्म है,
भवांत है अघांत है, तमांत है परात्म है।
सुव्यापको अव्यापको, महामुनी अलिप्तजो,
सदा समाधि रूप नाथ, धीरवीर त्रिप्त जो॥११९॥

निरीह जो नृसीह जो, अवीह जो निरीश्वरो,
मुनीश्वरो अनीश्वरो, प्रभास्वरो यतीश्वरो।
सही जु रांम नांम है, विराम हे अकांम है,
अनांम है सुधांम है, अनंत नांम ठांम है॥१२०॥

नही जु और कांम को, वही जु एक कांम को,
प्रभु अनेक ग्रांम को, धनी अनंत दांम को।
सुसिद्ध है प्रसिद्ध है, विरुद्ध कौ विनास है,
सही जु अर्हदेव है, अनंतज्ञान भास है॥१२१॥

सुसूरि है प्रभूरि है, दिष्या शिष्या प्रदायको,
अध्यातमी अध्यापकों, अलोक लोक ज्ञायको।
सुसाध है अगाध है, असाध को असाध्य है,
सुसाध्य है अराध्य है, उपाधिनां अवाध्य है॥१२२॥

प्रजापती सुगोपती, सदा सुगोरखोजती,
तु ही अनंत बोध दे, सुदत्त है धरापती।
अमूरती असूरती, अधूरतो निरंतरो,
महा अनंतमूरतो, विभाव तैं अनंतरो॥१२३॥

अद्वैत भाव मुक्त जो, सद्वैत भाव मुक्त जो,
अनेक एक दोय रूप, है अरूप युक्त जो।
निराकृति जु साकृति, विशेष भाव देव जो,
स्वभाव भाव रूप जो, सुभूप है अछेव जो॥१२४॥

सदा सुबुद्धिराधिका, पती मुनीश ईश जो,
सवै कुबुद्धि खंडनो, महाव्रती अतीश जो।
सुविप्रबर्ण तारणो, जु क्षत्रि वंश धारणो,
सुवैश्य वंसतारणो, त्रयी उधार कारणो॥ १२५॥

जु पुंस नारि औ नपुंस, शूद्र हू सुधारणो,
सुरासुरा सुनारकी, पसुगणा उवारणो।
सही अनादिनाथ है, मुनिंद आदिनाथ जो,
प्रभु युगादि देव है, सदा जु सर्व साथ जो॥ १२६॥

महायती अजीत जो, असंभवो सुशंभवो,
सदाभिनंदनो जिनो, मतीश नाथ ब्रंभवो।
सुपद्मनाभ पद्मजोनि, पद्मनाथ धीर जो,
सही सुपास है प्रभु, रहै जु पास वीर जो॥ १२७॥

सुचन्द्रनाथ चन्द्रधार, चन्द्र कोटि ज्योतिसो,
अनंत ज्योति धार जो, अनंत सूरि द्योति सो।
सुकुंद पुष्प तुल्य दंत, पुष्पदंत कंत सो,
सुशीतलो श्रियंकरो, श्रियांसनाथ संत सो॥ १२८॥

सदा सुवास देव पूज्य, वासुपूज्य देव जो,
सुनिर्मलो अनंत जो, सुधर्मनाथ सेव जो।
प्रभू जु शांतिनाथ जो, प्रशांत सर्वकारनो,
विभू जु कुंथवादि जीव, रासि कष्ट टारनो॥ १२९॥

सुकुंथनाथ कीटनाथ, चक्रनाथ देव जो,
अरो अजो रजो हरो, हमैं जु देहु सेव जो।
त्रिलोकनाथ मल्लनाथ, मोह मल्लजीत जो,
अनंत जीत है अजीत, सुव्रतो अतीत जो॥ १३०॥

मुनि सुव्रत्त दायको, प्रभू धनी सुव्रत्त को,
नमैं सुरासुरानरा, नमीशनां अव्रत्त को।
नही जु कृष्णभाव सो, सही जु कृष्ण रूप सो,
सदा जु कृष्ण ध्येय है, सु नेमिनाथ भूप सो॥ १३१॥

सदा जु पासनाथ जो, रहै नजीक नाथ जो,
महा सुवीरनाथ जो, अतिंत धीर नाथ जो।
सदाजु बर्द्धमांन जो, नहीं जु हीयमांन जो,
मतिंकरो गतिंकरो, जु सन्मती अमांन जो॥१३२॥

इत्यादि अनंत नांम, देव वीतराग जो,
पुनीत है अनंत धांम, वाहि सौं जु लाग जो।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
महा विदेह खेतरी, अखेतरी अनेक जो,
अनादि है अनंत रूप, तीर्थनाथ एक जो॥१३३॥

नमो नमो जु अर्ह सिद्ध केवली निरंजना,
गणाधिपा श्रुताधिपा, व्रताधिपा अरंजना।
सुरंजना सबै जु लोक, भारती जिनोद्भवा,
मुझे जु देहु शुद्ध तत्त्व, ईश्वरी मुखोद्भवा॥१३४॥

— दोहा —

सर्वग के मुख तैं भई सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती सुर नर मुनि जन सेवि॥१३५॥

अक्षर जो न क्षरै कभी, प्रभू अक्षरातीत।
सोई अक्षर बांवनी प्रकट करै जग जीत॥१३६॥

तेतीसौं विंजन कहै, सुर चौदा सब होय।
जिह्वा मूली पुलतअर, गज कुंभाकृति जोय॥१३७॥

अनुस्वारो जु विसर्ग है, ए सब बांवन अंक।
संयोगी द्वित अक्षरा, सब कौ प्रगट शिवांक॥१३८॥

सब अक्षर के आदि ही, राजै प्रणव स्वरूप।
ॐकार अपार प्रभु, आपै आप अनूप॥१३९॥

सो अक्षर नहि और है, अक्षर रूप सुआप।
तातैं ॐ आप है, हरै सकल संताप॥१४०॥

देव शास्त्र गुरु की कृपा, तातैं आनंद पूत।
भाषैं अक्षर बांवनी, नमि जिन मुनि जिन सूत॥१४१॥

आगै प्रणव स्वरूप भगवांन कौं नमस्कार करि, अध्यात्म बारखड़ी आरंभियै है॥६॥

— श्लोक —

प्रणवं प्रथमं वंदे, यज्जिनेंद्रैक शाशनं।
सर्वाक्षर प्रजा यस्य, राजते श्रुति वर्द्धिनी॥ १॥

— दूहा —

वंदौ श्री भगवांन कौं, श्रीवल्लभ जो देव।
श्रीधर श्रीपरणति धरे, प्रणव रूप अतिभेव॥ २॥

प्रणवो प्राण वहै प्रभु, राजै श्रुति की आदि।
प्रणव समांन न और है, भगवत रूप अनादि॥ ३॥

— चौपई —

ॐ कार परमरस रूप, ॐ कार सकल जगभूप।
ॐ कार अखिल मत सार, ॐ कार निखिल ततधार॥ ४॥

ॐ कार सबै जपमूल, ॐ कार भवोदधि कूल।
ॐ कार मयी जगदीश, ॐ कार सुअक्षर सीस॥ ५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ॐ दरसी श्री भगवंत, ॐ परसी मुनिवर संत।
ॐ ध्यायक श्रीपति स्वांमी, ॐ ज्ञायक अंतरजांमी॥ ६॥

ॐ भासक श्री जिनदेव, ॐ विथरित गणधर देव।
ॐ कार जिनागमसार, ॐ धारण मुनिवर धार॥ ७॥

ॐ कार महाअघनाश, ॐ कार सकल श्रुति भास।
ॐ भेद न जानैं मूढ़, ॐ कार परमपद गूढ़॥ ८॥

— छंद बेसरी —

ॐ सम को मंत्र जु नांही, पंच परम पद याकै मांही।
ॐ मंत्र जु भगवत रूपा, ॐ श्रुति संमृति को भूपा॥ ९॥

ॐ मृत्यु काल जे ध्यावैं, ते उरध गति निश्चय पांवैं।
ॐ ध्यावत प्राण जु त्यागैं, ते सदगति कौं मारग लागैं॥ १०॥

ॐ अक्षर सीस विराजै, ॐ मय जिनवर धुनि गाजै।
ॐ एकाक्षर मंत्र जु भाई, मेटि जु भवथिति शिवहँ मिलाई॥ ११॥

सकल त्यागी जे आसा पाशा, मोह त्यागि जे हौंहि निरासा।
ते साधु याकौं तत पांवैं, या विनु जग जन जनम गुमांवैं॥ १२॥

प्रणवा सकल ग्रंथ कै आदी, इह प्रणवा है तंत्र अनादी।
महा मुनीश्वर यामैं लागैं, याकौं पाय परम रस पागै॥ १३॥

तीन वरण करि प्रणव कहाया, अवरण उवरण मम्मि लिभाया।
पंच इष्ट हैं याके मांही, इष्ट मंत्र या सम को नांहीं॥ १४॥

करि कुंभक जिन प्रणव जु ध्यायो, तित निर्वाण पुरी पथ पायो।
प्राणायांम जु तीन स्वरूपा, पूरक कुंभक रेचक रूपा॥ १५॥

ॐ स्वेत बर्ण जे ध्यांवै, लबधरि चित्त न कहुं वहांवैं।
ते पांवैं निज शुद्ध स्वरूपा, ब्रह्म वीज है प्रणव अनूपा॥ १६॥

सुवरण वर्ण प्रणव जे ध्यांवै, स्तंभन हेतु सवै श्रुति गांवैं।
पवन चित्त ए दोऊ थंभै, दोऊ थंभी जु शिव उपलंभै॥ १७॥

रंग सुरंग सु ॐ मंत्रा, ध्यांयें होय वशीकृत तंत्रा।
औंर न काहू कौं वसि पारैं, मनहि वशी करि निज मैं धारैं॥ १८॥

स्याम रंग इह प्रणव जु ध्यांयौ, शत्रु नाश कर जिनहि बतायौ।
जीव तणौं अरि कोई न जीवा, रागादिक अरि हौंहि सदीवा॥ १९॥

रागादिक नाशन कै हेतू, प्रणव स्याम कौं ध्याय सचेतू।
स्वेत ध्याय है शुक्लजु भावा, शुक्ल जु ॐ शुक्ल उपावा॥ २०॥

ॐ कार निरंजन रूपा, ॐ कार सकल श्रुति भूपा।
ॐ कार निधांन अनूपा, ॐ कार प्रधान निरूपा॥ २१॥

ॐ वर्जित तंत्र न सोहै, ॐ वर्जित मंत्र न मोहै।
ॐ विनु जंत्र न बल फोरैं, ॐ विगरि न पातिग तोंरैं॥ २२॥

ॐ विनु विद्या नहि आवै, ॐ विनु गुरु नांहि पढावै।
ॐ विनु न वखान उचारैं, ॐ विनु कछु धर्म्म न धारैं॥ २३॥

ॐ विनु वर्णाश्रम नांहीं, ॐ ध्यांन निराश्रम मांहीं।
विंदु युक्त ॐ कारो साधू, ध्यांवै मुनिवर तत्व अराधू॥ २४॥

आगम सरवस ॐ कारा, ॐ कार करण भवपारा।
ॐ अमृत और न कोई, इह जु सुधातर अदभुत होई॥ २५॥

महाभाग इह अमृत चाखै, महाभाग इह निधि दिढ राखै।
ॐ कार सकल ऋषि साखै, ॐ नमि आनंदज भाखै॥ २६॥

इति प्रणव स्तुति। आगे श्र अक्षर श्रीकार है ताकी द्वादस मात्रा कहै है।

— श्लोक —

श्रमणं श्राद्ध निस्तारं, श्रियोपेतं च श्रीधरं।
श्रुतीशं श्रूयमाणं च, श्रेयं पुंजं यशस्करं॥ १॥
श्रैमतागम पारीणं, श्रोत्रीन्पारकरं विभुं।
श्रौत धर्म प्रणेतारं, श्रंकं श्रस्कारकं भजे॥ २॥

— दोहा —

श्रमणाधिकतर श्रमणगुर, श्रमणधुरंधर देव।
श्रमण कहैं मुनिराय कौं, श्रमण करैं प्रभु सेव॥ १॥

श्रमहर भ्रमहर भ्रांतिहर, प्रभु श्रयणीय विशेस।
जाकौं श्रम उपजैं नहीं, तारै भक्त असेश॥ २॥

श्रवण सु जाके गुननि कौ, करै भवोदधि पार।
श्रवण रहित ते वधिर हैं, सुनैं न प्रभु गुन सार॥ ३॥

श्रद्धा द्रिढ धरि धीर धी, सेवैं प्रभु कौं जेहि।
श्रम विनु उधरैं जगत तैं, पांवैं निजपुर तेहि॥ ४॥

श्रद्धा करि सेवैं श्रमण, स्त्रगवनितादिक त्यागि।
श्रद्धा करि पूजैं हरी, गांवैं गुन अनुरागि॥ ५॥

श्रय रे जन जगदीस कौं, श्रय श्रय वारंवार।
अवरसकल भ्रमजार तजि, धरि भगवंत अधार॥ ६॥

श्रगधरादि छंदनिकरी, थुतिकरि हरि की धीर।
जिन करि तेरौ भ्रम मिटै, छुटै वंद्यतै वीर॥ ७॥

— श्रगधरा छंद —

श्रद्धादै श्राद्ध देवाश्रित जु करि प्रभू श्रीपती तू श्रुतीशा।
श्रुयंते नाथ तेरे अगणित सुगुणा श्रेयरूपामतीशा॥
श्रेमत्सिद्धांत भासै सकल रस तु ही शुद्ध श्रोंता मुनीशा।
स्वामी तू श्रौत श्रृंगा श्रुति स्मृतिकरा श्र्यंक श्रंस्कार ईशा॥ ८॥

श्रयकै जिनकी भक्ति तू, श्रष्टा को धरि ध्यांन।
स्त्रज वनिता सव त्यागि कैं, करि विनती सज्ञांन॥ ९॥

श्रद्धा तेरी मोहि भक्त अनेकनि कौं दई।
तैसी दै जगमौर दै, श्रद्धा सम नहि और॥ १०॥

मार्गदर्शक :- [illegible] श्राद्ध महंत।
आराधैं तन मन करी, ते तौकौं हि लहंत॥ ११॥

श्राद्ध होय तुव गुन रटैं, देहि न काहू श्राप।
उणमणि मुद्रा जे गहैं, लहैं न ते त्रय ताप॥ १२॥

श्राप दियैं करुणा नसै, करुणा विनु नहि भक्ति।
श्राप न तातैं भक्त दे, हैं जिनमैं अति शक्ति॥ १३॥

श्रावक धर्म प्रकाश तू, मुनिमत धारक देव।
जीव दया प्रतिपाल तू, करूणा सिंधु अछेव॥ १४॥

श्रांत भयौ भव वन विषै, नहि पाई विश्रांति।
दै विश्रांम दयाल तूं, शांतरूप अतिक्रांति॥ १५॥

श्रावण भाद्रपदादि मैं, चातुर्मासिक व्रत्त।
धारैं तेरे दास प्रभु, तो करि व्रत्त-प्रव्रत्त॥ १६॥

श्रियोपेत स्वांमी परम, तूं हि श्रियंकर नाथ।
स्त्रिष्टि तजैं स्त्रष्टा भजैं, तब पावैं मुनि साथ॥ १७॥

श्रित जु अनेक उधारिया, श्रितवत्सल तू देव।
मोहू करि श्रित आपुनौं, देहु निरंतर सेव॥ १८॥

श्रीधर श्रीवर देव तू, श्रीनिवास श्रीपात।
श्रीविलास श्रीरांम तुं, श्री जिन श्रीपति ख्यात॥ १९॥

श्रीश्रित पादांवुज प्रभू, श्रीप्रधांन श्रीमांन।
श्री तेरी अनुभूति है, निजविभूति भगवांन॥ २०॥

श्री नहि तोतैं भिन्न है, तू नहि श्री तैं भिन्न।
श्री स्वभाव पर्याय है, तू है द्रव्य अभिन्न॥ २१॥

श्री अंतर भरपूर तू, वहिरंगा तै दूर।
बहिरंगा है नश्वरी, जगमायाभकभूर॥ २२॥

श्री तेरी अविनश्वरी, श्री नहि त्रिय की जात।
तू पुरुषोत्तम पुरुष नहि, पूरण परम उदात्त॥ २३॥

— छंद वेसरी —

तू श्री पालक जगत प्रपाला, श्री विश्राम सकल भ्रमटाला।
तैं श्रीपाल उधारे केई, ते उधरैं जे तोकौं लेई॥ २४॥

श्री ही धृति कीरति बुधिराया, कमलादिक सेवैं तुव पाया।
तू श्री बीजभूत भगवांना, भक्त उधारक भूप अमांनां॥ २५॥

श्री गुरु कृपा होइ जब देवा, तब पावै जन तुम्हरी सेवा।
श्रुणु देवाधिदेव भगवंता, तेरे गुन कौं नांहि जु अंता॥ २६॥

तेरे श्रुत करि अगनित सीझे, भवभ्रम छांडि सु तोसौं रीझे।
जब लग जन तोकौं नहि पांवैं, तब लग आसादास कहावैं॥ २७॥

तेरौ रहसि लहैं जब देवा, गहैं आपुनौं रूप अभेवा।
श्रुत परसाद सु केवल लैकैं, आवैं तुव पुरि जग जल दैकैं॥ २८॥

श्रुतिधारक श्रुतिकारक देवा, श्रुतिपारग श्रुतिमारग सेवा।
श्रुतिसागर श्रुतिआगर नांमी, श्रुतिनायक श्रुतिदायक स्वांमी॥ २९॥

श्रुति उल्लेंघक केवलरूपा, श्रुतिकेवलि गांवैं जस भूपा।
तू भावश्रुति द्रव्यश्रुती नां, तैं द्रव्यश्रुति प्रगट जु कीनां॥ ३०॥

श्रुति सुनि जिन तू ध्यायो नांही, ते श्रुत वर्जित वधिर कहांहीं।
श्रुति संमृति अर सकल पुरांनां, प्रगट किये तू पुरुष पुरांनां॥ ३१॥

तेरौ श्रुत अमृत जगराया, पीवैं ते हैं अमरन काया।
श्रुवमाण जस तेरौ स्वांमी, भव जल पार करै शिवधांमी॥ ३२॥

श्रूय जु माणा तुव जस जीवा, शुद्ध स्वरूप हौंहि जगदीवा।
श्रेय नांम तेरौ ही एका, श्रेय करै दुख हरै अनेका॥ ३३॥

तू श्रेयांसनाथ अति श्रेयो, श्रेष्ट सकल मैं सवकौं प्रेयो।
श्रेयकरण अघहरण जु तू हीं, सरण गहैं मुनि गुन जु समूही॥ ३४॥

श्रेणि जु कहिये पंकति नामा, गुण पंकति तोमैं अभिरांमा।
उपशम श्रेणी क्षपक जु श्रेणी, तू हि प्रकासै मुक्ति निसेणी॥ ३५॥

श्रेणिकनाथ श्रेणि सेयो तू, श्रेणि उलंघक मुनि ध्येयो तू।
श्रेष्टी वहुत उधारे तैं ही, तोकौं अतिगति विरद फवैं ही॥ ३६॥

श्रेमत आगम तुम्हरौ स्वांमी, तुम श्रीमत श्रीपति गुण धांमी।
श्रेमत अध्यात्म जे भांवै, ते निज आतम रांम हि पावै॥ ३७॥

श्रोता तेरे तिरे अपारा, तू वक्ता तारै संसारा।
श्रोत्रिय विप्र गणा वहु तारे, क्षत्रि गणा वहु तैंहि उधारे॥ ३८॥

श्रोणित आंमिष अस्थि अलीना, इन हि भखै ते हौंहि मलीना।
श्रोणित रुधिर तनौं है नामा, तैरै रुधिर न अस्थि न चामा॥ ३९॥

तू अप्राकृत आनंद रूपा, अंबर रहित दिगंबर भूपा।
श्रौत समार्त्तक धर्म प्रकासा, तू पौरांणिक सकल विकासा॥ ४०॥

श्रौत धर्म तैं विमुख विमूढ़ा, श्रौताभास धरैं मत रूढ़ा।
तेरी भक्ति न उर मैं आंनैं, करुणा रहित कर्म वहु ठानैं॥ ४१॥

ते वूडैं भव सागर मांहीं, तो विनु धर्मरीति कहुं नांहि।
श्र्यंक देव तु ही श्री अंका, तो विनु और सवै जग रंका॥ ४२॥

शृंग जू गिर कै चढि मुनि ध्यांनी, धरैं जे तेरौ ध्यांन अमांनी।
ते जगशृंग तत्त्व तुव पांवैं, लोक शृंग चढि तुव पुरि आंवैं॥ ४३॥

तूं शृंगार विवर्जित स्वांमी, निज शृंगार मई अभिरांमी।
सब शृंगार तजैं जे साधू, तेरे काजि हौंहि आराधू॥४४॥

शृंखल भव की ते भवि तोरैं, तेरैं पुरि आंवैं तुव जोरैं।
तेरैं शृंखल नांहि प्रभूजी, निरबंधन तू जगत विभूजी॥४५॥

उतशृंखल तोकौं नहि पांवैं, ते पांवैं जे भ्रांति नसांवैं।
तेरी शृंखल मांहि सवै ही, तोतैं कर्म कलंक दवै ही॥४६॥

शृंगवेर आदिक बहु कंदा, तजि करि ध्यांवैं पाप निकंदा।
सब रस तजि तेरैं रस लागैं, तब निश्चल ह्वै तोमहि पागै॥४७॥

स्त्रंस नांम विध्वंस न ताकौ, होवै देव नाथ तू जाकौ।
श्रः कहिये इह अंतिम मात्रा, तू सब मात्रा मांहि अगात्रा॥४८॥

— दोहा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सुनिकैं द्वादस मात्रिका, तजिकैं द्विदश अव्रत्त।
तपिकैं द्वादश तप विधी, धरिकैं द्वादस व्रत्त॥४९॥

तोहि जपैं जग नाथ जी, ते उतरैं भवपार।
भुक्ति मुक्ति दाता तु ही, अविनासी अविकार॥५०॥

अथ द्वादस मात्रा एक कवित्त मैं —

प्रणव स्वरूप तू ही श्रमण उधारक है,
श्राद्ध होहि तोहि भजैं वंस के उजागरा।
तू तौ श्रितवत्सल जू श्री निवास लायक है,
श्रुणु एक वीनती सुतारि भवसागरा।

श्रूयमाण तेरे जस श्रेय के समूह करैं,
श्रेमत जो आगम है ऋद्धि सिद्धि आगरा।
श्रोतांनि कौ तारक तू श्रौतपंथ भासक है,
लोक श्रृंग श्रः प्रकास नवल सुनागरा॥५१॥

— दोहा —

श्रीजु कहैं संपति कहैं, कमला कहैं निसंक।
भाषा मैं दोलति कहैं, निज सत्ता ज अकंप॥५२॥

इति श्री अक्षर संपूर्ण। आगैं अकार स्वर का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

अनादि निधनं वंदे, स्वधनं धन दायकं।
सुभक्षं लक्षणोपेत, मम रांम रमीश्वरं॥१॥

— सोरठा —

अ कहिये श्रुति मांहि, हरि हर कौ इह नांम है।
तो विनु दूजौ नांहि, हरि हर जिनवर देव तू॥२॥

— छंद वेसरी —

अणीयांन अणु हू तैं स्वामी, महीयान नभ हू तैं अतिनांमी।
अमल अनूपम प्रभु चिद्रूपा, अकल अरूप भूप सद्रूपा॥३॥

अचल अमूरत अमृत कूपा, अतुल अनंत सुमूरत रूपा।
अध्यातम अति शुद्ध स्वरूपा, अनुभव रूपी तत्व प्ररूपा॥४॥

अति अनंत गति देव अजीता, भव संतान अनंत विजीता।
अर्द्ध मात्र नांही अर कोई, अति निरवैरी अति छति होई॥५॥

अर्द्ध जु नारीश्वर तू व्यक्ती, नांम नांम गुन गुन मैं शक्ती।
अमित चक्षु तू ईश्वर त्रिष्टी, अति सुपक्ष तू केवल दृष्टी॥६॥

अतुल पराक्रम धारी राया, अमन अतिंद्री ज्ञान सुभाया।
अति अनंत सुखपिंड अखंडा, अर अपिंड परचंड अदंडा॥७॥

अपर प्रकाश अनंत विलोकी, लोकालोक लखै अवलोकी।
अचल लब्धि कौ तू ही ईशा, प्रभू अयोनीसंभव (तू) धीशा॥८॥

अकषाई तू अतिहि पुनीता, अनगारा ध्यांवैं सुविनीता।
दांन अनंत अनंत सुलाभा, भोग अनंत अनंत महाभा॥९॥

अति अनंत उपभोगा तैंरै, अति अनंत वीरज प्रभु नैंरैं।
असम महासम स्वांमी तू ही, तेरी समता तुहि प्रभु ही॥१०॥

अति अनंत विकलप हरि मेरे, है अविकलप भजौं पद तेरे।
संकलपा अर सकल विकलपा, तैंरै एक न तू हि अकलपा॥११॥

अवनीपति तू परम अतीता, अलख अलेसी देव प्रतीता।
सुख जु अतिंद्री देहु सु मोकौं, धोकौं द्रव्य भाव करि तोकौं॥१२॥

अजर अमर अज अति थिर रूपा, अचर अचार अकर अतिभूपा।
अटल विहारी सकल विहारा, अविहारी कित हू न विहारा॥१३॥

अति जग भूषन दूषन दूरा, असरण सरण दयानिधि पूरा।
अर अशेष अविशेष गुसांई, तूं हि अमृत्यु अकाल असांई॥१४॥

अति अचिंत्य अविनासी नांमी, चित्तऊँ कैंसैं तोकौं स्वांमी।
अलं अलं पूरण अत्यर्था, तैंरै नांही एक अनर्था॥१५॥

अर्थ न एक अनर्थी तूं ही, तू हि सुअर्थी अर्थ समूही।
अर्थ सकल ए जग के झूठे, तैंरै अर्थि जती जग रूठे॥१६॥

अदभूत देव तिहारी सोभा, तुम अधिके सवतैं विनुक्षोभा।
अभू स्वभू परमेश्वर तू ही, विभू प्रभू तू सर्व समूही॥१७॥

अति अनंत दीपति भगवंता, अग्रअग्रणी श्री विलसंता।
अरज विरज अरुजो तू नाथा, अच्युत देव अवस्थित साथा॥१८॥

अनुभव देहु मोहि सुखरासी, तू अनुभूति स्वरूप विभासी।
अति संगी तू देव असंगा, अतिरंगी तू नाथ अरंगा॥१९॥

अति अधर्म नासैं तुव नांमैं, नसैं अकर्म वहुरि नहि जांमैं।
अति धर्मी तू धर्म स्वरूपा, अवनी आधिक क्षमाधर भूपा॥२०॥

अप तैं अधिक अमल तू राया, अनुभव अमृत रूप सुभाया।
अधिक अनल तैं तेज अनंता, अनिल अधिक वल चिदघन संता॥२१॥

अर अकास तैं अधिक अलिसा, अस्छल अनूप अतुल्य प्रगिसा।
अहो अहिंस्य अहिंसक स्वांमी, सदा अहिंसा रूप सुनांमी॥२२॥

अनृत अदत असील निवारा, अबलरहित अकिंचन धारा।
अदयाभाव न तेरै होई, नहीं असत्य कहै तू कोई॥ २३॥

अमरण अकरण थिरचर पाला, अक्षय अव्यय अति अघटाला।
अजित महा अभिनंदन देवा, अमर अमरपति धारहि सेवा॥ २४॥

अप्राकृत्त असंस्कृत है तू, संस्कृती प्राकृत्त कहै तू।
अवधि अगम्य सुरम्य महा तू, अपर अपार कहूं न फहा तू॥ २५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अधिकाधिकता अधिकता तु ही तु ही अधीस मुनीश अदूही।
अविज्ञेय अवितर्क अमोघा, तो विनु और सबै जग मोघा॥ २६॥

अधिपति तू अहिपति कौ त्राता, अधिप तु ही अरितति को घाता।
अरि रागादिक नासक है ही, असुर न इनसे और कवै ही॥ २७॥

अणुव्रत अवर महाव्रत भासै, तू हि विकासै पाप प्रनासै।
अध्यातम विनु तू नहि लैये, अमरासुर पुजित तू कैये॥ २८॥

अव्रतनासक व्रत्त प्रकासा, शुभ न अशुभ तू शुद्ध विभासा।
अक्षर तू अक्षर तैं न्यारा, प्रभू अक्षरातीत सुप्यारा॥ २९॥

अग्रज अग्रेश्वरो मुन्यौं कौ, धीर धनेश्वर धनी धन्यौं कौ।
अरुचि असुचि काया तैं जाकी, भक्ति रूप है बुद्धि जु ताकी॥ ३०॥

अतिरस अपरस अरस अगंधा, अवरण अरिण सुअरण अबंधा।
शब्दातीत अभीत अशब्दा, अति भवदाह बुझांवन अब्दा॥ ३१॥

अक्ष न पक्ष न कभी अघौं की, रक्षा करै सदा सु सर्वौं की।
अमन अतन तू अतनु प्रहारी, प्रभु अनंग अभंग विहारी॥ ३२॥

अक्रोधी अभिमांन वितीता, अभव अनारज भाव अतीता।
असत अमत अततनि तैं न्यारा, अति शुचि अति ही पवित्र सुप्यारा॥ ३३॥

अपवित्र न पांवैं प्रभु सेवा, नही असंयम रूप सुदेवा।
अति तप अति त्यागी अति भागी, भजैं अकिंचन साधु विरागी॥ ३४॥

अति सुशील अति ही सुखदाई, नही अनीति अरीति न भाई।
अविनय अनय तजैं ए जीवा, तव तोकौं पांवैं सुखपीवा॥ ३५॥

अभयंकर अतिज्ञाता दाता, अति दुल्लभ अति वल्लभ त्राता।
अतिशयधर अभिप्राय जु जांनैं, अति पांवन अति ही सुख मांनै॥ ३६॥

अतिभावन तूं पाप नसावै, अज्ञ अपांवन तोहि न गावै।
नादि अनंत अकर्तृम आपा, अत्युत्तम आनंघन निहपापा॥ ३७॥

अर्कपती अमरेस्वर गांवैं, अहमिंद्रा पूजैं मुनि ध्यावैं।
नहीं अविद्या तेरै काई, ब्रह्म सुविद्या दै सुखदाई॥ ३८॥

अतिहि अमल केवल अववोधा, अखिल स्वभावमई प्रतिबोधा।
अखिल सुचक्री अर्द्ध जु चक्री, तोहि जु पूजैं तू अतिचक्री॥ ३९॥

अभिधाता अभिधांन अहेया, तू अभिध्येय स्वज्ञेय सुसेया।
अमति अश्रुति अगतिन कौं तारे, अज्ञानादिक अवगुण टारे॥ ४०॥

अतिगति देव अगति गति देवा, अतिपति नाथ न जांणूं भेवा।
अति युगईश अतुल युग खेवा, अतिजित्त जीत न सकिहौं सेवा॥ ४१॥

अतिशय सागर अतिशयरूपा, अतिजस अपजस रहित स्वरूपा।
अठविध योग प्रकाशक ईशा, अठविध कर्म रहित जगदीशा॥ ४२॥

दोष अठारा रहित्त विराजै, अवस अवास अनंवर गाजै।
गुण अठविंसति धारै जोगी, तोतैं सीखे रीति अलोगी॥ ४३॥

अठतीसा हैं जीव समांसा, सबकौं पालक प्रभू अनांसा।
अठतालीस अधिक सौ सर्वा, प्रकृति नहि तेरै नहि गर्वा॥ ४४॥

अठावन उपरि हू सौ हैं, प्रकृतिन जीतैं अगणित जौ हैं।
तेरै प्रकृती एक न पैए, प्रकृति रहित्त तू अजड़ वतैए॥ ४५॥

अडसठि तीरथ भौतिक न्हांवैं, तो विनु शिवपुर पंथ न पांवैं।
अठहत्तरि के आधे देवा, ऊरध लोकनि के हैं भेवा॥ ४६॥

नहि जाचौं जाचौं पद तेरे, दै निजपुर भरमण हरि मेरे।
असी करौ मोसौं जिनराया, नई नई नहिं धारौं काया॥ ४७॥

अठयासी आधे चौंवाली, दोष ज्ञांन के सब तौं टाली।
अठमद त्रय मूढत्व निकिष्टा, षट जु अनायतना मल अष्टा॥ ४८॥

सप्त विसन अर हरि भय सप्ता, अतीचार पांचौं अघलिप्ता।
ए अठयासी आधे टारौं, अठ्यांणव भेदनिं तारौं॥४९॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अठ्यांणव ह्वैं जीव समासा, अठतीसनि के भेद प्रकासा।
मूलभेद त्रस थावर प्रांनी, तिनके भेद सकल ए जांनी॥५०॥

इनको रक्षक करि प्रभु मोकौं, अपनौं वास देहु पद धोकौं।
अट्ठोतर सौ ऊपरि स्वांमी, मणियां माला के अभिरांमी॥५१॥

तेरौ मंत्र जु पावै कोई, सो पावै शिव तोमय होई।
तू अनेक अर एक असंख्या, प्रभू अनंतानंत अकंख्या॥५२॥

वर्णन कौलग कीजे सांई, अव्यय पद दै अटल असांई।
अनाकार अविगत सुअनाश्री, भक्त वच्छिलत है जनिजाश्री॥५३॥

अवर अनर्ह अयोज्ञ अपूज्या, अर्ह योज्ञ तू पूजा योज्ञा।
अर्हन् अरिहंता अरिजीता, श्री अरहंत अतिंत अजीता॥५४॥

अविवादी तू स्याद जु वादी, द्वयवादी अध्यातमवादी।
अस्ति नास्ति अर नित्य अनित्या, सव नय भासै ईश्वर नित्या॥५५॥

अनाहार अनिहार अवस्त्रा, प्रभु अनायुध रहित जु शस्त्रा।
अभू अभूषन विभू अदूषा, अहो दिगंबर प्यास न भूषा॥५६॥

— छंद —

अगणित जीवा तारे तैंही, अगणित कर्मा टारे।
अगणित भावा हैं तोमैं ही, अगणित परणति धारे॥५७॥

अहो अरण्य वसैं मुनिराया, कैसैं बचन मन काया।
राया तुझसौं नेह लगाया, तूं ही अमाया काया॥५८॥

अहोरात्रि ध्यावैं जोगीसा, भोगीसा गुन गावैं।
अमित अहोकर तेज अतीसा, महा निसाहर भांवैं॥५९॥

अर्चित तेरी अर्चा अर्चै, चरचा तेरी चरचै।
अमर अपछरा सुर धरि सुरचैं, साधु परचि जग विरचैं॥६०॥

अकाल अनेहा हरइ जु देहा, सव जीवनि की देवा।
काल रहित करि प्रभू विदेहा, दै साहिब निज सेवा॥६१॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अणुखंधा सव तूहि प्रकासै, तू न अणू नहि खंधा।
केवल दर्शन ज्ञान विकासै, विभू विभूति प्रबंधा॥६२॥

अन्न औषधी शास्त्र जु अभया, दांन अनेक बतावै।
अति दांनी अति ज्ञांनी सदया, सकल सुरीति जतावै॥६३॥

अन्न पांन की छांण बीण विधि, सकल अचार बखांनैं।
नहीं अहार बिहार महारिधि, रहै अनंतर थानैं॥६४॥

अविधि न अवुधि न अव्याबाधा, विधि वुधि हू नहि पावैं।
रहित अनात्तम भाव सुसाधा, बुद्धि परैं जु वतावैं॥६५॥

असुधि असुधता भाव न जांमैं, भजैं अवस्य मुनीशा।
नहि भूलैं अवसांन दसा मैं, पद पंकज जोगीसा॥६६॥

अति सुगंध पद अब्ज तिहारे, तैसे नहि अरविंदा।
चरन सरोज महारसवारे, अलि हैं इंद मुनिंदा॥६७॥

अमर सवै कहिवे के अमरा, तू अमरा जो न मरा।
अनुमति अमति वखांनै कैसैं, कहि न सकैं पति अमरा॥६८॥

अटल अटंकित है जु अडंकित, असंक अकंप अपंका।
अबध अबाधक अति हि निसंकित, सरल स्वभाव अवंका॥६९॥

— छंद मोतीदांम —

अलेष अभेष अलक्ष अपक्ष अशेष विशेष अनक्ष प्रतक्ष।
अशुन्य अपुन्य अपाप अताप सुशुन्य सुपुन्य अशाप अचाप॥७०॥

अरोप अकोप अजोग अभोग अनोप अलोप अरोग असोग।
अदिक्ष अशिक्ष, अलेप अछेप, सुचक्ष सुलक्ष सुदक्ष अषेप॥७१॥

अकांम अनांम अराग अदोष, अधांम सुधांम विराग विमोष।
अमोह अदोह अनेह अगेह, अलोभ अषोभ अदेह विदेह॥७२॥

अदीन अनीन नही जु अधीन, अच्छीन प्रवीन नही सुअलीन।
अदंभ अचंभ अलोग अलिंग, सुव्रंभ विद्रुंभ सजोग इकंग॥७३॥

अमांन सुजांन अदेस अलेस, अगाध अबाध असंख्य प्रदेश।
अपात्त अतात अमात अजात, अगात अधात अघात प्रभात॥ ७४॥

अधीश अनीश अफंद अछंद, अचिंत्य अत्यंत अमंद अनंद।
अमाम अवाम अदाम सुरांम, अभांम अठाम अगाम सुदाम॥ ७५॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अदूहो अजूहो प्रभू है पुनीता, अपायो कभी नां उपायो प्रणीता।
अद्वंदो निकंदो महामोहमाया, अवेदो अभेदो अछेदो अकाया॥ ७६॥

अबादी अनादी अनंतो अनोखो, अकोषो अरोषो असोषो अमोषो।
अनापो अमापो अथापो सथापो, नही कोई दूजो प्रभू एक आपो॥ ७७॥

अभक्षा तजैं जे भजैं जे अलक्ष्या, सुपक्षा गहैं जे दहैं मोह कक्षा।
सुदक्षा लहैं तेहि तोकौं प्रभूजी, तू ही है निपक्षो दुपक्षो विभूजी॥ ७८॥

— छप्पय —

अतिरांमो अभिरांम देवपति देव प्रबुद्धा,
अतिधामो अतिशांत नाथ जगनाथ बिशुद्धा।
अतिनांमो विनुनांम ईश जगदीश बिबुद्धा,
अतिठांमो विनुठांम भाव तोमैं न अशुद्धा।
अति सुगूढ अनगार देवा है अगूढ अवधूत तू।
अति अरूढ सुविभूति सेवा है अमूढ अविभूत तू॥ ७९॥

अतित्राता अतित्रात छात अतिपात अपाता,
अतिदाता सुउदात पार कर तू हि प्रमाता।
अतिगाता विनुगात शुद्ध पर्याय स्वरूपा,
अति धाता जु विधात शुद्ध गुण राशि अरूपा।
अति सुरूप निजरूप भूपा, अति सुरम्य भगवांन तू।
यति सुरूप तू अति अनूपा, निरद्वंदी निरवांन तू॥ ८०॥

अधिकारी अविकारनाथ अति पुण्य प्ररूपा,
अपर द्रव्य को लेस नांहि जामैं जु निरूपा
अन्य अज्ञताभाव, थकी वह अरुण जगत का,
अज्ञ लहैं नाहि जाहि विज्ञ वह धनी भगत का
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अर्क अनंत सुज्योति धारा, समयसार अतिसार जो।
नहीं अलीक अनीक कोई, अजडनाथ भवपार जो॥ ८१॥

अतिक्रम वितीक्रम नांहि, नांहि अनुक्रम जु अविक्रम,
अनाचार नहि कोई धीर तू अतिगति विक्रम।
नही एक अन्याय एक नांही अपराधा,
अनुचर एक न पासि, वीर तू प्रबल अबाधा।
अतिसोधा अतिबोध तू ही, अमला कमला पासि है।
अनुचित वहिरंगा न कोई, चिदानंद सुखरासि है॥ ८२॥

अनिरवाच्य अविचार चार तू जगत अधारा,
अनुचर तेरे सर्व राव तू जीव सुधारा।
नही अमात्य जु कोई अचल अदभुत अवनीपा,
मंत्र न तंत्र न कोई मंत्र तूंही जगदीपा।
अतुल अतूल अविगत गुंसाई, अवनीपति पूजैं चरन।
अखिलोपम अर अति अनोपम, विश्वंभर अवरन वरन॥ ८३॥

अहो अहो कर भास मोहि तिमर जु कौ हंता,
ममता रजनी मेटि बोध दिवस जु प्रगटंता।
भव्य कमल प्रतिफुल्ल करन जो पंथ चलावै,
विषय विनोद मिटाय नादि सूते हि जगावै।
जीव सुचकवो सुमति चकई, विषम विरह तिनकौ हरै।
अभवि उलूक लहैं न दरसन अर्क अमितदूति तू धरै॥ ८४॥

अतुल अनंत प्रताप ताप नहि तेरै सव ही,
मिथ्या भाव सुराह तोहि वेढै नहि कव ही।

रवि कौ नांम जु मित्र तू जु है साचौ मित्रा,
अर्क नहीं तो तुल्य पूर्ज अति रश्मि विचित्रा।
अवगम नांम सुज्ञान कौ अन्हि नांम दिन कौ सही।
अन्हिकरण अवगम मई तू अरुण अहोकरा को तु ही॥८५॥

असु प्रांणनि कौ नांम तू हि प्रांणनि कौ त्राता,
असुभ्रत प्रांणी जीव, पीव तू जीवनि दाता।
तेरे प्रांण न कोई ज्ञान आनंद जु प्राणा,
सुख सत्ता अवबोध शुद्ध चैतन्य सुजाणा।
अवधि शुद्धता की जु तू ही अवधि न अवधि न तो विषै।
हरऊ अविद्या दै सुविद्या अतिसुगमक तू श्रुति लिखै॥८६॥

अभष भषैं जे जीव तोहि नहि पावैं पापी,
अगम गमैं जे नींच तोहि भांवैं न सतापी।
अगम गमक फुनि साधु गम्य जिनकी जु अगम मैं,
रमैं अपुन मैं धीर चलन जिनकौं न अमग मैं।
उनी लहैं न लहैं मुनी ही, गुनी तोहि ध्यांवैं सदा।
भनी सुकीरति श्रुतिनि मांहैं, सुनी न अपकीरति कदा॥८७॥

अप्रमत्त अविलीन प्रभू तू अभयजू, अविषय
अगम अगोचरनाथ ज्ञान गोचर तू अतिशय।
अश्वादिक चतुरंग सेन तजि होय असंगा
भजैं तोहि अवनीश ईश तू धीश अभंगा।
तु ही अनागस है अनालस, अलंकार वर्जित सदा।
अलंकार सव जगत्त कौ तू, नित्य अलंकृत विनु मदा॥८८॥

अति समरथ अविभाव, नांहि तेरै जु अभावा,
सकल विभाव अभाव भाव तू धर्म प्रभावा।
अतिदेवल मैं तू हि तू हि है केवल मांही,
लोकालोकनि मांहि नित्य निवसै निज पांही।
सही अनाशक्तो जु तू ही, अतिक्षम क्षमकर है प्रभू।
अतिशम दम यम नियम भासक अति अघहर हरि हर विभू॥८९॥

— सोरठा —

अतिशर्मा तू नाथ अतिवर्मा तू देव है।
अतिकर्मा वड हाथ हरे, धर्म तैं ही धरे॥ १०॥

अति अलंघ्य [illegible] उल्लंघक तू अघनि कौ।
हौं असमर्थ अधीस, गुन वरनन कैसें करूँ॥ ११॥

अति हि अलौकिक ईश, लोक न जानैं तुव गुना।
दोष अमंडित धीश अलपित अलप न तू सही॥ १२॥

अलपवहुत्व सवैं हि तू भासै अति भास तू।
तो कौं सर्व फवैहि, अति उज्जल तू देव है॥ १३॥

अति नागर जगदीस, अति हि उजागर तू सही।
अति सागर अवनीश, अति आगर गुन रतन कौ॥ १४॥

— अरिल छंद —

नहीं अभव्य सुभाव भव्य भावहु नहीं,
तू शुद्धत्व स्वभाव पारनांमिक सही।
अवलोकन गुनवांन अखिल दरसी तु ही,
लहैं अपांवन नांहि भक्ति तेरी जु ही॥ १५॥

प्रभू अकर्त्ता तू हि तू हि अकरम सदा,
अकरण करण स्वरूप भूप तु अति मुदा।
तू हि असंपरदांन दांन दायक महा,
अपादांन अधिकरण एक तू ही कहा॥ १६॥

अति छायो जु अछाय अजड रूपी तू ही,
अमित छाय जगराय पाय तेरे जु ही।
सेवैं सुर नर नाग तू हि अविभाग है,
महाभाग भगवांन परम वैराग हैं॥ १७॥

— त्रोटक छंद —

अति तू हि अनुद्धत देव वरो, अति तू हि अनुज्झित भाव थिरो।
अति तू हि अनाव्रत ईश महा, अति तू हि अदुत्ती और कहा॥ १८॥

अति तू हि अनामय ईश सही, अति तू हि अमै पददायक ही।
अति तू हि चिदात्तम है सुखिया, हम ज्ञान विना अति हि दुखिया॥ ९९॥

हरि दुष्य सबै करि दास महा, प्रभु तू हि दयाल सुभावगहा।
अति तू हि अनंदी है परमो, अति तू हि अनाकूल है धरमो॥ १००॥

नहि तू हि अनादर जोगि प्रभु, अति ध्येय तु ही जगदीस विभू।
नहि भाव अनातम तू हि धरै, अति देव अवाधित भ्रांति हरै॥ १०१॥

अवधारन जोगि गिरा तुमरी, अविनासिक भूति प्रसूतिकरी।
अक्षयो अव्ययो गुनरासि जु ही, अतिभाव अपूरव वस्तु तु ही॥ १०२॥

— दोहा —

अनुद्वेग तू अगुरलघु, अतिभारी जु अभूल।
अनावास अनयास तू, अनौपम्य शिवमूल॥ १०३॥

मार्गदर्शक
तू हि अनुत्कंठित प्रभू, अतिरसिआ जु अचूक।
तेहि जेहि तोकौं भजे, करै करम कौ भूक॥ १०४॥

— छंद त्रिभंगी —

जब लग्गि अतिंद्रिय बोध निरिंद्रिय इंद्रि अनिंद्रिय रहित प्रभू।
जीवो नहि पावत तोहि न तावत अखिल सुभावत लोक विभू॥
तूही जु अवाच्यो मुनिजन जाच्यो कितहु न राच्यौ जगतगुरू।
तू अखिल सुवाच्यौ नाथ अजाच्यौ निज मैं राच्यौ धर्म धुरू॥ १०५॥

जे साधु अतंद्रा वसहि जु कंद्रा मत मुनि चंद्रा दिढ जु धरैं।
ते जपहि जु तोही ह्वै निरमोही छांड सबोही ध्यांन करैं॥
तू वर अनुभूति धरइ विभूती नांहि प्रसूती क्वापि करै।
अतिरिक्त विभावो शुद्ध स्वभावो अमित प्रभावो काल हरै॥ १०६॥

अति ही अकलंको ईश चिदंको नित्य अपंको कुमति हरो।
तू असम जु नाथो है अति साथो अति वड हाथो सुमति करो॥
तू ही अपरापर है जु मुधाहर पूजि सुधाकर लोकपती।
प्रभुजी अतिपात्रो है अतिछात्रो ज्ञान हि मात्रो शुद्ध जती॥ १०७॥

अति रहै अनंतर नित्य निरंतर अदभुत तंतर रोग हरा।
मुनि अनंत जु निवसैं रात्रि जु दिवसैं तन मन विकसैं जोग धरा॥
तुवपद ध्यावे कौं (तुव) पुरपावे कौं नहि जावे कौं फेरि कहूं।
अध्यातम बारा अनुभव धारा तू अनिवारा रहित अहूं॥१०८॥

तू अति भूतेश्वर है जु महेश्वर देव जिनेश्वर अतिथि गुरो।
अति अनत विधानो अमन अमांनो अतिगति ज्ञानो धर्म धुरो॥
प्रभुजी अति चेता मुक्ति जनेता तत्त्व प्रणेता चित्त हरो।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अति ही मद टारी साधु सुधारी अमृत धारी मृत्यु हरो॥१०९॥

तू अविरति हारी विरति विहारी अरति प्रहारी अमति हरो।
तू है अतिकामो प्रभु अकामो रांम विरांमो सुगति करो॥
तू प्रभु अतिपूतो अति अवधूतो है जु अभूतो भूत महा।
अतिकर्म विनासा पाप प्रनासा धर्म प्रकासा गुरनि कहा॥११०॥

— दोहा —

अतिहि अनातंको प्रभू, अभय अभव भावेस।
विभू अनादेसो तू ही, सदादेस आदेस॥१११॥
तेरौ निर्मापक नहीं, कर्त्ता जग मैं कोइ।
अनिर्मांन भगवान तू, अति निरवांन जु होइ॥११२॥

— कवित्त —

तू अतिक्रांति विश्रांति दयाला, अरिहंता अतिशांत मुनीश।
तिर नर सुर खग मुनिवर कौ मन हरइ न चौरो, अति अवनीश॥
नित्यानित्य जु जगत प्रपंचा, जांनैं सब अर नहि रति रीस।
जीव रषिक जो, नासक कर्मा निरग्रंथो अति कर्मलाधीस॥११३॥

इह अदभुत गति देखहु तापैं, सो अध्यातमधार सुसार।
अध्यातम धारिनि को तारक, असुधारिनि कौ है प्रति पार॥
आप अनघ अवसेस नांहि को कर्मनि कौ जा मांहि लगार।
सब सेना ते रहित जु स्वांमी, सेनाधर सेवैं दरवार॥११४॥

— सवैया —

असिमसि कृषि और वांनिज कौ, नाम कोऊ
नांहि तेरे पुर मैं न शिल्प पशु पालनां।
पठन न पाठन है शिक्ष गुरभेद नांहि,
स्वांमि अर सेवक कौ भेद न निहांल नां।
तू तो प्रभु एक रूप ज्ञान रूप भाव तेरौ
तेरौ पुर चैंन रूप जहां वस काल नां।
मोह नांहि द्रोह नांहि नांहि जु विभाव कोऊ,
जहां तू विराजै देव सवै भ्रम जाल नां॥ ११५॥

— सोरठा —

अध्यातम कौ मूल, भजैं तोहि अध्यातमी।
मेट हमारी भूल, दै आतम अनुभव सही॥ ११६॥

तू ही अकार स्वरूप, सकल वर्ण मात्रा तु ही।
परमेश्वर जगभूप, दौलति करन जु तू उही॥ ११७॥

इति अकार स्वर संपूर्ण। आगैं आकार का व्याख्यान करै है ॥ श्री ॥

— श्लोक —

आदि देवं युगाधारं, मात्मारांम पितामहं।
वंदे साकार रूपं च, निराकारं निरंजनं॥ ११८॥

— सोरठा —

आ कहिये श्रुति मांहि, नांम पितामह कौ सही।
तो विनू दुजौ नांहि, तू ही लोक पिता महा॥ ११९॥

आशु शीघ्र कौ नांम, शीघ्र उधारौ जगत तैं।
आवस्यक दै रांम, समता वंदन आदि सहु॥ १२०॥

आलय घर कौ नांम, तैंरै घर घरणी नहीं।
सव घट तेरे धाम, तू आलय सबकौ सही॥ १२१॥

आस्पद कहिये थांन, तैंरै थांन न आंन को।
स्व स्वभाव भगवांन, लोक सिखर राजै तु ही॥१२२॥

— छंद —

आदि धुरंधर आदि जगत गुर, आदि सकल की तू ही।
आदिनाथ आदीश्वर स्वांमी आदि सुदेव प्रभू ही॥१२३॥

आदि आदि कर आप, आदि वर आदि परंपर आपा।
आप आदि मुनि आप, सही मनु आदि रम्य निहपापा॥१२४॥

आसन अचल अटल प्रभु, सासन नहि आक्रोस कदापी।
आ कहिये सामस्ति प्रकारैं, शुद्ध सुबुद्ध उदापी॥१२५॥

आधि न व्याधि रोग रागादिक मोहादिक कछु नांही।
हरै आपदा जीव रासि की, नहि आताप कहां ही॥१२६॥

आलस नहि आलंबन कोई, है आलंबन सबका।
आप्त नांम आवरण वितीता, आतम गुण धरढ बांका॥१२७॥

— चौपड़ी —

तू आकार रहित जगदेव, तू आधार वितीत अछेव।
सवकौ तू आधार दयाल, आश्रम सवकौ त्रिभुवन पाल॥१२८॥

आदि पुरांन पुरष परधांन, तू आहार रहित भगवांन।
तैंरै नहि आगार कदापि, तू आधार प्रगट्ट उदापि॥१२९॥

आखंडल सेवैं तुव पाय, इंद्रनि कौ पति तू मुनिराय।
प्रभु आदीस आदि जोगीस, आचारिज प्रणमैं नमि सीस॥१३०॥

आर्या भक्ति करैं धरि भाव, आनंदी आनंद स्वभाव।
आद्युपचारी रहित प्रचार, आदित आदि भजैं निरधार॥१३१॥

आदि महंत न तैंरै दूजि, थिरचर कौ प्रतिपालक पूजि।
आदि न अंत न तैंरै कोय, तू अनादि अनिधन प्रभू होय॥१३२॥

आदि अविद्या भेदै तू हि, आदि मनोहर रूप समूहि।
आतम वोध प्रदायक देव घाटिकर्म (घातिकर्म) टारैं जु अछेव॥१३३॥

— गाथा छंद —

आशापासि निकंदा, संतोषी तू महासुखी धीरा।
आनंदा जिनचंदा, करि आनंदी महावीरा॥ १३४॥

आसा पूरैं सवकी, तेरे आसा न तू हि निहकामी।
आस पिसाची कवकी, मोहि लगी टारि जग स्वांमी॥ १३५॥

आसा राखौं तेरी, धरौं न आसा कदापि घर घर की।
करि अैसी बुधि मेरी, करुना पालौं हि थिरचर की॥ १३६॥

आसा मेटि हमारी, करौं न आसा कदापि सुर नर की।
सुनि कैं वानि तिहारी, परनति जानी हि निज पर की॥ १३७॥

आतमरस दै देवा, आतम संगा तु ही जिनाधीसा।
आतम ज्ञान सु सेवा, विनु नहि पायो किनी ईसा॥ १३८॥

आतम ज्ञान प्रकासी, तू ही ध्यानी सु आतमा रामा।
आतम लोक विभासी, आतम गुण भर महा धामा॥ १३९॥

आरति हरणा तू ही, आपद हरणा सुसंपदा दाता।
संपति गुण जु समूही, भक्ति तेरी सुविख्याता॥ १४०॥

आपद भुगतैं सकला, सुर नर तिरजंच नारकी जीवा।
तू ही श्रीधर कमला, अटला धारै अनंतीवा॥ १४१॥

आतम चित्त जु धारा, आंवरमाना अमानमाना तू।
आरति रौद्र निवारा, भगवाना शुद्ध ज्ञाना तू॥ १४२॥

आर्जव धर्म प्रकासा, आपा पर भासका तु ही नाथा।
आज्ञा पालैं दासा, तेहि तिरैं सीघ्र भुव पाथा॥ १४३॥

आज्ञा दायक शुद्धा, आगम प्रगटा सुआगमी नांमी।
अध्यातममय बुद्धा, आदेसक तत्त्व का स्वामी॥ १४४॥

आदेस न काहू का, तोकौं तू ही स्वयं गुरु देवा।
तू तारक साधू का, आगमधर धारइ सेवा॥ १४५॥

आलापैं हरि रागा, तेरे जस का करैंहिं वाखांना।
आकुल भाव न लागा, तोकौं तू देव भगवाना॥१४६॥

आश्रव आश्रम भिन्ना, नहि आवासाहु कोइ प्रभु तेरै।
तू निज आतम लिन्ना, आश्रय नहि तो विना मेरै॥१४७॥

अनल वुझावै अंभा, आसानल नां वुझावई पाथा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तृष्णा दाह विभ्रभा, तू ही मेटै महानाथा॥१४८॥

तू आधीन न होई, ए सव तेरे हि लोक आधीना।
आतम गुणमय सोई, आरोज्ञा तू हि स्वाधीना॥१४९॥

आतापन जोगा जैं, धारैं तौहू न तो विनां सिद्धी।
पावैं शिव जोगा जे, तोही तैं योगिया ऋद्धी॥१५०॥

ह्वैं आरोज्ञ सरीरा, तेरे नांमैं कटैंहि भव रोगा।
आसेव्या असरीरा, तैरे माया न संयोगा॥१५१॥

आद्र नांम रस भीनां, तू भीगा सुरस मांहि रस भोगी।
आंन न तो विनु लीनां आरूढा ह्वैं भजैं जोगी॥१५२॥

आदित्यादि असंख्या, देवा पावैं न तो समा क्रांती।
आभ्यन्तर आकंख्या, मेटि हमारी हु दै शांती॥१५३॥

आखेटक करमी जे, मारैं जीवा करैं हि पल भक्षा।
हिंसक अघ करमी जे, पावैं पापी न तव पक्षा॥१५४॥

भक्ति न पावैं दुष्टा, शिष्टा पावैं हि रावरी भक्ती।
तू करुणा रस पुष्टा, थिरचर प्रतिपाल अतिशक्ती॥१५५॥

आकासो जड़भावा, कैसैं पावै जु ऊपमा तेरी।
तू चिद्रूप स्वभावा, देवा हरि मूढ़ता मेरी॥१५६॥

आदेसा इह तेरा, जीवा सव आप तुल्य करि जांनौं।
परधन पांहन ढेरा, पर नारी मात सम मांनौं॥१५७॥

आभासा तेरी सी, नहि पावैं तीन लोक मैं कोई।
दुरबुद्धि मेरी सी, नहि कोई मांहि प्रभु होई॥१५८॥

— भुजंगी प्रयात छंद —

कभी नांहि आलिप्त तू है अलेपा, चिदानंद चैतन्यरूपा अछेपा।
तू आनंद रूपी सदानंद देवा, प्रभू है महानंद मूला अछेवा ॥ १५९ ॥

तु आनंद रामा प्रभा पुंज धारै, महा आधि व्याधी प्रभू तू प्रहारे।
सु आराम करी प्रभू रांम तू हीं, गरीयास आद्यो गुरू है प्रभू ही ॥ १६० ॥

समाधान रूपा सुभावा सुआली, सुचिच्छक्ति रूपा सुरांनी अटाली।
नही और रांनी नही और आली, विराजै तु ही एक रूपो अकाली ॥ १६१ ॥

न आदी न अंता तु ही नादि वस्तु, सुअस्तित्व रूपा सही है प्रसस्तू।
नही आसना वासना नांहि तोमैं, हरौ आगसा लागिया नाथ मोमैं ॥ १६२ ॥

कहैं आगसा नांम जे पापकर्मा, न तैरै जु पापा नाही कोई भर्मा।
भजैं योगरूढ़ा द्रिढासन्न धारे, समाधी सुरूपा महाभाव भारे ॥ १६३ ॥

तु ही आदरा और त्यागे सवैही, मुन्यौं नैं सवैं सिद्धि पाई जवै ही।
तुझे छांडि जे मूढ सेवैं विषैं कौं, मंहा आतताई लहैं नांहि जै कौं ॥ १६४ ॥

नही कोई आवेस तैरै प्रवेसा, तु ही है अनादेस योगी अभेसा।
प्रभू आदि व्यक्ता तु ही आदि वक्ता, तु ही आदि सांमी महाभूति भुक्ता ॥ १६५ ॥

— गीता छंद —

आश्चर्यकारी लोकतारी आप आप निरंजनं।
आलोकपारी अतुलभारी, आस दास प्रपूरणं ॥ १६६ ॥

आदि आचारी युगादी आदि आसेव्यो महा।
आचूल मूल अतूल स्वांमी अकथरूप कहैं कहा ॥ १६७ ॥

आत्मीय भाव स्वभाव रूपा योग आध्यातम तुही।
आधारभूत अभूत भूपा आदि धरमी तू सही ॥ १६८ ॥

आजि धन्य सुधन्य भागा, आसथा तेरी गही।
आसक्तता पर भाव केरी, हरौ देव भैहर तुही ॥ १६९ ॥

अस्ति नास्ति सवै जु भासै, आदि सासत योगत्वं।
आक्रांत नांहि जु काल तैं तू, न आक्रमण सुयोगित्वं ॥ १७० ॥

आदि दौलति रावरै ही तोहि तैं दौलति लहैं।
भुक्ति मुक्ति सुमूल तू ही, चरन शरण तेरी गहैं॥१७१॥

इति आकार अक्षर वर्णनं। आगैं इकार का व्याख्यान करै हैं।

— श्लोक —

इंद्र नागेंद्र चक्रीणा, मीश्वरं जगदीश्वरं।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
वंदे सर्व विभूतिनां दायकं मुक्तिनायकं॥१॥

— दोहा —

इ है इकार सिधंत मैं, प्रगट कांम कौ नांम।
तुम जु कांम हर कांमपति, कांम सुधारक रांम॥२॥

इंदीवर कहिये कमल, कमल कहा कमनीय।
जैसे तेरे चरन हैं, तू अनंत रमनीय॥३॥

इंदीवर न सुगंध है, तन तेरौ ही सुगंध।
इंद्री प्रेरक मन इहै, तोहि न ध्यावै अंध॥४॥

इंद्री प्रेरक चित्त सौं, भव्य कहै भजि नाथ।
संग त्याग इंद्रीनि कौं, करि जिनवर कौ साथ॥५॥

इंद्रीधर ए जीव हैं, पीव न इंद्री रूप।
शुद्ध अतिंद्री देव है, भजि मन सो चिद्रूप॥६॥

इंद्रपति अर इंदुपति, इंदु कहावै चंद।
चंद चकोर जु ह्वै रहै, निरखत वदन मुनिंद॥७॥

इभ हस्ती कौ नांम है, इभ न लहै वह चाल।
हंस चाल गज चालतैं, जाकी चाल विशाल॥८॥

कर्मरूप इभगनि कौं, इभ रिपु केहरि सोय।
अमित पराक्रम नर हरी, सो भजि सुमनां होय॥९॥

इंद्र तीन हूं लोक कौ, इंद्र हू कौ प्रभु इंद्र।
इंद्राणी अर इंद्र कौं, जीवन मूल मुनिंद्र॥१०॥

इषु इह नांम सुवांन कौं, जाकै बांन न चाप।
ज्ञान चाप ब्रत बांन धर, नासै अखिल जु पाप॥११॥

इंद्रीजीत अभीत जो, इष्ट सबनि कौ वीर।
इष्टानिष्ट न भाव धर, ताहि ध्याय मन धीर॥१२॥

इष्ट वस्तु दायक प्रभू, इष्टादिष्ट स्वभाव।
इंद्री विषय वितीत जो, इलानाथ भवनाव॥१३॥

इला भूमि कौ नांम है, नांम इंद्रियाभूति।
इला इंदिरा कौ धंनी, धरै अनंत विभूति॥१४॥

इंद्री पृथक मुनिंद सो, इंद्रीधर कौ नाथ।
तारे इंद्र अनंत मन, तू करि ताकौ साथ॥१५॥

इभ तारे इभतार जो, इभ रिपु तारक देव।
इन कहिये दिनकर सही, दिनकर धारैं सेव॥१६॥

इ कहिये जैसैं मनां, तूं है चंचल रूप।
तैसौ चंचल और नहि, थिर न प्रभू सो भूप॥१७॥

इत्वरिका कुटिला त्रिया, तैसी कुमति जु सोय।
ताकौं तू है मिलनियां, इह तौ भलैं न होय॥१८॥

— चौपड़ी —

रे मन तूं इंद्रिनि कौ नाथ, तजि विषया करि प्रभु कौ साथ।
सर्वस दायक वह वरवीर, निजच्छति पड़ए जातैं धीर॥१९॥

इतर भाव तैं गम्य न कोई, केवल गम्य वहै प्रभु होय।
इतरेतर वह सब तैं भिन्न, परिपूरण निज रूप अभिन्न॥२०॥

तासौं करि मन विनती एह, सुमन करे प्रभु निज मैं लेह।
रे मन तू जिन सकि जिन सौं जु उलटि विषैं सौं मिलि प्रभु सौं जु॥२१॥

सुलटि जगत गुर सौं भिलि वीर, कुटिलभाव राखै मति तीर।
सरल सुभाव प्रभु गंभीर, तन धन आपौ वारि जु धीर॥२२॥

इत उत कौ फिरिवो नहि भलौ, मेटि कलपनां प्रभू सौं मिलौं।
इत्यादिक का तोकौं कहैं, धनि तू जो तातैं प्रभू गहैं॥२३॥

रे मन तू मेरौ परधांन, जो तोतैं भेटौं भगवांन।
अनुचर कौ इह धर्म हि जांन, स्वांमि कांम कौं त्यागै प्रांन॥२४॥

मैरै कारिज तू मन मित्र, होहु सुमन मिलि थिरचर मित्र।
तव तू साचौ मेरौ मंत्रि, मोहि मिलावै जगपति यंत्रि॥२५॥

इह विधि समुझायो जिय मनां, ले एकांत भव्य नैं घना।
मन मान्यौ जिय कौ उपदेस, लग्यौ चित्त चरणां जगतेस॥२६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इज्या है पूजा कौं नांम, पूज्य पुरिष प्रभु अतिगुण धांम।
इंद्रीजित जै मुनिवर धीर, तिनकौ तारक है वर वीर॥२७॥

इंद्रीपति मन मनसुत कांम, कांमजीत जगजीत सुरांम।
इच्छा पूरन आप अनिच्छ, निहकामी जगदीस प्रतिच्छ॥२८॥

— त्रोटक छंद —

इह इंद्रीपती हर देवपती, इह इंद्रिय जीत कहै सुजती।
इंही इंद्रिपती सुत मान हरै, प्रभु इंद्रिय धारक पार करै॥२९॥

नहि आप जु इंद्रिय धारक वै, प्रभु एक अनेक अपार फवै।
वह सर्व इच्छा परिपूरण है, परमेसुर पाप जु चूरण है॥३०॥

तप होइ जु इच्छ निरोध किर्यै, तपभाव विना नहि दास लियें।
इह अंक इकार कह्यो प्रगटा, प्रगटै सव तूहि प्रभू अघटा॥३१॥

इभपत्ति प्रपूजित लोक गुरं, सर्वाक्षर रूप सुरं अमरं।
अजरं अकरं सुवरं सुपरं, निजरूप प्रभासुर सारतरं॥३२॥

— दोहा —

इडा पिंगला सुषमना, नारी तीन जु होय।
रहै सुषमना लागि कौं, रटै तोहि सुख सोय॥३३॥

सोहं सोहं शब्द इह, सव जीवनि कै होइ।
सास उसासा सहज ही, विरला बूझै कोय॥३४॥

संसय विभ्रम रूप जो, महामोह बलवांन।
पारै तोसौं आंतिरौ, उपजावैं अज्ञांन॥३५॥

लागौ नादि जु काल तैं, समुझ न दे निजरूप।
भ्रमण करावै जगत मैं, दुख दे महा विरूप॥३६॥

ता विमोह के मारिवे, समरथ तेरे दास।
मोह डारि निजरूप को, जांनै परम प्रकास॥ ३७॥

दास भाव इषुधा समो, इषुधा वांन निवास।
वांन जु शम दम यम नियम, धारक प्रभु के दास॥ ३८॥

ज्ञान चाप तैं इषु व्रता, दास चलावैं धीर।
मार्‍यो जाय जु मोह सठ, जाकैं नहि पर पीर॥ ३९॥

भक्ति मात सौं जीव कौं, मिलन न दे अति दुष्ट।
कुमति सुता परनाय कैं, करै नाथ सौं भिष्ट॥ ४०॥

हरै अनंत विभूति कौं, दे इंद्रिय रस रंच।
वाट जु पारै सिद्ध की, मोह महा परपंच॥ ४१॥

मोह जीतिवे सक नहीं, सुर नर खेचर नाग।
जीते तेरे दास ही, निहकामा वडभाग॥ ४२॥

मोह जीति तजि कुमति तिय, सुमति धारि सुखदात।
मिलि कैं भक्ति सुमात सौं, लहैं परम गुर तात॥ ४३॥

तात वतावै वस्तु निज, सत चित आनंद रूप।
रूप लखैं जर मरन की, नासै टेव विरूप॥ ४४॥

इंद्र धनुप जल बुदबुदा, तडित तुल्य संसार।
यामैं सार लगार नहि, तात जगत मैं सार॥ ४५॥

जाति तात अर पूत की, ज्ञान स्वरूप अरूप।
वह केवल निज ज्ञानमय, इह अबिबेक बिरूप॥ ४६॥

वह तंदुल इह सालि है, इह दल वह निज धात।
अंतर एतौ श्रुति कहै, सुत चंचल थिर तात॥ ४७॥

मलिन नीर मिलि सिंधु सौं, निर्मल भाव धरेय।
जीव ध्याय जगदीस कौं, कर्म कलंक हरेय॥ ४८॥

निज दौलति पावै सही, चहुं गति आपद टारि।
रमैं स्वरस सागर विषैं, अचल अतुल अविकारि॥ ४९॥

इति श्री इकाराक्षर संपूर्ण। आगैं ई अक्षर का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ईकाराक्षर कर्त्तारं, मीश्वरं जगदीश्वरं।
धीश्वरं धिषणाधीश, मीशं वंदे मुनीश्वरं॥ १॥

— दोहा —

ई कहिये आगम विखै (षै), है लक्ष्मी कौ नांम।
लक्ष्मी तेरी शक्ति है, चिद्रूपा गुण धांम॥ २॥

तू स्व द्रव्य पर्याय वह, स्वाभाविक निजरूप।
वस्तुभेद श्रुति नहि कहै, एक स्वरूप अनूप॥ ३॥

तू ईश्वर वह ईश्वरी, तू समरथ वह शक्ति।
वह विमला तू विमल है, तू सुव्यक्त वह व्यक्ति॥ ४॥

— गाथा छंद —

ईससु ईस्वर ईशा ईशेश्वर ईश्वरेश्वरो नाथा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
ईहा रहित मुनीशा, ईश करै तू हि गुण साथा॥ ५॥

ईति हरै हर देवा, भीति हरै तू हि देय निज सेवा।
ईहा पूर अछेवा, वर्जित ईर्षा तु ही देवा॥ ६॥

ईशानेश्वर धीशा, ईधर श्रीधर धरें जु ईश्वरता।
ईहित दाता श्रीशा, ईर्षा दोषादि कौ हरता॥ ७॥

ईप्सित दायक वीरा, ईहित ईप्सित कहैं जु वांछित कौं।
हरै सकल की पीरा, धीरा तू भासई हित कौं॥ ८॥

ईन कहावै स्वांमी, तूं स्वांमी सर्व लोक कौ देवा।
ईज्या जोगि सुनांमी, ईज्या कहिये जु तुव सेवा॥ ९॥

ईडित सव करि तू ही, ईडित कहिये जु पूजनीकनि कौं।
ईर्य्यादि गुण समूही, समिति भाषै जु ज्ञानिनि कौं॥ १०॥

निरखि निरखि करि चलनां, उचित हि कहनां अजोगि सव तजिकैं।
सोधि अहार जु करनां, धरनां लेनां सु सव लखिकैं॥ ११॥

धारैं दासा समिती, ईठ करैं तोहि त्यागी परपंचा।
जिनकै घट नहि कुमति, ईदा (ष्यी) पीडा नही रंचा॥१२॥

— दोहा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ईठ नांव है मित्र कौ, भाषा मैं सक नांहि।
मित्र न तोसौ दूसरौ, तीन लोक कै मांहि॥१३॥

ईख रसादिक मिष्ट नहि, मिष्ट इष्ट तुव नांम।
नांम रसायन जे पीवैं, अमर हौंहि अभिरांम॥१४॥

ईस बल्लभा ईश अर, तोकौं ध्यावैं नाथ।
तू ईशेश अलेश हैं, गुण अनंत तुव साथ॥१५॥

— छंद मोती दांम —

नही जगि ईश्वर तो विनु कोय, हितू सबकौ प्रभू तू इक होय।
प्रभू परमेश्वर तू जु मुनीश, अनीश्वर श्रीश्वर तू अवनीश॥१६॥

तु ही शिवसागर नागर धीश, तु ही जु निरीश्वर ईश्वर धीश।
तु ही प्रभु ईश्वरतापति नाथ, अनादि अनंत अछेव असाथ॥१७॥

तु ही जडता हर दोष वितीत, प्रभू निज ज्ञान स्वरूप अभीत।
तु ही जगतात महा सुखदात, महा अघ घातक देव विख्यात॥१८॥

— सोरठा —

ई लक्ष्मी कौ नांम, लक्ष्मी धर तू शिवपती।
और न दौलति कांम, दौलति दै अविनश्वरी॥१९॥

इति ईकाराक्षर संपूर्ण। आगै उकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

उकाराक्षं महादेवं, शंकरं भुवन त्रये।
वंदे सदा शिवाधीशं, नित्यमानंदमंदिरं॥१॥

कहैं उकार सुपंडित्ता, शंकर सुर कौ नांम।
सुखकारी आनंदकर, तू जितवर गुणधाम॥२॥

उद्धव तेरौ जगत मैं, होय कभी न दयाल।
उन्मूलित कर्मा तु ही, रहित उपद्रव लाल॥३॥

उद्भट उद्धव तू सही, दोष उच्छिन्न उदार।
उर्वी नांम जु भूमि कौ, तू उर्वी मैं सार॥४॥

उदयंकर प्रभु उर प्रवल, उदय अस्त तैं दूर।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
उपलब्धातम देव तू, उपलब्धी भरिपूर॥५॥

उदित उधारक उपशमी, उद्धत बोध प्रचंड।
उद्यत उद्यम रूप तू, उपसमीप गुणमंड॥६॥

उपवासी उपशांत तूं, उपयोगी उपयोग।
उपधि रहित उतपथि रहित, विनु उपाधि अतिभोग॥७॥

उपभोगा भोगा नही, जोगा एक मिलै न।
उद्धरणो उद्धार तू, जडता मांहि भिलै न॥८॥

उचित उपेंद्र उपायमय, उज्जल परम उदात।
उपकारी उपकारमय, उपमा अतुल सुतात॥९॥

उपमारहित उपेय तू, नांम उपाय न भेट।
भेट करैं तन मन मुनी, उपदिष्टा जु अमेट॥१०॥

उपदिश्यो उपदेश तू, उपरम रूप अनूप।
तू उपमेय अमेय है, सकल उर्वराभूप॥११॥

उत्तम उर तेजस महा, आनंदी जु उदास।
उरि वसि नाथ सुदासकै, अहनिसि सास उसास॥१२॥

उच्छिष्टा विषया सवै, इंद्रियनि के परपंच।
भुगते जगवासीनि नैं, नहि चांहौं अघसंच॥१३॥

उभय नांम है दोय कौ, राग दोष ए दोय।
मेटि दोय दै दास कौं, दरसन ज्ञान सुजोय॥१४॥

उपशम क्षपक जु श्रेणी द्वै, सव भासै तू देव।
तू उत्तंग अभंग है, विनु उनमाद अछेव॥१५॥

उज्झित जग जंजाल तैं, उतकंठा तैं दूर।
उतकंठा मेरी हरौ, दै सेवा भरिपूर॥ १६॥

उच्छेदक जग फंद तू, हरि मेरे उदमाद।
उणमणि मुद्रा दास कौं, दै जोगी अविवाद॥ १७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उनमांन जु तेरौ नहीं, उनमतता नहि नाथ।
तू उनमत्त स्वभाव मैं, रमैं रमा कै साथ॥ १८॥

रमा शुद्ध सत्ता महा, द्रव्य गुणातम रूप।
चिनमुद्रा निजशक्ति जो, गौरी अतुल अनूप॥ १९॥

उल्लालातम इह जगत, या सम और न सिंधु।
उपरि जगत कै तू सही, काटि हमारे बंध:॥ २०॥

उच्च महा उतकिष्ट तू, जपैं उमापति तोहि।
उपसर्गा सब दूरि ह्वै, तोतैं सब सुख होहि॥ २१॥

उत्सर्गी उत्सर्गमय, इहै त्याग कौ नांम।
तू त्यागी संसारकौ, उपशांती अभिरांम॥ २२॥

— छंद पद्धरी —

उपवास देहु निजवास देव, अति है सुउजागर अतुल भेव।
उदितोदित तात उपाधि चूरि, मुनि उपाध्याय ध्यावैं सुसूरि॥ २३॥

उदईक विभाव गहै न तोहि, उन्मीलित प्रगटित तू हि होहि।
उतकिष्टा उतकिष्ट जु असाथ, तेरी सुउपासन देहु नाथ॥ २४॥

उल्हास विलास अपार देव, तू परम उपास्य अनंत भेव।
तू है न उपासक शुद्ध तत्व, सब तोहि उपासै अतुल सत्व॥ २५॥

उपहासन ते रहितू असंग, प्रभु उर अंतर भासै अभंग।
उद्योतमांन अति उदयवान, उदवेग वितीत अनंत ज्ञान॥ २६॥

उतकौं इतकौं न फिरैहि तूहि, तू है सुउतारक भव समूहि।
उतश्रृंखल भाव न एक पासि, तु उतश्रृंखल स्वांमी अपासि॥ २७॥

उल्लंघक है तू उदधि लोक, उपरोध नही तू है असोक।
तेरै न उपाश्रय कोई नाथ, उत्साहमई जतिनाथ साथ॥ २८॥

उत्तमता तो सम कौंन धार, तू उग्रोग्र जु जगदेव सार।
उर उग्रतपा मुनिराय धीर, उर अंतर धारहि तोहि वीर॥ २९॥

उतपल दल लोचन अति विसाल, उपचारी तू अति ही रसाल।
उपचार न तो सम और कोई, जर मरण जनम मेटै जु सोय॥ ३०॥

उत्तमाश्रम आदि सबै तु धर्म, तोही करि प्रगटहि तू अधर्म।
प्रतिमा जु उपल अर धातु रूप, तेरी जु बनांवहि अति सुरूप॥ ३१॥

उपकर्ण न तेरहि कोइ होइ, उपयोग भाव उपकर्ण सोइ।
उरहार तू हि उरझार दूर, तू नांहि उपद्रित कर्म चूर॥ ३२॥

उपलभ्य तू हि उपलंभ रूप, उपदेसी तू सब देस भूप।
उद्यांनवास ऋषि करहि धीर, तोकौं इकंत ध्यावैं सुवीर॥ ३३॥

उदवास वास करि धरि उपास, अति रमहि तो महँ परमदास।
उपवन वन गिरि सरिता सुगांम, पुर देस मांहि तू ही सुनांम॥ ३४॥

उतपात सकल होवैं निपात, भूकंप उल्कपातादि जात।
उदधी समांन उर अति अथग्ग, तेरी मुनि गांवहि सुमग लग्ग॥ ३५॥

उपजी सुबांनि ता मांहि देव, अमृत समांन अदभुत अछेव।
ताकौं सुपीय बहु जीव लोक, हूये अमृत्यु आनंद थोक॥ ३६॥

— छंद वेसरी —

तेरी वांनी अमृत अर्था, और सुधारस कहिये विर्था।
अमरा नांम देवगति जीवा, मरण करैं दुख लहै अतीव॥ ३७॥

अमरा कहिवे के जु मुधा ही, तैसौं वन कौ पांन सुधा ही।
चलती कौं गाडी जन जानैं, मरतौं कौं अमराकरि मांनैं॥ ३८॥

नहि अमरा न सुधा सो जांनी, तू अमरा अमृत तुव वांनी।
उर वसि हमरै उरहर देवा, करौं उरवसि तेरी सेवा॥ ३९॥

अवर उरवसी रंभा नांमा, वहुरि तिलोतमादि अभिरांमा।
नही अपछरा नहि सुर लोका, चाहौं तेरी भक्ति अलोका॥ ४०॥

उदवासक तू इंद्रिय ग्रामा, सुवस वसावै अति गुणधामा।
उदक कहा जैसौं तू सीता, अति निर्मल चिद्रूप अतीता॥४१॥

उपादेय तू जग सब हेया, उत्कीर्णो न कदापि अमेया।
उपादान अर निमित जु द्वैही, कारण भासै तू अति है ही॥४२॥

सर्व उकीरि राखिया अर्था, तेरे ज्ञान मांहि अत्यर्था।
निज गुन की उग्र जु है सेना, तैरै दोष नही कछु लेना॥४३॥

शक्ति नही कर्मनि मैं अैसी, दासन हूं सौं करैं बहैसी।
उत्तरदायक एक जु तू ही, प्रश्न करैया सर्व समूही॥४४॥

उदभासक सु विभासक तू ही, तत्त्वज्ञान भासै जु प्रभू ही।
अति उद्दाम देव उदघाटा, सुखै चलावै निज पुर बाटा॥४५॥

उश्न गुणो अग्नि मैं जैसैं, केवल ज्ञांन आप मैं तैसैं।
जिनकै घट उदयाचल मांही, उदितो तू दिनकर सक नांहीं॥४६॥

तिनकै भ्रांति निसा कित पैए, शुद्ध प्रकास विभास वतैए।
उजलाई उत्तमता तेरी, सो संपति आनंद घनेरी॥४७॥

— छंद गीता —

उद्धरोद्धर उत्तरोत्तर उद्धतोद्धत शुद्धत्वं।
उज्जलोज्जल उत्तमोत्तम, उत्कटोत्कट बुद्धत्वं॥४८॥

उठि उठि जीव सम्हारि आपा, जड मैं तेरौ रूप नां।
अैसे वैंन सुनाय स्वांमी, तो सम और स्वरूप नां॥४९॥

उठि कैं तेरी भगति वल तैं, उगिलि नांखौं प्रकृतिजी।
उलटि जग सौं सुलटि तोपैं, आंऊं अतिमति सुमति जी॥५०॥

— दोहा —

प्रभु की जो उतकिष्टता, सोई कमला होइ।
पदमा दौलति संपदा, श्री धन लक्ष्मी सोइ॥५१॥

आगैं ऊकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ऊकारं पदमं देवं, ज्ञानानंदमयं विभुं।
परात्परतरं शुद्धं, वुद्धं वंदे स्वरूपिणं॥ १॥

— दोहा —

ऊ कहिये सिद्धांत मैं प्रकट विश्नु कौ नांम।
सर्व व्यापको विश्नु है, परम ज्योति गुणधांम॥ २॥

विश्नु सदाशिव हरि हरो, गणपति त्रिनपति देव।
तमहर भयहर गुणधरो, तू जगदेव अछेव॥ ३॥

ऊरध लोक प्रदायको, ऊरध सबकै तू हि।
ऊर्जित जगमूरध तु ही, नहि काहू सौं दूहि॥ ४॥

उषा मांहि जु ऊठि कैं, जपैं तिहारौ नांम।
अहनिसि मंगल रूप ही, रहै महाविश्रांम॥ ५॥

ऊंघ नींद सब खोय कै, तजि विषयनि कौं साथ।
भजै तोहि सोई जनम, सफल करै जगनाथ॥ ६॥

भजन निरंतर जोग्य है, है आवस्य त्रिसंधि।
भजन करै सोई लहै, केवल भक्ति असंधि॥ ७॥

ऊग्यो जिन घट तू प्रभू, जगरवि दीन दयाल।
गयो ऊनता भाव सव, गई न्यूनता लाल॥ ८॥

ऊठ्यो जब तू गाजि कैं, भविघटि नाद स्वरूप।
मोह गयो तव भाजि कैं, विषय कषाय जु रूप॥ ९॥

ऊपर दासनि कौ प्रभू, करै तो विनां कौंन।
दास ते हि उर अंतरैं, भजैं तोहि गहि मौंन॥ १०॥

ऊपरि नीचौं दिसि विदिसि, व्यापि रह्यो तू देव।
और न चाहैं नाथ जी, देहु रावरी सेव॥ ११॥

ऊपरि सब कैं तू सही, सव तैं ऊंचौ ईस।
तेरी ऊकस सौं मुनी, हरैं मोह कौं धीस॥ १२॥

ऊठि न सकहीं तू तिनैं, ऊर्जित करै अनूप।
ऊर्जित प्रबल सुवीर कौं, कहैं मुनी गुणरूप॥१३॥

ऊहापोह वितीत तू, ऊहा तर्क जु नांम।
तू अवितर्क स्वरूप है, अतुल अर्क निज धांम॥१४॥

ऊर्मी नांम तरंग कौ, तोमैं अतुल तरंग।
ऊर्मीपति जलनिधि कहा, तू गुणसिंधु अभंग॥१५॥

ऊधिम तेरै कछु नही, तू ऊधिम तैं दूरि।
मेरै ऊधिम लागिया, सौ हरि करि भरिपूर॥१६॥

ऊर्णनाभि है मांकरी, उरतैं काढै तार।
आपहि मैं खेलै तारसौं, वहुरि सकौचै सार॥१७॥

तैसैं तू निज परणती, आपहि मांहि उपाय।
आपहि मैं लय करि प्रभू, ध्रूव राजै जिनराय॥१८॥

नांम उर्मिला नदिनि कौं, नदी सुपरणति होय।
तू चिद्रूप समुद्र है, अति गंभीर जु सोय॥१९॥

ऊलर तोसौं जे रहैं, फसिया विषयनि मांहि।
ते निज निधि पांवै नहीं, भव भरमैं सक नांहि॥२०॥

ऊभौ द्वारै रावरै, करौं वीनती देव।
द्वारै द्वारै भटकिवौ, मेटि देहु निज सेव॥२१॥

ऊग्यो ज्ञानांकुर जवै, उर क्षेत्रैं जगदीस।
कण स्वरूप तू जव लह्यो, योग रूप अवनीस॥२२॥

ऊक चूक करि मोह नैं, हर्यौ हमारौ माल।
चिदघन धन द्यावौ सही, ज्ञान स्वरूप विसाल॥२३॥

दाह लगायो मोह नैं, गुन मंदिर कै मांहि।
दाह वुझै नहि अव लगैं, ऊपर करहु न कांहि॥२४॥

दाह वुझावो स्वरस दै, त्रिश्ना हरौ अपार।
पार देहु भव सिंधु कौ, तू तारक जग सार॥२५॥

ऊठि नहीं जु विमोह मैं, उकसि पारै रारि।
तुझ दासनि सौं लोकजित, दास करौ अघटारि॥ २६॥

प्रभू ऊघड्यो राजई, जांनैं सव संसार।
मोह उदै ध्यांवैं नहीं, ध्यांवैं निरहंकार॥ २७॥

ऊमरादि जे निंद्य फल, भखैं अभख आहार।
तिनकै घटि भक्ती नहीं, भक्ति दया आधार॥ २८॥

— छंद गीता —

ऊर्द्ध गांमी ऊर्द्ध धांमी ऊर्द्ध लोकी नाथत्वं।
तू हि ऊर्द्धादूर्द्ध नाथा, वडहाथा दै साथत्वं॥ २९॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ऊर्द्ध भाव स्वभाव पूरा, ऊर्द्ध लोक प्रचारत्वं।
ऊर्द्ध शक्ती अतुल युक्ती, देव वितीत विकारत्वं॥ ३०॥

ऊंची दसा सव तैं जु तेरी, शक्ति व्यक्ति विभूति जो।
संपति रमा पदमा सु दौलति, कमला और सुभूति जो॥ ३१॥

इति ऊकार संपूर्ण। आगैं ऋ वर्ण का वर्णन करै है।

— श्लोक —

ऋकाराक्षर कर्त्तारं, धातारं धर्म शुक्लयो।
ज्ञातारं सर्वभावानां, वंदे त्रातारमीश्वरं॥ १॥

— दोहा —

ऋ वरण वर्ण जु सूत्र मैं, देवमात कौ नांम।
देव तु ही तेरै नहीं, तात मात धन धांम॥ २॥

अर देवासुर जाति जे, तेऊ गर्भज नांहि।
देव जौंनि सुर मात है, इह भाख्यो श्रुति मांहि॥ ३॥

दासनि कै निश्चै भयो, देवमात तुव भक्ति।
तुव दिक्षा सिक्षा विनां, देवमात नहि व्यक्ति॥ ४॥

रमैं चरन पंकज विषै, तातैं दासा देव।
तिनकी रक्षक भक्ति ही, सुरमाता श्रुति एव॥५॥

सतपुरुषनि की मात विनु, और न है सुरमात।
परम उदात्त अपात्त तू, दै स्वभक्ति जग तात॥६॥

ऋषि गुर ऋषि वर देव तू, ऋषि तर ऋषि पर नाथ।
परम धुरंधर ऋषिनि मैं, ऋषि लागे तुव साथ॥७॥

ऋषिप ऋषीश्वर ऋषभ तू, वृषभदेव अविकार।
ऋजु सुभाव अति सरल तू, ऋषिपति ऋषी अपार॥८॥

ऋजुमति विपुलमती ऋषी तोहि भजैं ऋषिभाव।
केवलभाव प्रभात तू, प्रभो भवोदधि नाव॥९॥

ऋजुता भाव विना कभी, लहिये तू न ऋषीस।
ऋत्विक होता कर्म कौ, तू मुनिराय अधीस॥१०॥

सामग्री प्रकृति सवै, अनल निजातम ज्ञान।
तू ऋत्विक होमैं महा, प्रवल प्रपंच अज्ञान॥११॥

ऋचा तिहारी बांनि है, ऋद्धि सिद्धि कौ मूल।
ऋषिनायक सुखदायको, तू ऋषिगन कौ चूल॥१२॥

— बरवै छंद —

हौं विरवा सम हतमति जगजन मूढ,
भव वन मांहि वसेरा अवुध अगूढ।
पात पात करि झारिउ मिथ्यावाय,
मधु ऋतु मायापाय जु अति अधिकाय॥१३॥

मधु ऋतु भलिय जु इह माया ते नाथ,
पतझर करि विरवे कौं फुनि वडहाथ।
पात फूल फल जुत करि अति अधिकौ जु,
बिरवै कौं रमणीय जु करहि सुमौज॥१४॥

इह माया दुखदाया भव भव देव,
विरवै सौं भल करहि न कवहु अछेव।
तपिउ ताप दुखया करि हौं अति ईस,
तप ऋतु सम इह माया दाह करीस॥१५॥

झर लांवन अमृत कौ तू अति मेह,
ज्ञानांकुर तो विनु को करई परम सनेह।
भव्य सिखंडी हरषहि सुनि तुव गाज,
तपति हरन तू प्रभुजी अधिक समाज॥१६॥

वरषा ऋतु जित सरस जु तुम्हरी सेव,
दै जिनराय अधास अनादि अछेव।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
ऋतु जु सरदसम उज्वल केवल बोध,
तुव किरपा तैं लहिये परम प्रबोध॥१७॥

ससिर समानो जडताभाव सुमोहि,
लगिउ जु चिरतैं हरि प्रभु वुधिहर सोहि।
दिनकर सम तू हरि प्रभु जडता भाव,
दै निजवोध प्रबोध मिटाय विभाव॥१८॥

हिम ऋतु सम इह सठता मोतैं टारि,
दै परवीन स्वभाव भवोदधि तारि।
ऋतुपट भासक ऋतुरति जीतक देव,
ऋतुराजो ऋषिराजो तू जु अछेव॥१९॥

ऋषि सव मिलि करि लिखिया तू इकतत्त्व,
ऋषि नरपतिया जतिया तू अति सत्व।
ऋणनासक ऋणवीत तु ही रणजीत,
ऋषिक न तोसौ जग मैं और अजीत॥२०॥

— छप्पय —

ऋद्धि प्रचंडी नाथ, तु जु है मनसुत खंडी,
मनखंडी जु अखंड, तोहि ध्यांवैं वनखंडी।
ऋद्धि निरंतर पास, पूजि तू ऋद्धि परंपर,
सकल ऋद्धि परकास, ऋद्धि कैंवल्य धुरंधर।
ऋद्धि सिद्धि संमृद्धि भरीया, अतुल वृद्धि परिवृद्ध तु,
हांनि वृद्धि तैं रहित देवा, योगीश्वर परसिद्ध तु॥ २१॥

ऋतु षट पूरण धीर, वीर तू रतिपति चूरण,
ऋद्धि अवास विभास, शुद्ध गुणशक्ति प्रपूरण।
ऋते ज्ञान नहि मोक्ष, ज्ञान तो विनु नहि स्वांमी,
भुक्ति चहैं न विमुक्ति निष्प्रहा भक्त सुनांमी।
भुक्ति मुक्ति की मात भक्ती भक्त नाथ ऋषि नाथ तू,
ऋषि राया भवपाज सांई, ऋण हर अनिवड हाथ तू॥ २२॥

— दोहा —

ऋते नांव वर्जित सही, वर्जित सकल विभाव।
शुद्ध स्वभाव प्रभाव तु, राव भवोदधि नाव॥ २३॥

ऋते अर्थ वर्जित कहैं, विगरि कहैं जु वितीत।
विना कहैं रहित जु कहैं, त्यक्त कहैं जु अतीत॥ २४॥

ऋते कर्म नोकर्म तू, भाव विभाव वितीत।
ऋते युक्ति संसार तू, मुक्त स्वरूप प्रतीत॥ २५॥

— कुंडलिया छंद —

अनुभव रूप अकाय तू ऋ सही जु।
रायांराय तू, विनु दायाद स्वभाव।
विनु दायाद स्वभाव भाव जाके अतिगाढे।
ऋते छाय अतिछाय कर्म सव भर्म जु बाडे।
जाके कछु न विकार नहीं जग जार नहीं भव।
ऋते क्षोभ अर लोभ नाथ राजै धर अनुभव॥ २६॥

अनुभै मूल सचूल तू ऋते छद्म अर सद्म।
ऋते परिग्रह भिन्नतैं पद्मा रूप सुपद्म।
पद्मा रूप सुपद्म खेद खिन्नो नहि कव ही।
ऋते पुन्य अर पाप ताप जाकै नहि सव ही।
जाकै नहीं उपाधि नहीं असमाधि नही भै।
ऋते जु रांमा रांम नाथ राजै सुख अनुभै॥ २७॥

टीकौ जग कौ रावरै, सोहै देव ललाट।
ऋते नांम अर गांम तू, धांम रूप उदघाट।
धांम रूप उदघाट ठाट कौ नायक तू ही।
पाट धार शिववाट एक परवर्त्त प्रभू ही।
तैरै नहि गुनथांन नही परमांणु गनी।
ऋते काल जगजाल धीर धार्‌यां जग टीकौ॥ २८॥

— दोहा —

ऋवरण सुरमाता कही, तुव श्रुति अर तुव भक्ति।
तू श्रीधर श्री रूप है, अति दौलति अति शक्ति॥ २९॥

इति ऋकार वर्णनं। आगै ॠ वर्ण का वर्णन करै है।

— श्लोक —

ॠकाराक्षर कर्त्तारं, भेत्तारं कर्म भूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वंदे देवं सदोदयं॥ १॥

— दोहा —

ॠकारो आगम विषै दैत्य मात कौ नांम।
दैत्यां मोहादिक महा, रागादिक दुख धांम॥ २॥

तिनकी माता भ्रांति है, महा अविद्या रूप।
इह दैत्यां वा ए असुर, लागि रहे जु विरूप॥ ३॥

तुव प्रताप निज दास जे, हरैं भ्रांति मोहादि।
भ्रांति हरन मोहादि रिपु, तातैं तुम जु अनादि॥ ४॥

वहुरि असुर तेऊ कहे, सुर्ग विनां जे देव।
विंतर भांवन ज्योतिषी, ए भवनत्रिक भेव॥५॥

सुर असुरनि कै जौंनि ही, कहिये तिनकी मात।
गर्भज नहि तातैं नही, तिनकै मात सुतात॥६॥

उतपादक शज्या प्रभू, सोई राक्षस मात।
देव मात भी वह सही, और न दूजी बात॥७॥

देवासुर पदवी प्रभू, चाहैं नांही दास।
चाहैं तेरी भक्ति जो, निहकामा सुखरास॥८॥

मोहादिक अति राक्षसा, भ्रांति जनित हैं दुष्ट।
थिर चर कौं पीडैं महा, मदमांते प्रभु पुष्ट॥९॥

दैत्यांतक तुम देव हौ, दैत्य मात के शत्रु।
हमरी भ्रांति निवारि हो, सव जीवनि के मित्र॥१०॥

ॠ असुरनि की मा कही, असुर मात है भ्रांति।
भ्रांति हरौ दै दौलती, अविनासी विश्रांति॥११॥

इति ॠ वर्णनं संपूर्ण। आगैं लृ वर्ण का वर्णन करै है।

— श्लोक —

लृकाराक्षर कर्त्तारं, देवं देवाधिपं परं।
पूर्ण पुरातनं शुद्धं, वुद्धं वंदे जगत्प्रियं॥१॥

— दोहा —

कहैं लृकार सिधंत मैं, देव मात कौ नांम।
देव कौंन सो गुर कहै, सुनैं सिक्ष अभिरांम॥२॥

निज गुन उपवन मैं रमैं, प्रभू अखंड बिहार।
ता सम और न देव है, वहै देव अविकार॥३॥

गुरनि वतायौ देव तू, तेरै मात न तात।
तू अनादि अनिधन प्रभू, सव कौ तात सुमात॥४॥

करैं क्रीड भव सिंधु मैं, तातैं जीव हु देव।
जीव सनातन तू कहै, एहु अनादि अछेव॥५॥

कहवे के अमरा प्रभू, देव कहांवैं जेहु।
तेऊ गर्भज नां कहे, औपादिक हैं तेहु॥६॥

देव मात सौ कौंन है, ताकौ इह विचार।
गुन देवा क्रीडा करैं निज स्वरूप मैं सार॥७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गुन जननि तुव भक्ति है, तातैं इह सुरमात।
अथवा दासा देव हैं, इह पालक विख्यात॥८॥

सुर अक्षर जननी प्रभू, तव वांनी मति रूप।
सो श्रुति सुर जननी कही, और न कोई स्वरूप॥९॥

सो श्रुति पइए भक्ति तैं, भक्ति महा विश्रांम।
देव मात तुव भक्ति है, प्रथम कही अभिरांम॥१०॥

— छंद मोती दांम —

नही तुव भत्ति विना प्रभु और, सुदेवनि की जननी जग मौर।
जनैं सुर अक्षर रूप सवै हि, सुराजननी तुव श्रुत्ति फवै हि॥११॥

धरैं अति ज्योति सु तू लखिमीस, न तेरहि कामिनि कंचन धीस।
सु तेरिहि भूति त्रिलोकन माय, कहैं निज दास तिसैं सुर माय॥१२॥

रमैं पद पंकज मांहि सदाहि, सुदेव कहांवहि दास महाहि।
गनैं निज मात सु ते तुव भत्ति, तु ही जगदेव अमात सुसत्ति॥१३॥

सु देहु प्रभु निज सेव रसाल, न यातहि और कछु सुविसाल।
नहीं कछु चाहहि दास कदापि, लखैं तुव मूरति नाथ उदापि॥१४॥

— दोहा —

सुर माता तुव भक्ति है, तू है संपति मूल।
संपति तेरी परणाती, सो दौलति अनुकूल॥१५॥

इति लृकार संपूर्ण। आगैं लॄ का वर्णन करै है।

— श्लोक —

लृकाराक्षर धातारं, दातारं सर्व संपदां।
नेतारं मोक्षमार्गस्य, वंदे देवं सदोदयं॥१॥

— दोहा —

लृ कहिये अहि मात कौ, नांम सुग्रंथनि मांहि।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अहि दुर्जन ए कर्म हैं, विष भरिया सक नांहि॥२॥

इन नागनि की मात प्रभु, नागिनि माया होय।
कहैं अविद्या मुनि गणा, जाकौ नांम जु सोय॥३॥

हरैं मुनी माया महा, हरैं कर्म कौ दंड।
हरैं गहलता रूप विष, जपि तुव नांम सुअंक॥४॥

मंत्र गारडु नांम इह, तेरौ दीन दयाल।
सो हमकौं दै अमृता, हरि माया विष लाल॥५॥

अहि नागा जे देवता, नागेंदर इत्यादि।
देव दैत्य खेचर नरा, तिर नारक सव वादि॥६॥

जो सुर जौंनि सुमात है, सव देवनि की एह।
नाग मात ही सो सही, हम न चहैं सुर देह॥७॥

नाग नांम गज कौ सही, ताकी हथनी मात।
हस्ति हस्तिनी आदि कछु, दास न चांहैं तात॥८॥

नाग नांम है साप कौ, ताकी नागिनि मात।
तातैं अधिक सुदुष्टता, सो हरि जगत विख्यात॥९॥

नागिनि मरन जु एकभव, करै अधिक नहि दोष।
इह दुरजनता भव भवै, करै अधिक तन सोष॥१०॥

जव तू आवै घट विषै, नागिनि कौ नहि वास।
तू गरूडध्वज देव है, सर्व पिशुनता नास॥११॥

नाग नांम सीसा सही, ताकी जननी खांनि।
नागादिक सब धातु की, खानि न मांगौं दांनि॥१२॥

खांनि एक जाचौं प्रभू, गुन रतननि की जो हु।
तेरी भक्ति महाप्रभू, देहू क्रिपा करि सो हु॥१३॥

नाग नांम मणिधर पुरुष, तू मणि धारी देव।
चिंतामणि चिद्रूपमणि, धारै तू जु अछेव॥१४॥

तेरी शक्ति सुमणि सही, अतुल विभूति सुलच्छि।
सो श्री संपति धन रमा, दौलति है परतच्छि॥१५॥

इति लृ वर्णनं। आगैं एकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

एकं विशुद्धमत्यक्षं, परमानंद कारणं।
परं परात्परं देवं, वंदे स्वात्म विभूतिदं॥१॥

— दोहा —

ए कहिये सिद्धांत मैं, नांम महेश्वर देव।
ए कहिये फुनि विश्नु कौ, तुम ही देव अछेव॥२॥

ईश्वर समरथ नांम है, तोसौं समरथ कौन।
तातैं तू हि महेस है, भजैं मुनी गहि मौंन॥३॥

एक एव जगदेव तू, व्यापक लोकालोक।
तातैं विश्नु अत्रिश्न तू, जिनवर नित्य असोक॥४॥

एक महाज्ञानी तु ही, एक सुकेवल ज्ञान।
एक मुक्ति मारग तु ही, परमेश्वर भगवांन॥५॥

एकीभाव अनेक तू, एक तत्व परधांन।
सकल तत्व भासक तु ही, अति अविचल सरधांन॥६॥

एकनाथ द्वै भेद तू, त्रिक भेदो चउ रूप।
पंच भेद धारक तू ही, परम स्वरूप अनूप॥७॥

एक धरम आकास इक, एक अधर्म निरूप।
एक अणू मिलि वहुत अणु, खंद होय जड रूप॥८॥

एक एक कालाणु वा, सकल असंखि जु होय।
मिलै न कोई काहु सौं, अमिल शक्ति है सोय॥९॥

एक जाति बहु भांति के, जीव अनंत अनेक।
पुदगल अमित अनंत है, तू भासै सुविबेक॥१०॥

एक मूरति पुदगलो, और सवै जु अरूप।
जड स्वरूप पांचौं कहे, जीव रासि चिद्रूप॥११॥

एक रासि संसार की, एक रासि हैं सिद्ध।
मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
देह धरे जग जीव है, सिद्ध विदेह प्रसिद्ध॥१२॥

ए संसारी सिद्ध ह्वौं, जे सुभव्य तुव भक्त।
रुलैं अभवि संसार मैं, कभी न होवैं मुक्त॥१३॥

ए तन सिद्धनि कै नही, तातैं भ्रमण न होय।
तन तैं ए संसारि के, भ्रमण करैं दुख सोय॥१४॥

ए जु पदारथ सकल ही, नांहि विगारै नाथ।
मेरौ कछु इह रिपु लग्यो, पुदगल मेरै साथ॥१५॥

ए जड़ इनके रूप मैं, मेरौ एक न भाव।
दै स्वभाव निजभाव तू, शुद्ध बुद्ध अविभाव॥१६॥

— छंद वेसरी —

ए जड है सव शुन्य स्वरूपा, अंक समांन कह्यौ चिद्रूपा।
तू है एक शुद्ध चिद्रूपा, दै प्रबोध स्वांमी सद्रूपा॥१७॥

एक राय तू और न राया, एक स्वभाव अनंत अकाया।
एक उपादेयो सब हेया, सकल सेय तू मैं नहि सेया॥१८॥

एकी भाव न तातैं पायो, दुविधा धरि निजरूप न भायो।
एक महा अविवेकी मैं ही, जीव होय हार्‌यौ जड पैं ही॥१९॥

एन कहावै पाप जु कर्मा, पाप पुन्य लागे द्वय भर्मा।
पाप महापापी जग मांही, भक्ति ज्ञांन कौ रिपु सक नांही॥२०॥

एन नासिवे कारन पुन्या, धरैं विवेकी दास जु धन्या।
पुन्य पाप तैं रहित जु होई, आवैं तुव पुरि भ्रांति जु खोई॥२१॥
एन भेद बहु मुख्य जु हिंसा, पुन्य भेद बहु मुख्य अहिंसा।
एण कहावैं मृग पशु जीवा, मृग मारें तैं पाप अतीवा॥२२॥
एडक कहियै पुत्र अजा कौ, निरबल जाकौं बल नहि काकौ।
तिनके हतें जु करुणा नासै, करुणा विनु नहि भक्ति प्रकासै॥२३॥
ए मारैं ते नरकैं जांवैं, मांस भखैं ते अति दुख पांवैं।
मद्य मांस सम और न निंद्या, करुणा सम और न जग वंद्या॥२४॥
एण नेत्र सम नारी नेत्रा, लखिकरि डिगैं न इंद्री जेत्रा।
तेही व्रिढ भक्ती तुव पांवैं, एन समस्त जु तेहि नसावैं॥२५॥
एणांक जु सेवै तुव पाया, नांम चन्द्रमा इहै बताया।
तू त्रिभुवन कौ चंद अनंदा, चंदहु कौ तू चंद मुनिंदा॥२६॥
एक पक्ष धारै नहीं कोई, नित्यानित्य कथक तू होई।
प्रभु एकांतवास एकत्वा, सदा एकता रूप सुतत्वा॥२७॥
एक वाद नहि तेरै पैए, द्वय वादी अविवाद वतैए।
तू एकत्व तंत्र नैकत्वा, अदभुत गति तेरी अतिसत्वा॥२८॥

— छंद पद्धडी —

एकत्व गम्य एकत्व लीन, एकत्व सार शुद्धत्व चीन।
एकांतवास धारैं मुनिंद, ते तोहि एक ध्यावै जिनिंद॥२९॥
एकिंद्रियादि जीवा अनंत, एको दयाल तू ही जु कंत।
एतत्स्वरूप भवतारि मोहि, रुद्रा जु एकदस जपहि तोहि॥३०॥
एकादस जु पडिमा सुसार, श्रावक्क धर्म भासै अपार।
एकाधिवीस लक्ष्या जु आदि, गुन सर्व तू हि भासै अनादि॥३१॥
एकाधितीस उदधी सुआयु, नौग्रीव जाय पावैं सुकाय।
तप धारि वार केई जु जीव, सुर लोक मांहि पहुंचैं अतीव॥३२॥
एको सुसिद्धि पथ तू हि देव, विनु सेव जन्म धारैं अछेव।
एकाधिचालिसा सहस वर्ष, कलपांत काल पीछैं सहर्ष॥३३॥

एनानिवारि मनु धीर धर्म, करि हैं प्रगट्ट तेरौ हि मर्म।
एकांवना जु कोडी हि अष्ट लक्षा सहंस चउरासि मिष्ट॥ ३४॥

छसै जु सत्तवीसा सिलोक, ए एक ही जु पद के सथोक।
एद एक सौ जु वाराह कोडि, लक्षा तियासि आधिक्य जोडि॥ ३५॥

ए अट्ठवन्न सहसा वहोरि, पंचाधिका जु सहु पद्द जोरि।
भाखै जु तूहि धारै मुनिंद, गांवैं सुकित्ति नागिंद इंद॥ ३६॥

ए एकसट्ठि दूणा जु लेय, हैं एक सौं जु वाइस हेय।
प्रकृति जु नाथ उदया सवै हि, मोतैं जु टारि तोतै दवै हि॥ ३७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— सोरठा —

एकहत्तरि परि एक, अधिक भयें वहत्तरि कला।
सकल कला अविवेक, जौ तोकौं ध्यावै नही॥ ३८॥

एक्यासी चउरासी असी पच्यासी लगि रहैं।
तेरम ठांण अपासि, जरी जेवरी सी अवल॥ ३९॥

ए सहु प्रकृति चूरि, पावै तेरौ निज पुरा।
तू है एक प्रभूरि, एकानव भी है सही॥ ४०॥

एकोत्तर सौ पूत, ऋषभदेव के शिव भये।
तोकौं जपि अवधूत, तू है शिव कारन सही॥ ४१॥

एक सहस परि अष्ट, लक्षन अर नामा प्रभू।
तेरे जपैं जु शिष्ट, अमित नांम गुण अमित तू॥ ४२॥

एष एव परसिद्ध, सव मैं तू राजै सदा।
प्रगट होहु गुणवृद्ध, शुद्ध दसा करि दास की॥ ४३॥

ए ही तोतैं नाथ, मांगू और न एक हू।
तू छुडाय वडहाथ, कर्म पासि तैं मोहि हूं॥ ४४॥

एक एकता देव, तेरी सो कमला रमा।
श्री पदमा जु अछेव, धन दौलति सोई सही॥ ४५॥

इति एकार संपूर्ण। आगैं ऐकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ऐकारं परमं देवं, सर्वाक्षर निरूपकं।
वंदे देवेंद्र वृन्दार्च्यं, परमं पुरषोत्तमं॥ १॥

— दोहा —

ऐ कहिये सिद्धांत मैं, नांम महेश्वर देव।
तुम ही ईश महेस हौ, और न दूजौ भेव॥ २॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महा

ऐक्य रूप ऐश्वर्य धर, ऐक्य सुभाव अनूप।
ऐक्य नैक्य अव्यक्त तू, अति ऐश्वर्य स्वरूप॥ ३॥

ऐहिक फल मांगूं नही, परभव भोग न चाहुं।
निःकामा भक्ती चहूं, तुव भजि कर्म नसांहुं॥ ४॥

— छंद पद्धडी —

ऐश्वर्य मूल ऐश्वर्य दाय, ऐरावताधिपति परहि पाय।
ऐश्वर्य मोह कौ सर्व नासि, भासे सुतत्व आनंद रासि॥ ५॥
ऐश्वर्यपार ऐश्वर्यसार, ऐश्वर्यभार आश्चर्य धार।
परमैश्वरय्य परतक्ष देव, देवाधिदेव लोकेस एव॥ ६॥
ऐरावतादि भरतादि, सर्वक्षेत्राधिपो हि, तू विगत गर्व।
ध्यावै जु ऐलविल तोहि धीस, देवो जु ऐलविल द्रव्य ईश॥ ७॥
यक्षाधिपो जु कहिये कुवेर, देविंद्र कोसधारी घनेर।
देवेंद्र एलविल सर्व तोहि, ध्यावैं जु तारि भवतैं जु मोहि॥ ८॥

— छंद गीता —

ऐक्य रूपा नैक्य रूपा पर्म रूपा रूप तू।
धर्म रूपा है अनूपा अति निकूपा भूप तू॥ ९॥

ऐश्वर्यभागी अति विरागी परम भागी नाथ तू।
अति संग त्यागी वहिरभागी वस्तु लेय न साथ तू॥ १०॥

ऐश्वर्यवासा अति उदासा कर्मनासा देव तू।
हे आसवासा तारि दासा दै अनासा सेव तू॥ ११॥

— मंदाक्रांता छंद —

ऐरावंतो गजपति महा इंद्र कै होय नांमी,
ताकौ स्वांमी सुरपति सदा तोहि पूजै सुधांमी।
इंद्राधीशो जिनपति तु ही मोक्ष मूलो अनांमी,
नांमी तू ही प्रगट पुर सो सर्व स्वांमी अकांमी॥१२॥

तेरे दासा सुरपति दसा, नांहि चाँहै प्रभूजी,
ऐरावंतादिक गज घटा नांहि वांछैं विभूजी।
दासा तोकौं द्रिढ मन चहैं, पाय सेवैं स्वभूजी,
निःकामा जे जग नहि रूलैं, पांवइ शुद्ध भू जी॥१३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कर्मा भर्मा दहति सुजनो नाथ तोकौं जु ध्यावै,
पावै तोकौं तुव पद रतो, ह्वै विरक्तो जु भावै।
नागेंद्रो जो, तुव तजि कभी और कौं नांहि गावे,
जिह्वानेका, करि तुव भजै, एक तोहि रिझावै॥१४॥

— सोरठा —

ऐरावतपति इंद, तोहि निहारै, भक्ति करि।
ध्यावैं सकल मुनिंद चंद सूर गावैं सवै॥१५॥

सहस नेत्र करि रूप निरखैं तो पनि त्रिप्त नां।
सहस चर्ण करि भूप तो ढिग नांचैं सुरपती॥१६॥

सहस हाथ करि नाथ, भाव बतावैं इंद्र से।
थाह न आवै हाथ, तेरे गुन अंभोधि कौ॥१७॥

सहस जीभ करि देव, देवपती गावैं तुझैं।
कोई न पावै छेव सेव देहु निज दास कौं॥१८॥

अति ऐश्वर्य स्वरूप तेरी जो ऐश्वर्यता।
सो संपति जगभूप, भाषा मैं दौलत्ति कहैं॥१९॥

इति ऐकार निरूपणं। आगैं ओकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ओंकारं परमं देवं, सर्वज्ञं सर्वदर्शिनं।
नाथं सुर्गाधि नाथानां, वंदे लोकेश्वरं विभुं॥१॥

— दोहा —

ओ कहिये आगम विषै, ब्रह्मा कौ है नाम।
तू हि जु ब्रह्मा हर हरी, और न दूजौ रांम॥२॥

ओजस्वी अति तेजमय, तू है ओज स्वरूप।
ओज नांम है तेज कौ, तेज पूंज तू भूप॥३॥

ओक नांम घर कौ सही, तेरै घर नहि देह।
लोकालोक विषै तुही, व्यापि रह्यो विनु नेह॥४॥

ओक तिहारी ज्ञान है, निज क्षेत्रो चिद्रूप।
सर्व ज्ञेय हू ओक हैं, व्यवहारैं जु प्ररूप॥५॥

ओक तिहारै सर्व ही, सवके तुम ही ओक।
ओक तिहारौ लोक कै मांथै हैं गुन थोक॥६॥

ओप चढावै ओपनी, जैसैं सिकला फेरि।
ओप चढ़ावै जीव कौं, तैसैं तू अघ घेरि॥७॥

ओज अनंत अपार धर, ओजस्वी तोसौ न।
दूजो है संसार मैं, प्रभु अति सठ मोसौ न॥८॥

ओष्ठ कहांवैं ओठ ए तोहि न जपैं अयांन।
तातैं अधर कहांवही, जपिवौ तोहि सयांन॥९॥

ओठ न हालै कर फिरै, मन फेरा मिटि जाहि।
अजपा जप करि धीर धी, तो हि लहै सुखदाय॥१०॥

ओहडि राख्यौ मोहि प्रभु, कर्म मिले जु वलिष्ट।
तू ही छुडावै वंद्यतैं, तो सम और न इष्ट॥११॥

ओहडिवौ मन पौंन कौ, तू हि वतावै देव।
ओहडि राखे ज्ञान मैं, लोक अलोक अछेव॥१२॥

ओषद अन्न अभै महा, ज्ञांन दांन ए च्यारि।
इनकै गर्भित दान वहु, भासक तू भव तारि॥ १३॥

ओज नाम पंडित कहैं, विक्रम कौ हू ईस।
तोसौ और पराक्रमी, नांहि जु कोई अधीश॥ १४॥

ओस विंदु सम जग विभव, सो नहि संपति कोय।
शक्ति रावरी संपदा, सोई दौलति होय॥ १५॥

इति ओकार संपूर्ण। आगैं औकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

औकाराक्षर कर्त्तारं, ज्ञानानंदैक लक्षणं।
सर्वज्ञं सुगतं शुद्धं वुद्धं वंदे जगत्प्रियं॥ १॥

— चौपई —

औ कहिये ग्रंथनि कै मांहि, नांम अनंत जु संसय नांहि।
तुम ही देव अनंत सुज्ञान, एक अनंत तु ही भगवांन॥ २॥

औपासक श्रुति भासै तू हि, तू न उपासक देव प्रभू हि।
औदासीन्य स्वभाव सुधार, अति आनंद मई विसतार॥ ३॥

औषद रूप तु ही जगदेव, हरै व्याधि जर मरण अछेव।
औषधीश है चन्द्र सुनांम, चंद सूर ध्यांवैं तू हि रांम॥ ४॥

औपाधिक नहि तोमैं भाव, औत्कंठिक एको न विभाव।
लगे भाव औपाधिक मोहि, हरौ देव नहि कठिन जु तोहि॥ ५॥

औदार्यादि गुणा तो मांहि, ज्ञान महानिधि देहु न कांहि।
प्रभु अनौपम्यो इक तू हि, सर्व उपमा योज्ञ समूहि॥ ६॥

— मंदाक्रांता छंद —

औत्सुक्यादी तव नहि कभी, तू अनौत्सुक्य रूपो।
औद्धत्यादी कछुहु न कभू, शांत रूपो अनूपो।
औपाधी जे, लहहि न तुझैं, श्री गुरँ यों कही जो।
औदार्यादी गुण धर नरा, तोहि ध्यांवें सही जो॥ ७॥

औचित्यादी, अति गुण भरौ, औपशांती तु ही जो।
औदैको जो, रहहि न नथैं तू न कर्मी वही जो।
तैंरै स्वांमी, रहहि न सही औपशांती हु भावा।
नांही तैंरै, क्षय उपशमा, तू हि शुद्ध स्वभावा॥ ८॥

तैंरै नाथा, निज गुण मयो, ज्ञायको शुद्धभावो।
पैए तैंरै, प्रकृति रहितो, पारिणामो स्वभावो।
औदारीकादि तन सवै नांहि, तैंरै प्रभू जी।
अप्राकृत्तो, सतचितमयो, तू विदेहो विभूजी॥ ९॥

— गीता छंद —

औदईको औपशांती, नांहि क्षय उपशम कभू।
क्षायको प्रकृत्यक्ष यो जो, पारिणांमीक है प्रभू॥ १०॥

राग दोषा मोहभावा, ए जु औपाधिक सही।
तू न औपाधी कदापी, है उदापी गुर कही॥ ११॥

रमा न औपाधी तिहारी, स्वाभाविक परणति सही।
गौरी सुलच्छि स्यामा जु शक्ती सोइ दौलति हू कही॥ १२॥

इति औकार कथनं संपूर्ण। आगैं अं का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

अंकारं परम देवं, शिवं शुद्धं सनातनं।
योगिनं भोगिनं नाथं, वंदे लोकेश्वरं विभु॥ १॥

— दोहा —

अं कहिये आगम विषै, परब्रह्म कौ नांम।
परब्रह्म परमातमा, तुम ही देव सुधांम॥ २॥

अंक नांव है चिन्ह कौ, तैंरै चिन्ह न कोय।
ज्ञानानंद जु चिन्ह है, तू चिद्रूप जु होय॥ ३॥

अंक नांम अक्षर सही, तू अक्षर अविनासि।
अंहि चरन कौ नांम है, सेवैं सुर नर रासि॥ ४॥

अंह्रिप कहिये वृक्ष कौं, अदभुत तरू सुखदाय।
तो सम सुरतरु और नहि, अति अनंत फल छाय॥५॥

अंशु किरण कौ नांम है, किरण अनंत जु धार।
तू अनंत दुति देव है, भांनुपति अविकार॥६॥

अंशुक कहिये वस्त्र कौं, तू हि दिगंबर देव।
पीतांबर पूजित तु ही, निराभर्ण अति भेव॥७॥

अंतर तैं कछु नहीं, नित्य निरंतर ईस।
अंतर बाहिर एक रस, अति रसिया अवनीस॥८॥

अंतर उर मैं सदा, वसि जगजीवन नाथ।
अंतर मेटि दयाल तू, देहु आपुनौं साथ॥९॥

अंदर उर कै आयकैं, हरौ कुबुद्धि अपार।
दैं स्वभक्ति भव तारि तू, निरधारां आधार॥१०॥

— मालिनी छंद —

यतिपति सु चंद को, अंक जाकै न कोई।
जग प्रभु जु अवंको, वक्रता नांहि होई।
जग जित जु अपंको, शंक लेसो न जामैं।
भजहु भजहु भव्या, नांहि रागादि तामैं॥११॥

प्रभु तजि जग मैं जे, राचिया मूढ जीवा।
नहि लहहि शिव ते, जन्म धारैं अतीवा।
हरि भजि जग जीतैं, ते लहे स्वात्म तत्वा।
जिन सम नहि कोऊ, और दूजौ सुसत्वा॥१२॥

प्रभु भजिहि सुभाजै, अंधको मोह नांमा।
प्रभु भजहि सभागा, त्यागि संसार रामा।
प्रभु तजहि अभागा, तेहि अंधा न औरै।
प्रभु सम नहि कोई, वीर बैठौ जु चौंरै॥१३॥

— इंद्रवज्रा छंद —

अंभोज तेरे चरणारविंदा, सेवैं नरिंदा अमरिंद चंदा।
हरै संतापा प्रभु तू हि अंभा, धरै सुधामा नहि कोई दंभा॥ १४॥

अंभोधि तू ही गुन रत्न धारा, अंभोद तू ही वरषै सुधारा।
ज्ञानामृतांभो रस धार वृष्टी, तो वाहिरा धर्म मई न स्त्रिष्टी॥ १५॥

नाही जु अंभोनिधि और दूजो, तू ही गुनांभोधि विभू प्रभू जो।
नांही जु अंतःपुर तू हि एको, शुद्धत्व शक्ती परमो विवेको॥ १६॥

अंसा विभागा गुन भाव रूपा, अत्यंत तेरै परम स्वरूपा।
अंसी जु तू ही अति अंसधारी, अंतो न तेरो कवहू विहारी॥ १७॥

— छंद वेसरी —

अंजन रहित निरंजन देवा, अंतर रहित देहु निज सेवा।
अंजन धोय निरंजन कीनें, वहुत भक्त तारे रस भीनें॥ १८॥

अंध अंधता धारक प्रांनी, किये सचक्षु दास करि ज्ञांनी।
इहै अंधता तोहि न देखै, अंध तेहि तोकौं नहि पेखै॥ १९॥

अंबुज चरन तिहारे सेवैं, तेहि सचक्षु तोहि प्रभु लेवैं।
अंतक कहिये काल गुसांई, तू अंतक कौ अंत जु सांई॥ २०॥

अंत न आदि न तेरी कोई, तू अनादि अनिधन प्रभु होई।
अंतरभेदी अंतरजांमी, अंतरवेदी अंतर स्वांमी॥ २१॥

अंतरातम तोहि जु ध्यांवैं, बहिरातम तुव भेद न पांवैं।
अंतरनाथ अंतरनाथा, अंतर मेटि देहु निज साथा॥ २२॥

अंतराय हरि विघन निवारा, करि जु निरंतराय भवतारा।
अंतरंग दै भाव सुभक्ती, वहिरंगा वुधि मेटि अयुक्ती॥ २३॥

अंतरमुख मोकौं करि देवा, जनमि जनमि दै अपनी सेवा।
अंतरआतम करि जगनाथा, बहिरातमता मेटि अनाथा॥ २४॥

अंवुधि अमृत रस कौ तू ही, अंवुद जित ध्वनि करन प्रभू ही।
अंवर रहित निरंवर देवा, मुनि दिगंवर धारैं सेवा॥ २५॥

अंवर जड तू है चिद्रूपा, अंवर कौ अंवर सद्रूपा।
अंवर सर्व समायो तोमैं, ज्ञान रूप तू क्यौं नहि मोमैं॥ २६॥

अंवरमान अमानो तू ही, ज्ञान प्रमाणो सर्व समूही।
अंभ अंवु ए जल के नांमा, जल चंदन आदिक करि रांमा॥ २७॥

पूजैं तोहि पुनीत पुमाना, अंग विवर्जित तू हि प्रमाना।
अंग उपंग न तेरै कर्मा, कर्म जनित सामग्रि न भर्मा॥ २८॥

अंग अनूपम अप्राकृत्ता, पुरुषाकार जु अव्याकृता।
अंग नांम शास्त्रनि कौ स्वांमी, सर्व अंग भासक तू नांमी॥ २९॥

अंग अनंत गुनातम तेरै, तू सरवंग शुद्धता प्रेरै।
अंगीकृत पालक तू नाथा, नित्य अनंगा अगणित साथा॥ ३०॥

अंगी अंग धरैं ए जीवा, तू जीवनि कौ पीव सदीवा।
अंग तिहारौ जे जु निहारैं, अंतर वाहिर ते अघ टारैं॥ ३१॥

अंग विना जो काम अनंगा, ताहि निवारक तुम जु असंगा।
अंशुक अंतहकरण स्वरूपा, ताकैं अंचलि रतन अनूपा॥ ३२॥

वंधि अवंध अरूप गुसांई, बलिहारी तेरी जग सांई।
अंहि तिहारे अंतर मेरे, अंतर मेरौ अंहि जु तेरे॥ ३३॥

सदा वसौ इह भांति जु मैरै, पर्यौ रंहू दरवार जु तैरै।
अंतकाल भूलौं नहि राया, जनम जनम पांऊं तुव पाया॥ ३४॥

अंत मेटि करि हमैं अनंता, जनमजरा मेटौ भगवंता।
अंतकाल कवहू नहि आवै, सो पुर दै कछु और न भावै॥ ३५॥

— सार्दूल विक्रीडित छंद —

तेरौ देव गहैं अनन्य शरणा, ते पांवई तोहि जी।
अंतर्भूतिमयी तुही गुणयुतो तोसौ तुही होहि जी।
वाह्याभूति न तोहि सेय जु सकै, तू त्याग को सोहि जी।
अंतर्भेद महा प्रपूरि जु रह्यो, तू तारि लै मोहि जी॥ ३६॥

अंतर्भूति विशेष तोहि जु गहै, नां वाहिरी से सकै।
जो त्यागै वहिरंग भूति जु सवै, ताकौं न कर्मा तकै।
अंत:मध्य वसै जु तू हि तव ही रागादि भर्मा रूकै।
तू ही देव सहाय और न परो तोतैं जु मो हो सकै॥ ३७॥

अंधा तोहि जु छांडि और हि भजैं, ते पांवई दुर्गती।
मोहांधासुर नासको जु परमो, तू दायको सद्गती।
अंधा आंखि लहैं जु तोहि सुथकी, तू ज्ञानचक्षु यती।
अंसा हू नहि बुद्धि मो महि प्रभू क्यौं वर्णऊं श्रीपती॥ ३८॥

— सवैया — ३१ —

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अंवुधि ते ऊपनी जु लक्ष्मी वखांनैं लोक,
तेरे गुन अंवुधि मै ऊपनी अनादि की।
वहै गुन रूपिनी सु रावरी अनंत शुद्ध
निज सत्ता एक दूसरी न आदि की॥
वहै जग अंवा अर अंबिका कहावै नाथ,
ओर नांहि अंवा नहि अंबिका जु वादि की।
जीवनि की घातिनी सुपापिनी कहावै देव,
अंविका भवांनी तेरी शक्ति करुणादि की॥ ३९॥

— अथ साधकी अवस्था —

अंवर ही अंबर है वोढिवे के काज जाकै
धरा सी सुसेजु जाकै वडी है अमीरीतै।
दिसा परधांन परधांन निज भावभाई,
ज्ञानादि अनंत जाकै भले हैं स्वसीरीतैं॥
गुहा गिरि गेह अर नेह सव जीवनि तैं,
प्रज्ञा सी सुगेहिनी महेसिनी उजीरी तैं।
रीरी नांहि भाखिवौ न जाचिवौ जु काहू पैंहि,
कोटिक अमीरी वारि डारूं या फकीरी पैं॥ ४०॥

— श्रगधरा छंद —

ज्ञांनी तू एक स्वांमी परम पद धरो अंबिका नाथ संतो।
अंवा शक्ती हि तेरी अवर नहि कभी तू जु है श्रीरमंतो।
पद्मा माया सुलक्ष्मी प्रगट निज गुणा अंतरा भूतिकंतो।
तू ही तू ही प्रभूजी अतिपति अतुलो एक शुद्धो अनंतो॥ ४१॥

मो कौं भक्ती हि देहो अवर नहि चहूं, एक तो ही जु सेऊं।
तेरे पादांवुजा जे मधुर मधु भराह्वै अलीवास लेऊं।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अंवा ताता सुभ्राता सकल तजि प्रभू एक तोही जु वेऊं।
सेऊं सेऊं हि तोही तुव मय हि भयो धर्म नावा जु खेऊं॥ ४२॥

— वसंत तिलका छंद —

तोकौं नमोस्तु जग देव विशाल मूर्ति,
ज्ञान स्वरूप अनिरूप रसाल मूर्ती।
ध्यान प्ररूप जगभूप अनंतमूर्ती,
शुद्ध स्वभाव परिभाव प्रभू अमूर्ती॥ ४३॥

शुद्धात्म लब्धि उपलब्धि मई जु तू ही,
लोकाधिनाथ जगदीस सदा प्रभू ही।
योगाधिरूढ अवनीश विभू अभू ही,
सर्वस्व रूप नहि रूप महाप्रभू ही॥ ४४॥

— दोहा —

तुव गुन अंवुधि मैं प्रभू, रसकल्लोल प्रतच्छि।
सो विभूति चंडी महा, रमा सुदौलति लच्छि॥ ४५॥

इति अंकार वर्णनं। आगैं अः अक्षर का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

अ:काराक्षर कर्त्तारं, देवं देवाधिपं विभुं।
सर्वाधारं निराधारं, वंदे वंद्यं सुराधिपैः॥ १॥

— दोहा —

अः कहिये ग्रंथन विषै, कृष्न नांम परतक्ष।
कृष्न जु आकर्षण करै, गुण पर्यय अत्यक्ष॥ २॥

व्यवहारैं सव ज्ञेय कौ, आकर्षण जु करेय।
सुरनर मुनिवर मन हरै, कृष्न सुनांम धरेय॥ ३॥

प्रभु तुम ही कृष्न जु महा, कृष्नभाव नहि कोय।
कृष्न पूज्य परमातमा, तुम परमेश्वर होय॥ ४॥

अः कहिये फुनि श्रुति विषै, नांम महेश्वर देव।
तुम ही ईश महेश हौ, और न दूजौ भेव॥ ५॥

— वरवै छंद —

अ:काराक्षर जिनवर तू जगनाथ,
सव अक्षर भासइ तू अति गुण साथ।
हमरी भूल मिटाय जु करि निजरूप,
अवर न चांहहि अति जित जगपति भूप॥ ६॥

सव जीवनि की आस तु ही सव पास,
पासि हरन सुख रासि करहु निजदास।
भुकति मुकति दायक तू सरवसदाय,
अवर न चांहहि राय भजंहि तुव पाय॥ ७॥

अ आदी अः परजंताक्षर सोल,
सकल विभासइ देव सु तू हि अडोल।
मैं मति हीन जु राचिउ विषयनि मांहि,
तोहि विसारिउ नाथ चितारिउ नांहि॥ ८॥

रूलिउ जु भव मैं जन्म गहे जु अनेक,
अव तारि जु भव जल तैं देहु विवेक।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री
तौ विनु कौन उतारइ भवजल नाथ,
इकतारक तू सुनिउ जु अति वडहाथ॥९॥

— दोहा —

रमा शक्ति चिद्रूपता, निज सत्ता है सोय।
विद्या भूति सुसंपदा, संपति दौलति होय॥१०॥

इति अः वर्णनं। आगैं एक कवित्त मैं षोडसाक्षर का निरूपण करै है।

— सवैया - ३१ —

अमल अनादि देव आदिनाथ इष्ट सेव
ईश्वर उधारक है ऊरध निवास तू,
ऋषि गण ध्यांवैं तोहि ॠ ऌ ॡ विभासक तू
एक सरवज्ञ सव एन कौ विनास तू,
ऐश्वरतापूर तू ही ऐरावतपति ईश,
ओज पुंज ज्ञान कुंज औषधी प्रकाश तू,
औपाधिक भांवनि मैं एक नांहि तेरै कोऊ
अंगना न अंग संग अः प्रभु विलास तू॥६॥

इति श्री भक्त्याक्षर माला बावनी स्तवन अध्यातम बारह खड़ी नाम ध्येय उपासना तंत्रे सहस्रनाम एकाक्षरी नाम मालाद्यनेक ग्रंथानुसारेण भगवद्भ जनानंदाधिकारे आनंदोद्भव दौलतिरामेन अल्पबुद्धिना उपायनी कृतेसुर निरूपणो नांम प्रथम परिच्छेद ॥१॥ अथानंतर ककार का व्याख्यान करै है॥६॥

— श्लोक —

कलानिधिं कलातीतं, कामदं कामघातकं।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
किंनाकघ्नं शिवाधारं, कीट कुंथ्वादि रक्षकं॥ १॥

कुमार्ग परिहंतारं, कूट पाखंड वर्जितं।
केवल कैतवातीतं, कोप कौटिल्य नाशकं॥ २॥

कंकारं कर्म भेत्तारं, कंप कांक्षादि वर्जितं।
वंदे लोकेश्वरं देवं, कः स्रष्टारमतीश्वरं॥ ३॥

— त्रोटक छंद —

करमामय भैषज रूप तु ही, तम झूठ विनासक भांनु सही।
दुख नांहि जु पांवहि जेहि भजैं, करमा वहु बांधहि जेहि तजैं॥ ४॥

कलपा अति वीति गये अतुला, कलपा पति नाथ तु ही अचला।
कवहू नहि तू हि विभाव गहै, जु कदापि न नाथ अभाव लहै॥ ५॥

भगता कलकंठ जु तू हि मधू, कल है जु कलाधर तू रज धू।
भगता जु कलायर तू जलदो, भवि हैं कमला रवि तू फलदो॥ ६॥

भगता जु कमोदिनि तू हि ससी, तुव जोति महा उर मांहि वसी।
कहु कौंन प्रकार मिलै प्रभु तू, वह भासहु भेद महाप्रभु तू॥ ७॥

करुणाकर कोप विदारक तू, कमलासन आसन धारक तू।
कलपित्त लपै नहि तू हि प्रभू, नहि धारहि दोस कदाचि स्वभू॥ ८॥

नहि हैं जु कलाप अभावनि के, प्रभु है जु प्रताप स्वभावनि के।
तुव है जु कल्यांण स्वरूप प्रभु, परमा जु कल्याणक धार विभू॥ ९॥

— छंद पद्धडी —

कल्याणदेव कल्याणराय, कल्याण सर्व लागे जु पाय।
कल्याण नाम तेरौ न और, धारैं जु दास ह्वैं लोक मोर॥ १०॥

इह कलिय काल माहैं जु मूढ, तुव तत्व त्यागि सेवैंहि रूढ़।
कण रूप तूहि तुष मिलित और, कण गहहि साधु करि कर्म चौर॥ ११॥

कलकंठ तू हि और न कोइ, कल नांम मिष्ट भाषा जु होइ।
मेटौ जु सर्व मेरे कलंक, कलरहित तू हि स्वांमी निसंक॥ १२॥

कदली समान है जग असार, इकसार तू हि सरवस्व धार।
करुणा निधांन क्रम कंज तुल्य, तेरे जु तू हि स्वांमी अतुल्य॥ १३॥

क्रमवंत ज्ञान तेरौ अनंत, क्रम टहल मोहि दै जगत कंत।
कर्त्ता जु तू हि स्वभावि कर्म, करणो जु तू हि तैंर न भर्म॥ १४॥

है संप्रदांन तू ही अनादि, है अपादांन स्वांमी जु आदि।
अधिकर्ण तू हि निश्चै स्वरूप, जितकर्ण साध मन जीत भूप॥ १५॥

— छंद वेसरी —

करण कहावैं इंद्रिय नांमा, तू हि अतिंद्रिय अकरण रामा।
कृपानाथ कृतकर्म निवारा, तू कृतकृत्य कृतारथ भारा॥ १६॥

कृपण तजक तू परम उदारा, कवहु कृपणता भाव न धारा।
कृती कृपानिधि कसर न कोई, कमी कजी कवहू नहि होई॥ १७॥

कलिल पाप की नांम कहावै, कलिल नासकर तू हि सुहावै।
कर्मठ कर्मण्यः कठिनो तू, परम कृपाल अपठ पठनो तू॥ १८॥

कवी काव्यकर रहित कलेसा, कर्मबंध निरबंध अलेसा।
कटुक कठोर वचन नहि बोलैं, दास तिहारे रहैं अडोलैं॥ १९॥

करकस वैंन कतरणी हीये, तिनकै भक्ति जु नांहि सुनीये।
चित कठोरता त्यागै संता, तव तोकौं पांवै भगवंता॥ २०॥

कहैं करंक सरीर जु नांमा, तजैं प्रीति तनसौं निहकामा।
कदरजता सव तजिकरि ध्यांवैं, तव तेरौ निज रूप जु पांवैं॥ २१॥

कटकादिक तजि हौंहि इकंता, कष्ट गिनैं न भजन मैं संता।
कलकलाट कछुहू न सुहावै, कचकचाट कौ ना मन भावै॥ २२॥

कवहु तोसौं मन न चुरांवैं, तनमन धन कछु नांहि दुरांवैं।
तव तोकौं भावैं निज दासा, तजैं कदाग्रह जगत उदासा॥ २३॥

पर दुख देखि न कसकै हीयो, पर सुख हरत सकै नहि जीयो।
तिन दुष्टनि कै तेरी भक्ती, कहां पाइए नाथ सुयुक्ती॥ २४॥

कद्दू करड कलिंद कसेरू, संध्यो आंन जु राति वसेरू।
कटहल कमरख अर कचनारा, तजैं कठूमर दास तिहारा॥ २५॥

कच नख वृद्धि न तैं होई, महामनोहर रूप जु सोई।
कषा दुखनि कौ तू जिनराया, जीव रषिक तू रहित कषाया॥ २६॥

कलमष हरन करन विधि तू ही, कलह कलभ कौं सिंह प्रभू ही।
करि तारक तू कपि जु उधारा, तू कृतज्ञ कृतघनता हारा॥ २७॥

कृतघन सम नहि पापी कोई, लहै नही निज भक्ति जु सोई।
कृती महामुनि तेरे दासा, कनक कामिनी त्यागी उदासा॥ २८॥

करण दंडि करणी सव त्यागैं, तव तेरे गुन माहि जु लागैं।
कनक कामिनी तैं नांही, तू विरकत जोगी जगमांही॥ २९॥

कमलापति तू परगट नाथा, कमला भामा रूप न साथा।
कमला तेरी परणती स्वांमी, तू परिणांमी द्रव्य सुनांमी॥ ३०॥

तो सम कमलाधर नहि कोऊ, सर्वसुदायक तू हरि होऊ।
तेरी कमला भिन्न न कोई, एक रूप एकातम होई॥ ३१॥

— छंद सालिनी —

कालातीता कालहारी जु तू ही, कामातीता काल भासै समूही।
विधा तोपैं वंचणी काल की है, शक्ति तैंरै रासि जो माल की है॥ ३२॥

सोई काली तत्व कल्लोलरूपा, तू है अब्धी ज्ञान वारि स्वरूपा।
काली कोई वस्तु दूजी न औंरै, शक्ती तेरी नाथ राजै जु चौंरै॥ ३३॥

काली हिंसा, रूप नांही जु होई, प्रांनी रक्षा भासका भूति सोई।
कालैं कौलै, नांम काली सु जांतैं, क्रांती रूपा, सोई गौरी जु तातैं॥ ३४॥

तोकौं ध्यांवैं, कालकंठा सदा ही, तेरे नांमैं, काल कूटा सुधा ही।
काई दूरा, तूहि है कास्यपीशा, नाथ पासा, तू हि तारै तपीशा॥ ३५॥

कार्यो तू ही, कारणो तू हि स्वांमी, काहू नैं तू, नांहि कीनां सुनांमी।
कारूण्यो तू, जीव रासी जु पालै, काठिन्यो तू, कांम क्रोधादि टालै॥ ३६॥

कायोत्सर्गा साधु ध्यांवै जु तो ही, कामी क्रोधी मैं महा तारि मोही।
काया माया सर्व झूठि हि स्वांमी, काया काष्ठा तो विनां है अकांमी॥ ३७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

लागे काटा जीव के नादि तैं जी, काटे काटा तू हि आदेस तैं जी।
कास स्वासा आदि रोगा सवै ही, तेरे नामैं आधि व्याधी दवै ही॥ ३८॥

— छंद वेसरी —

कारण कारिज तू हि दिखावै, कारण सिवपुर सकल सिखावै।
कारण कारिज रहित जु तू ही, अद्वितीय आनंद समूही॥ ३९॥

कांखवांधि जे मोह पछारैं, काट जीव के सर्वजु टारैं।
कांन मूंदि विकथातैं दूरा, ते तोकौं पांवैं गुण पूरा॥ ४०॥

कातर जन तोकौं नहि पांवै, कापुरषा तुव जस नहि गांवैं।
काच खंड सम इंद्री भोगा, जे न तजैं ते भक्ति न जोगा॥ ४१॥

कारमांण अर तैजस देहा, इनतैं छूटै होय विदेहा।
सव जीवनि कैं ए द्वय लागे, इनतैं छूटैं जे तुव पागे॥ ४२॥

कारिज अर्थ तोहि जे ध्यांवैं, ते ते तोहि कारिज पांवैं।
कांक्षा मेटि करैं जे सेवा, ते दासा तोही कौं लेवा॥ ४३॥

काढि जगत के दुखतैं देवा, सकल काहिली दूरि करेवा।
दासा कालिम कांमिनी त्यागैं, काज वीज गनि तोमैं लागैं॥ ४४॥

काहल संखादिक बहु वाजा, तेरै वाजैं तू जगराजा।
सिद्धि करौ प्रभु कारिज मेरा, कांत रूप है रूप जु तेरा॥ ४५॥

काय रहित तू है अतिकाया, सव कायनि कौ रक्षक राया।
किरण अनंत अखंडित धामा, तू किनाक नासक अतिनामा॥ ४६॥

सहसकिरणि है तेरौ दासा, क्रिया रूप तू जगत उदासा।
निज किरिया पूरण तू स्वांमी, पर किरिया तैं रहित अनांमी॥ ४७॥

किरिया तेरी परणति नाथा, क्रियावंत तू अति गुण साथा।
तू हि किसोर सदैव जिनेसा, दिन दूलह जगपति जति भेसा॥४८॥

तू किसोर वय कवहू नांही, अति जूनौं जोगी जगमांही।
किलविष कलमष तैं तू न्यारा, तू कित हू नहि रक्त जु प्यारा॥४९॥

किल कहिये निश्चै करि देवा, देहु आपुनी पूरन सेवा।
किन हूं नैं तू कीनां नांही, देव अकर्तृम है सव मांही॥५०॥

कियो किराव रमैं इह स्वांमी, विषयनि राचि भज्यौ नहि नांमी।
धन्य किरात हु जौ गुन गांवैं, धिग विप्रा जो लव नहि लांवैं॥५१॥

कीट पतंगादिक जे जीवा, सव कौ रक्षक तू जगदीवा।
कीट कालिमा तैरै नांही, कीरति तेरी सव जग मांही॥५२॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तू ही कीमिया रूप मुनिंदा, संसारी कौ सिद्ध करंदा।
गुण कीर्तन तेरौउ धारैं, कीच रूप भवतैं निज तारैं॥५३॥

कील रूप जो माया सल्ली, सो तैरै नांही भव वल्ली।
ते जग मांहि वालमति कीका, जिनहि विसाख्यौ तू जगटीका॥५४॥

कीर जु सूवा कीर जु कीरा, तोहि जु ध्यांवैं ते जग धीरा।
नीच ऊंच अंतर नहि कोई, तोकौं भजै सु तेरा होई॥५५॥

कुसलमती तू त्रिभुवन पीवा, कुकथा खंडन तू जगदीवा।
कुनय विहंडन सुनय प्रकासा, तू कुकर्म टारै विधि भासा॥५६॥

कुत्सित मारग दूरि करेवा, कुगति कुमति नासै तू देवा।
तू कुवेरपति कुसल करंदा, कुमदचंद्र तेरौ जगचंदा॥५७॥

कुसमायुध नासक तू सूरा, कुटिलभाव कुटिलाई दूरा।
कुरजांगल आदिक वहु देसा, सव देसनि कौ नाथ महेसा॥५८॥

कुगुर कुदेव कुधर्म निवारा, कुलकर पूजित अतिकुल तारा।
कुचलन धार कुपात्र न पांवैं, मूढ कुभेष धारि नहि भांवैं॥५९॥

कुलाचार तैं तू प्रभु न्यारा, तू कुकीर्ति रहिता जग प्यारा।
कुल कोडि जु जीवनि के देवा, तु ही प्रकासै अकुल अभेवा॥६०॥

तू कुदाल सम कर्म निकंदा, तू कुधात तैं धात करंदा।
मिथ्या परणति सोइ कुधाता, तू कुसूत्र नासक जगत्राता॥६१॥

तू हि कुलाचलादि परकासा, कुर उत्तरकुर देव विभासा।
कुकला कुमत सेय नहि पावैं, तेरे मत करि तोमैं आवै॥६२॥

कुसमय काल पडै नहि देवा, जहां होइ तेरी नित सेवा।
तू कुसंग तैं न्यारा स्वांमी, तू कुद्रिष्टि नासक गुण धांमी॥६३॥

कुष्ट व्याधि नासैं तुव नांमैं, नसैं कुकर्म वहुरि नहि जांमैं।
कुलटासम इह कुवुधि कुनारी, सो हम तैं न्यारी करि भारी॥६४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कुकहिये आगम विषै, पृथ्वी नांम प्रसिद्ध।
तुम पृथ्वी धर अखिलपति, कृत्य कृत्य प्रभु सिद्ध॥६५॥

कुकहिये सिद्धांत मैं, कुत्सित वस्तु जु नांम।
तुम सव कुत्सित रहित हौ, परमेसुर अति धांम॥६६॥

— छंद वेसरी —

कूट जगत कै तेरौ ठांमा, कूट कपट के हम जन धामा।
हमरौ कूड निवार गुसांई, कूट लोक कौ दै जग सांई॥६७॥

क्रूर भाव तैरै नहि देवा, तू अक्रूर क्रूर नहि लेवा।
कूडी साखि भरैं जे जीवा, ते तोकौं न लहैं जग पीवा॥६८॥

कूट कुलेष क्रिया जे कारैं, ते मूढा तुव भक्ति न धारैं।
कूषमांड आदिक फल निंद्या, तजै दास तैरै जगवंद्या॥६९॥

कूट रहित तू देव अकूटा, जगत कूट कौ तू ही कूटा।
कूर लोक तोकौं नहि जांनैं, क्रूरभाव हिरदै मैं आंनैं॥७०॥

कूल जगत कौ तू जगनाथा, मेरी कूक सुनौं वड हाथा।
कूखि मात की मेटौ स्वांमी, करि अजरामर अज अभिरांमी॥७१॥

केवल रूप अनूप अकेला, केवल ज्ञानानंद जु भेला।
केवल लब्धि मूल जग स्वांमी, केवल सम्यक रूप अनांमी॥७२॥

केवल दायक तेरी सेवा, केचित करि हैं जगत अलेवा।
केतु धार तू केवल रामा, केम दरिद्र रहितो श्री धामा॥७३॥
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महा
केलि कुतूहल सव ही त्यागै, तेरी केलि मांहि मुनि लागै।
केलि रूप जो है सुर लोका, ताहि न चाहैं तेरे लोका॥७४॥

केन प्रकारैं तू प्रभू पैंए, सो प्रकार मोकौं हु बतैए।
केर केर कीयो मुहि नाथा कर्म मिले जड रूप जु साथा॥७५॥

केई तो करि उतरे पारा, केहरि तू नरकेहरि भारा।
केसरि चंदन घसि घसि देवा, करैं दास तेरी नित सेवा॥७६॥

केशव प्रतिकेशव हलि चक्री, तोहि जु पूजैं होय अवक्री।
केयूरादिक तजि आभर्णा, वस्त्रादिक तजि सर्वावर्णा॥७७॥

भजै दास है जगत उदासा, निरमोही निरदोष अनासा।
केका राव करैं निजभक्ता, जव तू गरजैं घनपति व्यक्ता॥७८॥

तू कैवल्य प्रकास विभासा, कैतव हारी सरल सुभासा।
कैतव नाम कपट कौं कैये, कैतव तै कैवल्य न लैए॥७९॥

तू कैलाशनाथ जगनाथा, तू कैवल्य निवास असाथा।
कैवर्त्तादिक जे नर नीचा, तोकौं ध्याय भए जु अनीचा॥८०॥

कोविद तू कोदंड वितीता, कोप निवारक क्रोध अतीता।
कोष तजैं जे गुणगण कोषा, तुव पद ध्याय होंहि भव मोषा॥८१॥

को न लहै भक्ती करि तोकौं, भक्ति देहु तेरे पद धोकौं।
कोईक जन तेरी मत जांनैं, सब ही जन तोकौं न पिछांनैं॥८२॥

कोक समान जु है संसारी, नादि कालि कौ विरही भारी।
मेरी कोक नारि सी शक्ती, सो मैं लखी न केवल व्यक्ती॥८३॥

मिथ्या रैंनि अनादि अनंती, भव्यापेक्षा नादि सुसांती।
सो अव तक वीती नहि ईसा, दरसन दिवस न प्रगट्यो धीसा॥८४॥

कोक वधू सी शक्ति न जोई, तातैं चैंन लह्यो नहि कोई।
अटक्यो कनक कामिनी मांही, अटक्यो भव बन मैं सक नांही॥८५॥

अब तुम सूरिज शुद्ध प्रकासौ, मेरी सत्ता मोहि विकासौ।
कोर कसर मेटौ सब मेरी, पाऊं परणति दीन्ही तेरी॥८६॥

कोटि अनंत चंद अर सूरा, तोपरि वारूं मुनिवर पूरा।
कोडां कोडि जु काल अनंता, बीत्यौ मोकौं जगत वसंता॥८७॥

अव निज वास देहु जगराया, मेटि भरमना मूल जु माया।
कोढ रूप इह कांम विकारा, सो मेरौ मेटौ भवतारा॥८८॥

संवर कोट देहु मम दुर्गा, मोहि न चहिये तोतैं सुर्गा।
कौतूहल कौतुक नहि तेरैं, कोटिल्यादिक भाव सु मेरैं॥८९॥

तू आतम कौतूहल धामा, कौतुक कारी निज विश्रामा।
कोटिल्यादि तजै नहि जौलौं, जीव न पावै तोहि जु तोलौं॥९०॥

कौलक कापालिक इत्यादी, तो विनु खोवैं जनम जु वादी।
कंद निकंदक कर्मनि केरी, दीसै अतुलित शक्ति जु तेरी॥९१॥

तू कंदर्प निवारक देवा, कंचन काई विनु अति भेवा।
कंज समान जु तेरे पावा, मुनिभौंर से करहि जु रावा॥९२॥

कंत जगत कौ तू जग देवा, कंप वितीत अजीत अछेवा।
कंधै तेरै मुनिमत भारा, मोहू दै प्रभु भव जल पारा॥९३॥

कांत अधिक तू कांता त्यागी, कांक्षा मेटि जपैं वडभागी।
कंठ सुकंठ करे गुन गांवैं, सकल कांमना दूरि वहांवैं॥९४॥

किंचित मात्र विभूति न राखैं, तेरी भक्ति महारस चाखैं।
किंकर तेरे जे हि कहांवैं, ते तेरौ निज रूपहि पांवैं॥९५॥

जम किंकर कौ भै कछु नांही, तेरौ शरण गहैं उर मांहि।
कुंद पहूप हू तैं सित चित्ता, करिकैं ध्यांवैं दास पवित्ता॥९६॥

कुंद कुंद हैं तेरे दासा, अति निर्मल निजरूप प्रकासा।
कुंठ समाना ते जग जीवा, जे तोकौं गांवैं नहि पीवा॥९७॥

कुंतादिक सव त्यागि जु शस्त्रा, भजैं भूप तोकौं जु अवस्त्रा।
कंठीरव सम तु जग दीसा, कर्म जु कुंजर जीत अधीशा॥९८॥

कंठाभरण जु तेरी वांनी, कंठी मोतिन की न वखांनी।
कंडू सम इह मदन विकारा, मेरौ मेटि जु जगत उधारा॥ ९९॥

कुंथ्वादिक कीटादिक प्रांनी, सव कौ दयापाल तू ज्ञांनी।
कूंची मोक्षतनी तुव हाथा, मोकौं भक्ति देहु जिननाथा॥ १००॥

— दोहा —

कं कहिये आगम विषै, नांम सीस कौ स्वांमि।
सीस नाय वंदें तुम्हैं, सुर नर मुनिवर नांमि॥ १०१॥

कं कहिये सिद्धांत मैं, नांव जु सुख कौ ईस।
तुम सुखदायक सिद्धिकर, शुद्ध महा जगदीस॥ १०२॥

कं लिखियो पुस्तक विषै, नांव तोय को नाथ।
तुम सीतल निरमल प्रभू, तपति हरण जितपाथ॥ १०३॥

कः कहिये श्रुति के विषै, नांव प्रजापति देव।
तुम ही देव प्रजापती और न दूजौ भेव॥ १०४॥

कः भाष्यो ग्रंथनि विषै, नांव वायु कौ नाथ।
वायु हुती अगणित गुणौं, तुम मैं वल अति साथ॥ १०५॥

कः गायो प्रभु सूत्र मैं, नांव सुर्ग कौ ईस।
सुर्ग नाथ सेवैं तुमैं, जगतनाथ जगदीस॥ १०६॥

कः भास्यौ वांणी विषै, नांव आतमारांम।
तुम परमात्म ब्रह्मपर, जीव सकल विश्रांम॥ १०७॥

कः कथियो भारति विषै, नांव जु सुख कौ वीर।
तुम सुखदायक जगतप्रभु, महा सुखी अतिधीर॥ १०८॥

कः लिखीयो अंगनि विषै, नांव प्रकास विख्यात।
तुम अनंत परकासमय, आनंदी साख्यात॥ १०९॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

करि मोहि आपुनौं जु कारिज तु ही जु एक
कितहू न जाऊं देव कीरति रट्यो करुं।
कुटिल कुभाव मेटि कूरता निवारि मेरी
केवल दै चक्षु नाथ नांहि कबहू मरुं।
कैतव न भाव तोमैं कोप कौ न लेस कभी
कौतुक न मोहि और तोहि उरमैं धरूं।
कंठ जो सुकंठ करि तेरौ ही जु गांन करि
कः प्रकास आप रूप ध्याय भौदधी तरूं॥ ११०॥

— दोहा —

कमला कंज निवासिनी, चरन कमल मैं वास।
शक्ति रावरी है रमा, सोई दौलति भास॥ १११॥

इति ककार संपूर्ण। आगैं कवर्गी खकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

खला रागादयो सर्वे, येन ज्ञानासिना हता।
ख्याति कांक्षा विनिर्मुक्ता, यं भजंति तपश्विनः॥ १॥

खिन्नो न क्वापि कालेपि, खी प्रकाशी महावल।
है खुरी खडग धाराभि, विंना सर्वाजिता धरा॥ २॥

खु निश्चयो स एवासो, खू सुमात्रा विभासकः।
खेचरैरर्चिंतो वारैरलभ्यो खैरतिंद्रियः॥ ३॥

मूर्खो न पंडितो विज्ञो, सर्वज्ञो सर्वदर्शिकः।
खौघा लभ्यंति यं नाहो, खं समानोपि पूर्ण धी॥ ४॥

खः प्रकाशी चिदाकाशी, यस्य दासी रमा महा।
यं जपंति सदाधीरा, स्तं वंदे परमेश्वरं॥ ५॥

— दोहा —

खं कहिये आकास कौं, तू आकास स्वरूप।
शुद्ध चिदाकासा प्रभू, आनंदी सद्रूप॥६॥

खं कहिये इंद्रीनि कौं, तू इंद्रिनि तैं दूर।
मन वच बुद्धि सुधि कै परैं, निज स्वरूप भरपूर॥७॥

खर तीक्षण कौ नांम है, खर किरण जु है भांन।
भांन चंद इंद्रादि सहु तोहि भजैं भगवांन॥८॥

खर कठोर कौ नांम हैं, तजैं कठोर स्वभाव।
तव तोकौं पावैं प्रभू, तू दयाल भवनांव॥९॥

खर समांन ते नर कहे, जे नहि ध्यांवैं तोहि।
खर कै पीठि जु भार है, इनकै परिगह होहि॥१०॥

— चौपड़ी —

खल भावनि कौ त्यागि नाथ, मैं खल कर्यौ न तेरौ साथ।
तू ख जीत भवभाव अतीत, खगपति पूजहि तोहि अजीत॥११॥

खरतर बात जु तोहि सुहाय, कपट न भावै तोहि जु राय।
तोहि खगेंद्र नरेंद्र सुरेंद्र, जपहि फणिंद्र सुचंद्र मुनिंद्र॥१२॥

खग कहिये नभ मांहि विहार, जिनकौ अथवा इंद्रिय प्रचार।
खग जु नांम चारन मुनि होय, खग सुर असुर विद्याधर जोय॥१३॥

सेवैं सर्व खगा जग जीव, इंद्रिनि मैं विचरैं जु सदीव।
पक्षनि हूं कौ है खग नांम, तू सव कौं सुखदायक रांम॥१४॥

खग अनंत कीनें निसतार, खगतारक तू खगपति सार।
खडगादिक सहु त्यागि जु शस्त्र, भजैं दिगंबर रहित जु वस्त्र॥१५॥

वस्तु खटाय जाय तजि स्वाद, सो तेरौ श्रुति कहइ अखाद।
सर्व अभक्ष तजैं तुव दास, श्रुति आज्ञापालैं गुन रास॥१६॥

ख्यात रूप तू ख्याति वितीत, ख्याति त्याग ध्यांवैं जु अतीत।
ख्यात किये तैं आतम धर्म, है विख्यात महा तू मर्म॥१७॥

खात दियो घट घर कै नाथ, चोर मिले मोहादिक साथ।
हरे रतन दरसन अर ज्ञांन, चरन तपश्चरन जु निज ध्यान॥१८॥

ख्यात चोर ए अति बलवांन, मोहिनि किण कीयो भगवांन।
राज तिहारे मोघ रखात, पैं देव इह कौंन जु वात॥१९॥

ख्यात देव विख्यात सुराव, द्याव हमारौ माल सुभाव।
नहि खातिका पौलि जु कोट, नहि अटकाव नही जिय खोट॥२०॥

अदभुत देव तिहारौ राज, काज न एक वडे महाराज।
खिन्न खेद कवहू नहि होय, निहकंटिक एकल भड सोय॥२१॥

— गाथा छंद —

खिन्न कियो मुँहि नाथा, साथैं लागे विभाव परिणामा।
सांति करौ वडहाथा, शुद्धा बुद्धा महाधामा॥२२॥

तू है खीण विमोहा, खीणकसाया सुखीण दोसा हू।
खीण जु राग अखोहा, माया माणा न रोसा हू॥२३॥

खी इंद्रीधर जीवा, ख कहिये नाथ नांम इंद्रिनि कौ।
तू है खी पति पीवा, दीवा तू तीन लोकनि कौ॥२४॥

खुक्कहिये निश्चै सौं, गुण गुणि भेदो न दीसई कोई।
प्रभु तेरी ही नै सौं, निज गुण जांनैं जती सोई॥२५॥

गुण ज्ञानादि अनंता, द्रव्य गुणी शुद्ध आतमारामा।
तू भासै भगवंता, संता सिद्धा महाधामा॥२६॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

खुभ्यो नांहि मेरैं हिये तू जु स्वांमी, खुभे इंद्रियादी विकारा विकांमी।
रुल्यो हौं जु तातैं अनंतौ अनादी, बह्यौ भौंर जालैं तुझै त्यागि वादी॥२७॥

खुस्यो हूं लुट्यो हूं भयो हूं विहाला, अवै लोकनाथा करौ नैं निहाला।
खुटैं नांहि मोपैं कषाया बलिष्टा, कुटैं नांहि स्वांमी विभावा जु दुष्टा॥२८॥

तिनौं नैं मुझे लूटि लीयो जु चौरं, सुदौरा प्रसिद्धा त्रिलोकी हि दौरं।
अवै लेय भक्ती मदत्ती स्वरूपा, करौं चौर चौपट्ट चौरा विरूपा॥२९॥

खुरो श्रृंग वीतां पिढोरा न सजे, तुझे जाहि ध्यावैं अविद्या भरा जे।
तु ही है जु खूंटा तिहारै हि जोरै, मुनी वीतरागा विभावा जु तोरै॥ ३०॥

रहैं खूंट सा नाथ कूटस्थ साधूं, समाधि स्थिता एक तोही अराधू।
करौ खूंट सा मोहि ध्याता अकंपा, इहै तोकनां नाथ मांगौं अचंपा॥ ३१॥

तु ही खेचरा खेचरी मुद्रा धारै, सवै खेचरा एक तोही निहारै।
किये खेचरा पार तैं ही घनें ही, हमौ पैं कहां नाथ जांवैं गनें ही॥ ३२॥

जु देवा सुधारे सुदैत्या सुधारे, सुविद्याधरा नाथ तैं ही उधारे।
सुपक्षी उधारे मुनी तैं उधारे, तु ही खेचरो खेचरानंत तारे॥ ३३॥

कहे खेचरा ते चलैं जे अकासैं, गने भूचरा भू परै जे विकासैं।
रमैं इंद्रियो मैं जु संसार जीवा, सु ते हू कहे खेचरा इंद्रि पीवा॥ ३४॥

तु ही जीव नाथा तु ही जीव तारा, तु ही है दयापाल जैंनी अपारा।
असंख्यात खेटा असंख्यात ग्रामा, जु तेरै तु ही राव दीसै अकामा॥ ३५॥

असी औ मसी नाथ वांणिज्य खेती, सवै धंध भावा तजैं चित्त सेती।
तवैं तोहि पांवैं तजे सर्व खेदा, तु ही है अखेदा अभेदा अछेदा॥ ३६॥

— चौपई —

खेडापति तू खेल न कोय, खेवट तो सम और न होय।
भवसागर अति गहर अथाह, पार करैया तू जु अगाह॥ ३७॥

खैर लभ्य तू इंद्रि अगम्य, ज्ञानगम्य तू केवलरम्य।
खोदि करम क्षोणी तैं देव, काढे रतन सुगुन अतिभेव॥ ३८॥

खोट न तेरैं घट मैं कोई, घट पटादि ज्ञायक तू होई।
खोसि न सकही तिनकौं कोय, जिनके सिर परि तू प्रभु होय॥ ३९॥

खौघ कहावै इंद्रिय साथ, तोहि न पाय सकैं जगनाथ।
खौरि न तिलक न तेरै सीस, त्रिभुवन तिलक तु ही जगदीस॥ ४०॥

खौंटि मिथ्यादिक जु विभाव, तैं सूधे कीये जगराव।
खं इंद्री तू इंद्रिय दूर, खं आकास समो भरपूर॥ ४१॥

खं सुर लोक तुझै सुरनाथ, सेवैं तन मन करि सुर साथ।
खं खडग जु ज्ञानातम होइ, मोहादिक नासै अरि सोई॥४२॥

खं कहिये फुनि सुन्य जु नांम, रागादिक तैं शुन्य सुरांम।
खंभ लोक कौ तू हि जु एक, खंड खंड व्यापी सविवेक॥४३॥

आरिज खंड मलेछ जु खंड, तू हि विभासै देव अखंड।
खंडित भाव न तेरे कोई, नित्य अखंडित अचलित होइ॥४४॥

— सोरठा —

खखा पासि दु शुन्य, खः कहिये मात्रांतिकी।
तू सव मांहि अशुन्य, पुन्य पाप तैं रहित तू॥४५॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

खल तोहि पांवैं नांहि ख्यात तेरी लोक मांहि,
खिन्न नाहि होत कभी खीण मोह तू जिना।
खुकहैं जु निश्चय कौं निश्चय स्वरूप आप,
खूंट भव्य लोकनि कौ खेचर तु ही दिना।
खेद नांहि भेद नांहि खैरलभ्य ज्ञान गम्य
खोदि नांखे कर्म भर्म नाथ तैं यथा तिनां।
खौघ नांहि पांवैं तोहि खंड खंड नायक तू
खं समान तेरौ रूप खः प्रकाश तू गिना॥४६॥

— सोरठा —

ख्यात विख्यात जु नाथ, तेरी सत्ता शक्ति जो।
संपति सो निज साथ, दौलति नित्य स्व संपदा॥४७॥

इति खकार संपूर्ण। आगै गकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

गणाधारं गताधारं, गात्रातीतं सुगात्रकं।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री विविक्षासागर जी महाराज
गिरातीतं च गीर्वाणी, सेवितं गुणरूपिणं॥ १॥

गूढ रूपं जगद्देहं, ग्रेहातीतं जगत्गुरुं।
ग्रैवेयकादिदातारं, ज्ञानमूलं च गोपतिं॥ २॥

न गौणं सर्वथा मुख्यं, गंधरूपादि वर्जितं।
सुगंधं शुद्धरूपं च, गः प्रकाशं नमाम्यहं॥ ३॥

— चौपई —

गणनायक तू गणपति देव, गणधर आदि करैं प्रभु सेव।
गति आगत्य रहित निरद्वंद, गतिदायक अतिसुगत अफंद॥ ४॥

गमनागमन सुतजि मुनिराय, निश्चल तोहि भजैं ऋषिराय।
गद कहियै रोगनि कौ नांम, रागादिक सम रोग न रांम॥ ५॥

सर्वरोग हर तेरौ ध्यांन, गदातीत तू पूरण ज्ञान।
गणना तेरे गुण की नांहि, तू गणेस अतिगण तो मांहि॥ ६॥

तू गरिष्ट अतिसिष्ट प्रसिद्ध, गरिमा सागर अतुलित सिद्ध।
गरहारी तू गंरल प्रहार, निरविष अमृत रूप अपार॥ ७॥

गरडध्वज पूजित गणभूप, अतिगलतां न गमक निजरूप।
ह्वैं गलतां न मुनी तुहि ध्याय, तू गतमोह विगत अतिन्याय॥ ८॥

गगन रूप तू गगन सुपार, गच्छ वितीत अनिच्छ अपार।
गर्भ निवास रहित वरवीर, तू हिरण्यगर्भ जु धरधीर॥ ९॥

गर्भ तिहारे मैं सव लोक, गजपतिपति कौ पति गुण थोक।
गर्व प्रहारी गर्व वितीत, गणी गणाधिप देव अतीत॥ १०॥

गहर गती अगतिनिकौं तार, तू गणाग्रणी भव दधि पार।
गणातीत सवगण करि पूजि, ज्ञांनिनि सौं तेरै नहि दूजि॥ ११॥

— बसंत तिलका छंद —

गात्रा न कोय निज ज्ञान अनंद गात्रा,
पात्रा न कोइ गुणपात्र प्रभू सुपात्रा।
पांवैं न गाध मुनिराय तु ही अगाधा,
गांना न मांन नहि तांन तु ही अवाधा॥१२॥

गाह्यो न जाय न हि गार स्वरूप तु ही,
नांही जु गारव मदा तुझ मैं कभू ही।
ज्ञांनी महा जु सवज्ञायक ज्ञान गम्या,
जांनैं न ग्राम्य जन तोहि तु ही अगम्या॥१३॥

ग्रामा असंखि गुण ग्राम जपैं मुनीसा,
ज्ञान प्रमाण जग भांनु तु ही अनीशा।
गावै तुही जु जग ईस अनूप राजा,
राजै प्रभू जु जगदीस असंखि वाजा॥१४॥

ग्यारा हि रुद्र जिनराय तु ही जु ध्यांवैं,
होवैं जु गाफिल जिके नहि तोहि पांवैं।
खोलैं जु गांठि हिय की प्रभु सम्यकी जे,
राखैं जु तोहि जिय मैं इक तोहि धीजे॥१५॥

गात्री जु जीव जग के प्रभू तू अगात्री,
सुर्गापवर्ग सुख सर्व तु ही सुदात्री।
गारी हु खांहि जग की नहि दास छांडैं,
तोकौं न ध्याय वहिरातम जन्म भांडैं॥१६॥

— मंदाक्रांता छंद —

गाजा वाजा, करि सुरनरा, तोहि पूजैं प्रभूजी,
तेरै वाजा, अगणित वजैं, ग्रामणी तू विभूजी।
धोकौं तोकौं, अगिनति गुना, तू गिरातीत स्वामी,
तेरी भाषी, दिढधरि गिरा, दास होवैं सुधांमी॥१७॥

तेरी तुल्या, गिरपति नही, सो जडो तू सुज्ञानी,
साधू शांता, गिरसिर तपैं, तोहि ध्यावैं सुध्यांनी।
काया माया, गिनति न धरैं, तोहि सौं लौं लगावैं,
तू ही नाथा, गिरपति प्रभू, है गिरानाथ ध्यावैं॥ १८॥

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— चौपड़ी —

गिलै काल जीवनि कौं नित्य, तू जु कालगिल जगत अनित्य।
गिरधारी सेवैं तुव पाय, तू धरधारी देव अमाय॥ १९॥
गिलतौ रहै काल जगदेव, तिनकौं जे तुव धारैं सेव।
गीर्वाणाधिप तेरे दास, तू गीर्वाण पूजि सुखरास॥ २०॥
गीत गांन करि इंद नरिदं, तोहि भजैं तू परम मुनिंद।
गीधादिक पक्षी वहुजीव, तुव भजि पायो सौख्य अतीव॥ २१॥
गी कहिये वांनी कौ नांम, तेरी वांनि सही गुन धाम।
देवनि कौं गीर्वाण जु कहैं, सो तू ही मुनि दिढ करि गहैं॥ २२॥
गुणी गुणाकर तू गुण रूप, गुणनिधि गुणअंभोधि निरूप।
गुणनायक गुणग्राम अपार, गुण निधांन गुणवांन जु सार॥ २३॥
गुपत सुप्रगट महागुणवंत, गुणि गुण रूप गणिक भगवंत।
गुह्य गुसांई गुरतर गुरू, गुणाधार निरधार जु धुरू॥ २४॥
गुणछेदी निरगुण है तू हि, रहित विभाव स्वभाव समूहि।
निज गुण रूप सुरूप अनूप, मायक गुण तैं रहिता अरूप॥ २५॥
गुण वंधन हूं कौ गुर कहैं, तू निरवंध गुरू सरदहैं।
गुण शमुद्र तू अगम अपार, मांन गुमांन रहित ततसार॥ २६॥
गुफावास करि धरि द्रिढ जोग, जोगी तोहि भजैं रसभोग।
गुपत वारता जांनैं सर्व, तेरे दास अनास अगर्व॥ २७॥
जीव समास गुनीस जु होय, सव कौ रक्षक तू प्रभू सोय।
रतनत्रय भेद जु गुणतीस, तू हि प्रकासै विभू जगदीस॥ २८॥

गुणतालीस ऊरधा लोक, दास न चाहैं अति सुख थोक।
चाहैं तेरी भक्ति रसाल, भुक्ति मुक्ति की मात विसाल॥ २९॥

नरक पाथडे हैं गुनचास, सातनि के अति ही दुखत्रास।
तेरी भक्ति विनां जिय लहैं, दास न दूरगति कवहू गहैं॥ ३०॥

पदवी धर त्रेसठि नर होइ, या कलपैं गुनसठि ही सोय।
इह हुण्डावसर्पणी काल, कवहुक आवै दोष विशाल॥ ३१॥

अैसे हू जग मैं निजदास, तोहि न भूलहि जगत उदास।
गुणहत्तरि ऊपरि सौ नरा, वडे पुरिष अति गुणगण भरा॥ ३२॥

तूहि प्रकासै सर्व प्रकास, गुणियासीह मदन करि त्रास।
तूहि अगुरलघु अति गुरतरू, अतिशय सागर सुर नर गुरू॥ ३३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— अरिल छंद —

गूढ स्वभाव अनंत महा तू गूढ है,
महिमा तेरी गूढ अरूढ अमूढ है।
तेरी भक्ति न ईश मूढ ए नहि करै,
गूगल खेयर तुच्छ देव पूजत फिरै॥ ३४॥

गूंथे सकल जु अंग तू हि वक्ता महा,
सुनि तेरी धुनि दिव्य दास नैं रस लहा।
गेह देह नहि नेह तुही जु विदेह है,
तजैं गेह तुव ध्यायवेहि विधि एह है॥ ३५॥

गेह मांहि धन नेह कुटंब सनेह है,
तो सौं लगै न नेह चित्तव्रति एक है।
कैयक दिन जौ दास गेह हू मैं रहैं,
पही पांहुनां तुल्य सोच मैं नहि वहै॥ ३६॥

ज्ञेय रूप तू ज्ञेयभूप अति रूप है,
ज्ञेयाकार जु ज्ञान अलेप अरूप है।
ज्ञाता ज्ञान जु ज्ञेय त्रायी की एकता,
तो विनु भासैं कौनं जु तत्त्व अनेकता॥ ३७॥

गैल तिहारी सुगुन अनंतानंत है,
अति अनंत पर्याय स्वभाव अनंत है।
गैल तिहारै लोक अलोका सब लगै,
त्यागि कलपना जाल साध तोमैं पगे॥ ३८॥

ग्रैवेयक लौं जीव गये वहुवार जी,
तो विनु नाथ कदापि भये नहि पार जी।
पार पहूचैं जोहि भाव भक्ती धरैं,
तू गोपति गोपाल तोहि लच्छमी वरैं॥ ३९॥

गो इंद्री तू देव अतिंद्री नाथ है,
गो कहिये जल नाम तू हि अति पाथ है।
तपति हरन सुख करन दाह हरन जु तु ही,
गो बांनी तू बांनि प्रकासै सहज ही॥ ४०॥

गो कहिये सुर लोक तू हि सुर लोक दे,
सुरपति सेवैं पाय तू हि गुन थोक दे।
गो है वज्र सुनांम तू ही वज्रांग है,
वज्री तेरे दास तू ही ज्ञानांग है॥ ४१॥

गो कहिये खग नांम तू हि खगपति प्रभू,
गो है छंद हु नांम तू हि भासै विभू।
छंद रहित्त तू छंद भासकर देव है,
गो पृथ्वी कौ नांम करै भू सेव है॥ ४२॥

गोधर श्रीधर तूहि तुही गोनाथ है,
गो किरणनि कौं नांम तेहि तुव साथ है।
गो आकास कौ नांम तु ही आकास सौ,
चिदाकास अतिभास तु ही प्रतिभास सौ॥ ४३॥

गो कहिये तरु नांम तू हि सुरतरू महा,
फल छाया दे ईश तो विनां है कहा।
गो रक्षक तू गोप्य अगोचर गो परैं,
गोचर केवल मांहि नहीं को तो परैं॥ ४४॥

तू गोव्यंदपती सुपूज्य जगदीस है,
गोत न गात न धात तात अवनीस हैं।
गौ कहिये जग मांहि गाथ को नांम है,
गौसुत सम हम मूढ भज्यो नहि रांम है॥ ४५॥

गौ कहिये फुनि देवि सरसुती है महा,
सो प्रभु तेरी वांनि और गौ नां लहा।
गौसुतता प्रभु मेटि देहु गौ रावरी,
प्रभु छुडावो भ्रांति लगी इह बावरी॥ ४६॥

गौण मुख्य सब भेद तू हि परगट करै,
तू नहि गौण स्वरूप मुख्यता तू धरै।
गौतमादि ऋषिराय भजैं तोकौं सदा,
तू हैं ग्रंथि वितीत ग्रंथ धर नहि कदा॥ ४७॥

ग्रंथ परिग्रह नांम तू न परिगह गहै,
ग्रंथि गांठि कौ नांम ग्रंथि भेदी लहै।
ग्रंथ सूत्र सिद्धांत प्रकासै तू सही,
अति सुगंध अतिरूप भूप धारै तू ही॥ ४८॥

गंध न रूप न शब्द सपर्शन रस धरै,
तू अविकार अनंत सकल मल परिहरै।
गंज गुननि कौ धरै तूहि पदमा वरै,
तोहि न गंजै कोय पराक्रम अति धरै।
गंगा जल सम चित्त शुद्ध करि भवि भजैं,
गंगादिक देवी जु सेव कवहु न तजैं॥ ४९॥

करि गुंजार सुशब्द तोहि जे पूज हीं,
कांम क्रोध मद मोह तिनहि नहि पूज हीं।
गंतव्यं जिनधांम नित्य प्रति गुर कहै,
तेरी प्रतिमा पूजि भव्य इह दिढ गहै॥ ५०॥

चरन कमल कौ भमर गुंजरव जो करै,
सो पावै निजवास परम रस जो धरै।
गंधपूति इह देह महा दुरगंध है,
तू दै ज्ञान शरीर अबंध अगंध है॥५१॥

गंधहस्ति सम देह सुगंध जु जे धरैं,
ते सब देव जु आय पाय तेरे परैं।
गः कहिये स्वर नाम धारि स्वर गांवहि,
सुर नर नाग मुनिंद तोहि प्रभु ध्यांवहि॥५२॥

गः कहिये फुनि गाय समूहो लोक मैं,
गायपुत्र से लोक लगे त्रिण थोक मैं।
कण रूपा तुव भक्ति गहै न रहै उही,
गः कहिये गंधर्व सर्व गांवैं तू ही॥५३॥

गः कहिये गाथांनि कौहु प्रभु नाम है,
सब गाथादिक छंद कहै तू रांम है।
नाथा तो सौ तू हि नही को दूसरौ,
तो विनु सब संसार लगै मुहि धूसरौ॥५४॥

अथ बारा मात्रा एक सवैया मैं।

— सवैया - ३१ —

गरब कौ हारी तूज गाध नांहि लहै,
पूज गिनती जु नांहि तेरे विभव की नाथ जी।
गीर्वाण नायक तू गुरनि कौ गुर सदा,
गूंथे द्वादशांग देव गूढ़ अति साथ जी।
गेह नांहि देह नांहि गैल तेरी लोक सब,
गोपती जु गोधर तू ईस वडहाथ जी।
गौण मुख्य सर्व भास ग्रंथि भेद गः प्रकाश,
भवदुख पावक वुझायवे कौं पाथ जी॥५५॥

— दोहा —

गर्व हरै सव कौ प्रभू, ऐसी तेरी शक्ति।
सोई कमला लच्छिमी, भाषा दौलति व्यक्ति॥५६॥

इति गकार संपूर्ण। आगैं घकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

घटस्थमघटं देवं, घाति चाघाति वर्जितं।
सर्व मात्रा मयं धीरं, वीरं वंदे महोदयं॥१॥

— दोहा —

घर घर की सेवा करत, उपज्यो अति गतिखेद।
अव तू अपनी टहल दै, लै निज मांहि अभेद॥२॥

घर घरणी मैं हम लगे, धन धरणी की चाहि।
चाहि हमारी मेटि सब, बहु भरमावै काहि॥३॥

घटि वधि तैरै कछु नही, तू घटि वधि तैं दूर।
घट घट अंतर जांमि तू, घटभेदी घटपूर॥४॥

घन सम चिदघन तू सही, घन है बज्र सु नांम।
कर्म पहार प्रभंज तू, अति कठिन जु अति धांम॥५॥

घन भाषैं जन मेह कौ, तू है मेघ स्वरूप।
अमृत झर लावै सदा, तपति हरन सुख रूप॥६॥

घरी घरी इह जाय है, बृथा जु मेरी आय।
तेरी भक्ति विना विफल, भक्ति देहु जगराय॥७॥

घस्मर सूरिज नांम है, तू है त्रिभुवन सूर।
भ्रांति निसाहर वोधकर, किरण अनंत प्रपूर॥८॥

घटातीत धनपाल तू, घटरक्षक घनजीत।
घट घट नायक अघट तू, घन प्रदेश जगजीत॥९॥

घट पट ज्ञायक गुन सुतन, है घनस्यांम अधीस।
तू घट भिन्न अभिन्न है, घन स्वामी अवनीस॥१०॥

घर घरनीं तजि मुनिवरा, जपैं तोहि निज रूप।
घर घर कौ मरमी तुही, अघट अघाट अनूप॥११॥

घातरहित तू घाति हर, रहित अघाति अछेव।
घाट अघाट अरि घाट मैं, करै जु तुव सेव॥१२॥

कालवसू या जगत मैं, हम जु ह्वै रहे घांघ।
घांघपणौं प्रभु दूरि करि, तू अति सुख की थांघ॥१३॥

घा कहिये सिद्धांत मैं, नांव किंकणी ख्यात।
किंकणि सम वाचालता, मेटि मौंन दै तात॥१४॥

घायल हैं हम मोह के, घाव लगे अति जोर।
निज औषद दैं घावभरि, तूहि मोह मद मोर॥१५॥

घास फूस सम जग विभव, हम नहि चाहैं याहि।
कण रूपा निज भक्ति दै, और नहि कछु चाहि॥१६॥

घां तेरी चोघैं प्रभो, वहै द्रिष्टि दै नाथ।
औरैं घां को चौघिवौ, तू छूडाय वडहाथ॥१७॥

घिरयौ भरम कै घेर हूं, तू छूडाय जगदेव।
छूटि भरम तै मैं सही, करि हौं तेरी सेव॥१८॥

घिण-घिणावणौ इह जु तन, यामैं वास न इष्ट।
तन धरिवौ हमरौ जु हरि, दै निजवास प्रतिष्ट॥१९॥

घ्रित दधि खीर सु ईखरस, लवण आदि वहु स्वाद।
तेरी भक्ति समान रस, और नही अति स्वाद॥२०॥

घी जल तेल इत्यादि ए, चर्म पतित नहि लीन।
भाखैं तेरौ श्रुति इहै, भखैं न दास अलीन॥२१॥

घीया तेला आदि दे, जे वहु बीजा वस्तु।
ते न भाखैं दासा कभी, श्रुति वर्जित अप्रशस्त॥२२॥

वंदि अचेतन कै पर्यौ, मैं घीघांऊं नाथ।
मेरी कूक सुनौं प्रभू, लेहु आपनैं साथ॥२३॥

घींस्यो मोकौं जगत मैं, कर्म मिले अतिभेद।
अध ऊरध मधि लोक मैं, दियो बहुत इन खेद॥२४॥

घुण ह्वै मोकौं विधि लगे, कियो सुनिकणौं स्वांमि।
इनतैं मोहि छुडाय प्रभु, तू है अंतरजामि॥२५॥

घुग्घ होय कूडे रम्यों, कियो मोहमद पांन।
अव तू दै निज भक्ति प्रभु, करि सचेत भगवांन॥२६॥

घूक समांन जु हौं प्रभू, नहि लखियो तू भांन।
हमरी चक्षु उघारि प्रभु, तू अनंत गुनवांन॥२७॥

घूक पणौं हरि देहु जू, चकवे कौ हि स्वभाव।
चकवौ चाहै दिवस कौं, मैं चाहौं तुव पाव॥२८॥

घूनडता मुझ मेटि तू, दै निहकपट स्वभाव।
घूनड लौकिक भाष मैं, कपटी कुटिल कुभाव॥२९॥

घूमत घूमत हौं फिर्यौ, महामोहमद पीय।
हमरी घूम मिटाय प्रभु, तू तारक अदुतीय॥३०॥

घू कहिये आगम विषै, पीडा नांम प्रसिद्ध।
हमरी पीर मिटाय प्रभु, तू दयाल अति सिद्ध॥३१॥

घूर्यमाण इन अघनितैं, हौं दुखिया जगजीव।
सुखदाई संसार को, दुख हरि नाथ अतीव॥३२॥

घेरा मांहि जु हौ पर्यौ, तू घेरा तैं काढि।
दै निज भाव सुलक्षणां, पासि हमारी वाढि॥३३॥

घेवर फैंनी आदि दै, तजि कैं जिह्वा स्वाद।
रूखाटूका पाय कैं, करिहैं तोकौं याद॥३४॥

घैं तेरी चोघैं प्रभू, सुर नर मुनिवर ईश।
तो सौ देव न दूसरौ, तू हि सही जगदीस॥३५॥

— सोरठा —

घोर वीर तप भास, घोर भाव वर्जित तू ही।
तू प्रभु रोर विनास, आस भविनि की तू सही॥ ३६॥
घोष सवद कौ नांम, तेरै घोष न रूप जी।
तू घोषै निज धांम, महा घोर वीरो तु ही॥ ३७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

घोटकादि चतुरंग, सेना तजि नरपति महा।
तो सौं लावैं रंग, तेई तोकौं पांव ही॥ ३८॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

तु ही घोर तपिश ईशो अतापी,
नही घोर कर्मा तु ही है निपापी।
प्रभू घोर संसार तारी तु ही है,
तु घोषै उभै धर्म धर्मी सही है॥ ३९॥
तु ही जो निषेदै वडे घोल कांजी,
अभक्षा वतावै दधि द्वेदलां जी।
तु ही सत्य घोषै सदाचार गावै,
भजैं धर्म घोषा सुरा सीस नावै॥ ४०॥
तजे घोष सर्वे भये साधु मौंनी,
जु संसार माया सुलग्गी अलौंनी।
सलौंनी तिहारी सुसेवा हि जांनी,
महा ध्यांन रूढा भजैं तोहि ज्ञानी॥ ४१॥

— सोरठा —

घोर भयंकर नांम, तू नहि देव भयंकरा।
कर्मनि कौं अति धांम, दीसै तू ही भयंकरा॥ ४२॥

— अरिल छंद —

घोणा विवर नु नांम नासिका छिद्र कौ,
धरि नासाग्र जु ध्यांन सोच तजि उद्र कौ।
एक चित्त करि तोहि जपैं योगी महा,
ह्वै निरगंथ स्वरूप शुद्ध भक्ती लहा॥ ४३॥

घो कहिये श्रुति मांहि घंट का नांम है,
तू घंटाधर देव धुजाधर रांम है।
घौरक तेरी मांनि करम सव नासिया,
घौरक जग की त्यागि दास गुन भासिया॥ ४४॥

घंटा तेरै द्वार सवद अति ही करै,
घंटा कौ सुनि नाद सकल पातिग डरै।
घंटा गल कै कंठ कहौ नहि स्थांन कौ
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
घंटा तेरै द्वार छजै नहि आंन कौ॥ ४५॥

घः कहिये श्रुति मांहि मेघ का नांम है,
तू है मेघ स्वरूप परम रस धांम है।
जग जीवनि विश्रांम तापत्रय मेटई,
तो सौ तू ही मेघ सिखी मुनि भेटई॥ ४६॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

घट घट नायक तू घात तैं रहित देव
घिरयो हूं अनादि कौ सु तू छुडाय मोहि जी।
घींस्यो मोहि करमनि फेरयो तीन लोक मांहि,
घुण होय लागे वै जु कहौं कहा तोहि जी।
घूमता मिटाय मेरी घेरा तैं निकासि देव,
घैं जु चौधैं रावरी, सुद्रिष्टि तेरी होहि जी।
घोष तेरौ सुनि कैं जु घौरक अघनि कीन
घंटाधर घः स्वरूप देख्यौ इकटोहि जी॥ ४७॥

— दोहा —

तू घस्मर जग को सही, तेरी क्रांति सुलच्छि।
कमला पदमा श्रीरमा, सो दौलति परतच्छि॥ ४८॥

इति घकार संपूर्ण। आगैं ङकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ङकाराक्षर कर्त्तारं भेत्तारं कर्म भूभ्रतां।
ज्ञातारं विश्व तत्वानां, वंदे लोकाधिपं विभुं॥ १॥

— दोहा —

ङ कहिये आगम विषै, भैरव नांम विख्यात।
भैरवादि यक्षा सवै तेरे दास कहात॥ २॥

तू प्रशांत [illegible] कोय।
भैरव नांम भयंकरा, तू भयहारी सोय॥ ३॥

भय कौं तू हि भयंकरा, काल हु कौं भय रूप।
मोहादिक कौ रिपु तुही, तातैं भैरव रूप॥ ४॥

ङ कहिये सिद्धांत मैं, नांम व्यसन कौ देव।
व्यसन जु कहिये कष्ट कौं, कष्ट हरैं तुव सेव॥ ५॥

ङ कहिये ग्रंथनि विषैं, स्वर कौ नांम अनादि।
सप्त स्वरादिक भेद जे, परकासक तू आदि॥ ६॥

स्वर धरि तोकौं गांव ही, इंद फनिंद नरेस।
चंद सूर सुर असुर नर, खेचर आदि असेस॥ ७॥

स्वर धरि तेरौ जस कहैं, नारद सकल प्रवीन।
रुद्रादिक तोकौं भजैं, भजैं चक्रि लवलीन॥ ८॥

अर्द्ध चक्रि तोकौं रटैं, रटैं काम देवादि।
हलधर तेरौ जस कहैं, गांवैं तोहि अनादि॥ ९॥

मनु गांवैं मुनि ध्यांवहीं, गांवैं सव अहमिंद।
लौकांतिक गांवैं सदा, तू सव पूज्य मुनिंद॥ १०॥

स्वर धरि तोहि जु गांवही, तात मात जगदेव।
तू सवकौ त्राता प्रभु, दै अपनी निज सेव॥ ११॥

स्वर धरि तोहि न गाइयो, मैं मूरिख मति हीन।
तातै रुलियो जगत मैं, अव दै भक्ति प्रवीन॥१२॥

ङ कहिये फुनि नाथ जी, तसकर नांम प्रसिद्ध।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महार
तसकर इंद्री मन मदन, हरै ज्ञान अनिरुद्ध॥१३॥

इनतै मोहि वचाय तू, तू है राय सुन्याय।
वास देहु निज नग्र कौ, जहां न एक अन्याय॥१४॥

चोर न तोकौं पांव ही, नहि पांवैं चमचोर।
तू सुमनोहर देव है, हरै रोग अर रोर॥१५॥

— सवैया - ३१ —

भैरव न तू सुदेव, भैरव करैं जु सेव,
व्यसन कौ नांम नांहि तेरी छत्र छाय मैं।
स्वर धरि गावैं तोहि, सुर नर नाग मुनि,
सवै लोक माय रहे तेरे गुन काय मैं।
चोर नांहि पांवैं वास, चोरी नांहि वास मांहि,
वासना न तेरै देव, तू न कभी माय मैं।
नमो नमो नाथ तोहि, दै जू निज भाव मोहि,
और कहा जाचौं ईस आवै नांहि दाय मैं॥१६॥

— दोहा —

ङेभ्यांभ्यस ङसिभ्यांभ्यसो, अर ङसिवोस जु आम।
ङीवोस जु सुप शब्द ए, तूं भासै सव रांम॥१७॥

तू अति व्याकरणी प्रभू, शब्दागम प्रतिभास।
शब्दातीत अतीत तू, अति अदभुत अविनास॥१८॥

भैरवता तेरी महा, करै करम कौ नास।
सो चंडी परमेश्वरी, भाषा दौलतिभास॥१९॥

इति ङकार संपूर्ण। आगै चकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

चतुर्वक्त्र श्च चारित्री, चिच्चिमत्कार चिन्मयः।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अचीवरो निराभरणो, न च्युतो जन्म मृत्युहा॥ १॥

चूडामणिस्त्रिलोकेशो, चेतनाधिष्टितो सदा।
चैतन्यादि गुणाधीशो, चोत्तमोसिद्धिदायकः॥ २॥

मनश्चौरो जगच्चंद्रो, चंचत्कांचन वर्णभः।
सर्वाक्षर मयो धीरो, सर्व मात्रा मयो विभुः॥ ३॥

चः प्रकाशो चिदाकाशो, सर्व लोकेश्वरो प्रभुः।
मदीयां चित्त भूमौ सासदा तिष्टतु निश्चलः॥ ४॥

— दोहा —

चतुरानन चतुरास्य तू, चतुर्वक्त्र तू देव।
सव कौ अर्थ चतुर्मुखा, तु हि अनंत अभेव॥ ५॥

चर थिर कौ गुरुदेव तू, चतुः शरण चउ रूप।
चउ मंगल उत्तम तु ही, तू है चतुर अनूप॥ ६॥

च कहिये प्रभु चंद्रमा, तु है चंद्र सुनाथ।
च कहिये सोभा सही, तू सोभित अति साथ॥ ७॥

च कहिये फुनि चोर कौं, चोर न पावैं तोहि।
तू हि मनोहर देव है, निज सेवा दै मोहि॥ ८॥

च कहिये जु पुनह पुनह, वारंवार दयाल।
तेरौ नांम जु लीजिये, तू अतिनांम विशाल॥ ९॥

चउगति तैं प्रभु तारि तू, चउदह तैं जु निकाश।
सूक्ष्म बादर त्रय विकल समन अमन जिय रास॥ १०॥

ए पर्यापत इतर गुन, चउदह जीव समास।
दंडक चउवीसांनितैं, काढि राखि निज पास॥ ११॥

चउतीसौं अतिशय प्रभू, तू हि धरै जिननाथ।
अमित अनंत जु अतिशया, तेरे तू अति साथ॥ १२॥

चउचालीस जु दोष प्रभु, टारि करौ निजदास।
मद मूढत्व अनायतन, हरौ सकल मल रास॥१३॥

व्यसन हरौ सब भय हरौ, अतिचार हरि पंच।
ए चउचालीसा अघा, टारि महा दुःख संच॥१४॥

चउपन दूनें नाथजी, मनिका फेरै लोक।
मन का मनिका जौ फिरै, तौ होवैं सुख थोक॥१५॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चउसठि चमर जु ढारहीं, सुरपति करि करि भक्ति।
तेरौ पार न पांवई, तू दयाल अतिशक्ति॥१६॥

चउहत्तरि दूना सबै प्रक्रिति टारि क्रिपाल।
दै अपनौं निज वास जो, अविनश्वर गुनपाल॥१७॥

चउरासी मैं हूं रुल्यौ, विना भक्ति जगदीस।
अब अपुनौं निज दास करि, हरि अविवेक मुनीस॥१८॥

चकवा सम भवि जीय हैं, तू दिनकर सम देव।
भव्य चकोर समांन हैं, तू ससि सम अतिभेव॥१९॥

चमत्कार कारण तु ही, ज्ञानानंद शरीर।
चर्म रोम मल अस्थि मय, देह न तेरौ धीर॥२०॥

चढि जग सीस जु तुव पुरैं, आवैं तुव मत पाय।
चटक मटक रहितो तु ही, रहित विभाव सुराय॥२१॥

चणकादिक द्विदला प्रभू, दही मही भेला न।
लेवै तेरे दास कछु, वस्तु चर्म मेला न॥२२॥

चरन कमल तेरे भजैं, चलन चलैं अति शुद्ध।
तेरे चरित जु उर धरैं, ते दासा प्रतिबुद्ध॥२३॥

चलविचल जुता त्यागि कैं, निश्चल ह्वै तुव ध्यांन।
करैं तेहि पांवैं प्रभू, केवल दरसन ज्ञांन॥२४॥

चर्म रंध्र नारीनि कौ, तामैं राचे मूढ।
चर्मचोर न गांवै तुझैं, तू सुशील अतिगूढ॥२५॥

चक्षु हिये की खोलि कैं, लखैं रावरौ रूप।
ते हि सचक्षु सुजांन हैं, और न बुद्धि स्वरूप॥ २६॥

चमर छत्र सिंहासन तोहि फवैं जगराय।
चमरादिक सव त्यागि कैं, चक्री सेवैं पाय॥ २७॥

चर तू थिर तुव मूरती, तू हि चराचर देव।
चलैं निरखि मुनिवर महा, ते धारैं तुव सेव॥ २८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चक्र रूप संसार है, खेवट तूहि अपार।
तुव भजि उतरे पार बहु, हमहि तारि जगतार॥ २९॥

चरचा तेरी नित्य है, चरचा कौ नहि अंत।
देहादिक कौ अंत है, आतम देव अनंत॥ ३०॥

देह जायगौ अवसिइह, काल पाय जिनराय।
चरचा करत जु करत ही, जाय ध्याय तुव पाय॥ ३१॥

इह मांगौ और न चहूं, देहु कृपा करि ईस।
अंत काल विसरौं नहीं, चरन कमल जगदीस॥ ३२॥

चर्मकार के गेह सम, देह हमारो निंद्य।
तुव भजियां सु पुनीत है, तू त्रिभुवन करि वंद्य॥ ३३॥

— सवैया - २३ —

चाहि न और सुचाहि इहै इक, नित्य निरंतर तोहि निहारैं।
चार तुही अति सुंदर रूप जु नांहि कछू पर तुल्य तिहारैं।
चारु चरित्र धरा जु मुनीसर, शुद्ध अहार जु शुद्ध विहारैं।
तोहि भजैं सु तजैं जग जाल, रटैं जगजीवन राति दिहारैं॥ ३४॥

चारण ऋद्धि धरा जु जतीसुर, अंवरचारण चारु चरित्रा।
तोहि जपैं सुतपैं तपभेद, तु ही जगदीसर देव पवित्रा।
चातक भाव धरैं भवि जीव, तु ही प्रभु अंवुद रूप सुमित्रा।
चाकर देव अदेव सुखेचर, भूचर ठाकर तू हि विचित्रा॥ ३५॥

— भुजंगी प्रयात छंद —

नही नाथ चामीकरा तुल्य तेरैं,
नही कोइ काई तिहारै जु नेरै।
तु ही चारु चारित्र धारी अनूपा,
तु ही चारचारी निषेदै निकूपा॥ ३६॥

तु ही चाहि वीता अतीता अजीता,
सवै चाहि पूरी करै तू प्रतीता।
सवै संयमाचार तू ही वतावै,
स्वरूपा चरित्रा विधी तू जतावै॥ ३७॥

करैं चाकरी एक तेरी हि देवा,
धरैं कौंन की नाथ तो टारि सेवा।
तु आनंद चाखा रहै नित्य चाखा,
मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
धरैं ज्ञान चापा क्रिया बाण राखा॥ ३८॥

नहीं चार तैरै सवै तू हि जांनैं,
सदाचार तू ही अनाचार भांनैं।
निषेधै तु ही सर्व चामादि बस्तू,
दया चाल तेरी तु ही है प्रशस्तू॥ ३९॥

नही चाल तेरी चलै हंस हस्ती,
तु ही शुद्ध चाला अकाला सुवस्ती।
नही चाव दूजा करैं ज्ञानवांनां,
इकै चाव तेरे दरस्का सुजांनां॥ ४०॥

नहीं चांट चूंटा जहां तू वसै है,
नहीं चांदनी घांम तू ही लसै है।
चिदानंद देवा सुचिद्रूप तू ही,
चिदाकास चिन्मुद्रधारी प्रभू ही॥ ४१॥

विभू चिच्चिमत्कार चिंता वितीता,
जु चिंतामणी चिंत्यदाता अतीता।
तु ही चिद्विलासा सु चिन्मात्र तू ही,
तु ही चित्प्रकासा चिदीशा विभू ही॥ ४२॥

महाचित्तदंती सु रोकैं जितेंद्री,
तुझै ध्यायवे कौं तु ही है अतिंद्री।
विना चित्त जीतें नही होय भक्ती,
नहीं चित्तवाक्काय तैंर असक्ती॥ ४३॥

— दोहा —

चिदघन चिनमय देव तू, चिनमूरति चिर रूप।
चिरंजीव जगपीव तू, शुद्ध चिदातम भूप॥ ४४॥

चिदाकार चितदूर तू, चिदाधार अतिचित्र।
अति विचित्र परतक्ष तू, जगजीवन जगमित्र॥ ४५॥

देव चिदंकित नित्य तू, टारि सकल भ्रम जार।
हौं जु रुल्यौ चिरकाल तैं, अव उधारि भवतार॥ ४६॥

चिग रूपा विश्रांति जो, ताकी वोट अधीस।
तू न लख्यो प्रभु पास ही, परमेश्वर अवनीस॥ ४७॥

— सोरठा —

चीन्हौं मैं नहि तोहि, चीन्हें विषय जु जगत के।
अव तू दै शिव मोहि, न्यारौ करि भव भ्रांति तैं॥ ४८॥

चीर रहित तू देव, निराभर्ण भासुर तु ही।
देहु दिगंवर वेस, तु ही अछेव अभेव है॥ ४९॥

चीलै तैंर चालि, लहैं तत्व जोगीसुरा।
चीलै तैंर घालि, मैं मारग भूलौ फिरूं॥ ५०॥

चीर पटंबर त्यागि, त्यागै सर्व जु कांमनां।
तैंर मारग लागि, मुनि निवृत्त ह्वै पद भजैं॥ ५१॥

चीतादिक अति दुष्ट, हिंसा कारण जीव हैं।
तिन हि न पालैं शिष्ट, तेरी आज्ञा जिन सुनी॥ ५२॥

चुणक व्रत्ति करि तोहि, लहैं ऋषीश्वर व्रत धरा।
निज सेवा दै मोहि, और न चहिये नाथ जी॥ ५३॥

चुणक ब्रति दै मोहि, जाकरि तोहि मुणौं प्रभू।
देखौं सब मैं तोहि, वहै द्रिष्टि दौ सांइयां॥५४॥

चुगली है अति पाप, तैं निंदी सव ग्रंथ मैं।
चुगल लहैंगे ताप, तोहि न पांवैं ते सठा॥५५॥

च्युत व्रत लहैं न तोहि, तू अच्युत जगदीस है।
तेरी टहल जु मोहि, दै और न कछु चाहिये॥५६॥

चुर चुराट की टेव तैंरै नांही नाथ जी।
तू है शांत सुदेव, सेव देहु किरपा करे॥५७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— सवैया - २३ —

चूरामनि लोक कौ, अलोक परकासी तू हि,
चूक मेरी माफ करि, तोहि नहि ध्याये की।
चूप नांहि तैंरै सव चूप तैं रहित ईश,
चूप एक तैंरै, सव जीव सुख दाये की।
चूल सव जगत कौ सुमूल मोख मारग कौ,
तेरी सेव करैं साध ज्ञान सुख भाये की।
चूर गिर करम कौ करिवे कौं बज्र तू हि,
गहौ दीनानाथ लाज सरन जु आये की॥५८॥

चूहे सम हौं जु जीव कायर अनंत देव,
रहौं तन विल मांहि, मूरिख अनादि कौ।
मेरी घात लागि रहे पाप पुन्य वायस जु,
काल मारजार मोकौं तकत है आदि कौं।
मिथ्याभाव स्वान मोहि मारिवे कौ संग लागे,
इनतैं छुडाय राय, करे भव दाहि कौं।
तू तौ दयानाथ, तैंरै साथ सव शुद्ध भाव,
तो छतां हुं पीडित रहौं जु महा वादि कौं॥५९॥

चूत वृक्ष आंब कौ है नांम, जग मांहि ख्यात
तू है प्रभू आंव तैं अधिक सुरसाल जी।
सूकै नांहि कवहू सजल घन जो सदीव,
सम्यकदरस मूल अति हि विसाल जी।
ज्ञान पेड ब्रत डाल संजम ही साखा अति
शुद्ध भाव दल अति विमल प्रवाल जी।
गुन ही सुफूल अर गंध निज परनति,
केवल प्रभाव फल रूप जगपाल जी॥६०॥

— सोरठा —

चूरण दै सुविवेक, कर्म रोग लागे महा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तैं प्रभू जीव अनेक, चूरण दै निरज्वर करे॥६१॥

चूर कियो अति कूटि, लूटि लियो मोहादिकां।
गयो नाथ अति टूटि, अव तौ प्रभु किरपा करौ॥६२॥

चूंट चांट हरि देव, सेव देहु निहकांम जो।
चेतन अतुल अछेव, तु ही चेतना निधि प्रभू॥६३॥

चेतनता दै ईश, चेतनता कौ पुंज तू।
चेतन रूप अधीश, तू निधांन भगवांन है॥६४॥

हैं सचेत मुनिराय, पाय रावरे उर धरैं।
ज्ञान चेतना काय, तु ही अकाय अमाय है॥६५॥

कर्म चेतना ईस, वहुरि कर्मफल चेतना।
रूपभये जु अधीस, दै अव ज्ञान सुचेतना॥६६॥

चेरा करि जगराय, पाय सेव दै ईसरा।
चेला करि सुखदाय, भ्रम घेरा तैं काढिजी॥६७॥

चेला नहि तू नाथ, चेला सव तेरे प्रभू।
तू अचेल गुण साथ, चेल न देह न दिगपटा॥६८॥

चेटक नाटक नांहि, अदभूत योगी नाथ तू।
सव चेटक तो मांहि, चिमतकार कारण गुरू॥६९॥

— सवैया - ३१ —

चेरी सव तेरी नाथ इंद धरनिंद भूति,
　　चेरी तेरी देव अहमिंद्रनि की भूति है।
चक्रि भूति चेरी अर चेरी असुरिंद भूति
　　चेरिनि की चेरी खग चक्रि परसूति है।
राज ऋद्धि चेरी अर चेरी भोग भूमि सवै,
　　चेरी चंद सूर भूति जहां लौं विभूति है।
अखिल हैं चेरी तेरी मैं हूं जव भयो चेरा,
　　चेरौ चेरी व्याहै यामैं कौंन करतूति है॥७०॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जो तू चेरा जांनि ज्ञान चेतना विवाहि नाथ,
　　दोऊ पक्ष शुद्ध वहै वेटी सु वडेनिकी।
सम्यक है वाप जाकौ दया है सुमात ताकी,
　　भाव है अनंत भाई लाडिली घनेनिकी।
जती मत पीहर ननेरा गुरसंग जाकौ,
　　जांमैं नांहि विसन जु आगरी गुनेनिकी।
ऐसी प्यारी परनौं तौ गिनौं उपगार तेरौ,
　　और भांति अरज गुदारौं नांहि लेन की॥७१॥

— सोरठा —

प्रश्न करै ह्यां कोय, चेरौ उत्तम कुल सुता।
कैसैं परनैं सोय, इह विनती नहि जोग्य है॥७२॥

ताकौ उत्तर एह, इह चेरा नहि कुल वुरा।
प्रभु की न्याति गनेह, और न चेरा न्याति है॥७३॥

फुनि उत्तर है एक, जौ चेरा तौ राव कौ।
इह धारौ जु विवेक, औरनि को सिरताज है॥७४॥

वड धर कौ चेरा जु, सो व्याहै हू कुल सुता।
तातैं इह हेरा जु, ज्ञान चेतना दुलही॥७५॥

अथ जीव संवोधन।

— सवैया - ३१ —

चेति रे अचेत चेत चेतन कौ ध्यांन करि
मूरिख ह्वै राच्यो कहा विषयनि के ठाट मैं।
विषै तौ अनंत काल सेये तै अनादि ही के,
नीच ऊंच दसा तेरी भई भव वाट मैं।
लेय लेय डारे तैं ही तेरे हैं उलाक सम,
जगत के भोग भया पग्यो कहा काट मैं।
लाज नांहि आवै तोकौं छाद कौ अहार करै
वूड्यो कहा वावरे तनक आव घाट मैं॥ ७६॥

अथ जीव भगवांन स्तुति।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— भुजंगी प्रयात छंद —

तु ही चैत्य चैत्यालयो द्वार मूला,
तु ही शुद्ध चैतन्य रूपी सथूला।
तु ही नाथ चैतन्यता पुंज पूरा,
नही भाव तेरे जु चैतन्य दूरा॥ ७७॥

तु ही चैत्यभासी अचैतन्य नासी,
सदानंद तू ही महानंद रासी।
तु ही चैत्य मांही तु ही सर्व मांही,
करै चैंन तू ही जु संदेह नांही॥ ७८॥

— छंद त्रिभंगी —

मन इंद्री चोरा हैं अति जोरा करहि जु भोरा ज्ञांन हरैं।
क्रोधादिक चोरा हैं अति घोरा, भवजल बोरा भ्रांति करैं।
ए विषय जु चोरा करहि जु जोरा अति सुख तोरा कष्ट धरैं।
मिथ्यात सजोरा, है अति चोरा, अव्रत चोरा, भोर करैं॥ ७९॥

है चोर विमोहा, चोर जु द्रोहा, चोर जु छोहा, सर्वहरा।
है परमत चोरा, करइ जु ढोरा, चोर न थोरा, गर्व धरा।
लागे प्रभु संगा, सर्व इकंगा, मोह प्रसंगा, शुद्धि हरा।
टारै सब चोरा, तू अति जोरा, हरइ जु रोरा ऋद्धि करा॥ ८०॥

— सोरठा —

चोखी तेरी टेव, चोख गहौ जगनाथ जी।
लूट्यो मोहि अछेव, तेरे राजस मांहि प्रभु॥ ८१॥

मेरौ द्याय सुमाल, ज्ञानानंद स्वरूप जो।
चोर पकरि जग भाल, लाल राव तू जगत कौ॥ ८२॥

चोट लगाई नाथ खोट कियो मुझ सौं इनां।
करि कैं मेरौ साथ, पास्यो तोसौं आंतिरौ॥ ८३॥

लज्या चोल उतारि कियो निलज्ज मंहा मुझैं।
कूंकौ तेरै द्वारि, ऊपर करि अब ईसरा॥ ८४॥

— छंद भुजंगी —

कियो चौर चौपट्ट चौरा जु दुष्टा मिली चौकरी पाप रूपा सपष्टा।
तु ही चौर दंडा महासाधु तारी, सवै भ्रांतिहारी तु ही है विहारी॥ ८५॥

अचौकी कचारी तु ही लोकतारी, तु ही लोक चंद्रो मुनिंद्रो अपारी।
कहा चंदनो जू कहा है सुचंद्रो, सुजैसौ तु ही सीतलो है मुनिंद्रो॥ ८६॥

कहा चंद्र ज्योती यथा कित्ति तेरी, तु ही ज्योति रूपो धरै ज्योति नेरी।
सु चंचत्प्रकाशा चमत्कार तू ही, सुचंड प्रचंडा तु ही है समूही॥ ८७॥

सुचंडी न औरे रमा सोइ चंडी, जु ज्योती तिहारी, सुलक्ष्मी प्रचंडी।
नही और चंडी सवै और मुंडी, सुचिच्छक्ति चंडी दयाला अखंडी॥ ८८॥

नही चंचलाई नही कोतताई, तु ही निश्चलो निर्मलो लोकराई।
तुझै कोय चंपै नही तू अचंपा, प्रभू नित्य चंगा अनंगा निकंपा॥ ८९॥

नहीं चिंतयो देव तोकौं कदे ही, सु तातैं रुल्यौ नंत धारी जु देही।
अवै चंद्रनाथा सुधापांन देहो, अमृत्यू करौ देव तू है विदेहो॥ ९०॥

जु चंपा कही औ कहा कंचनाजी, सुरूपा तु ही नां धरै अंजनाजी।
नहीं चंक्रमैं, तोही कोई हि देवा, तु ही है अनंत पवीर्यो अछेवा॥ ९१॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— दोहा —

चंद्रायण तप आदि वहु, तप भासै तू देव।
चः प्रकास जगभास तू, दै स्वांमी निज सेव॥ ९२॥

चः कहिये प्रभु चंद्रमा, तू चंद्रप्रभु देव।
सर्व देव सेवा करैं, दै नाथा निज सेव॥ ९३॥

अथ बारा मात्रा एक सवैया मैं —

— सवैया - ३१ —

चरन सरोज तेरे चारन मुनी द्विरेफ सेवैं,
चिनमूरति तू परम प्रकास है।
चीर विनु सुंदर जू च्युत व्रत लहैं नांहि,
अच्युत तू चूरामनि लोक कौ विकास है।
चेतना निधांन तू ही चैतनिता भाव तेरौ
तोमई भये सुदास तू हि जिन पास है।
तेरे वास मांहि नाथ नांहि चोरी चौर साथ
चंदपति देव तू ही चः स्वरूप भास है॥ ९४॥

— दोहा —

तव चंद्र जु की चंद्रिका, सोई कमला लच्छि।
शक्ति भवांनी चंडिका, सो दौलति परतच्छि॥ ९५॥

इति चकार संपूर्ण। आगैं छकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

छल छद्म विनिर्मुक्तं, सच्छास्त्रस्य निरूपकं।
सच्छिवास्पद धातारं, सच्छीलनायकं विभुं॥१॥

सच्छुक्ल ध्यान दातारं, अचिच्छून्यं चिदीश्वरं।
प्रज्ञाछेत्री विधातारं, स्वच्छैर्बोध युतैर्नुतं॥२॥

न तच्छोकान्वितै भावै, र्युक्तं शक्ति धरं परं।
स्वच्छौ दृग्वोधकौ भावौ, लभ्येते यदनुग्रहात्॥३॥

वंदे तं परमंदेवं, छंदबंधादि दूरगं।
छः प्रकाशं चिदाकाशं सर्वाधारं सदोदयं॥४॥

— दोहा —

छद्मस्थ न तू देव है, पावैं नहि छद्मस्थ।
तू कैवल्य सुरूप है, प्रभु स्वच्छंद मध्यस्थ॥५॥

— मालिनी छंद —

छलवल नहि कोई, छद्म तेरै न होई,
अति छतिपति जोई, शुद्ध चैतन्य सोई।
अति दलवल रूपा, रागा दोषादि नांही,
छकि जु रहिउ देवा, ज्ञान आनंद मांही॥६॥

छह जु प्रवल उर्मी, नांहि तेरै जु कोई,
छविधर छविकारी, तू छवीलौ जु होई।
छवि जु निरखि तेरी, मात ह्वैं सर्व देवा,
छविमय शुभ मूर्ती, नाथ दै मोहि सेवा॥७॥

— सवैया - ३१ —

छत्रधारी छत्रधनी छत्रपती पति तू ही,
परम प्रवीन स्वामी थिर चर पति है।
छत्र छाय तेरी तलि वसैं सव लोक नाथ
भव जल तारक तू नायक सुजति है।

छक नांहि तेरै कोऊ, छक्यो तू स्वछति मांहि
केवल ही मांहि तेरी महिमा वसति है।
छल तैं वचाय देव दै जू भवतार सेव,
अगनित गुन तू ही अगनित छति है॥८॥

छति तेरी सत्ता निज अतुल अनंत रूप
छति कौ निवास तू अछति कौ निवारका।
छती छिटकाय तू जु है रह्यौ दिगंवर है,
अंवर को अंवर तू जीव कौ सुधारका।
छत्र नांहि काहू काल उघड्यो जगतपाल
छजै तोकौं लोकभार भविनि कौ तारका।
छह भेद कारक तू धारक परमतत
दास कौ उधारक तू मोह कौ प्रहारका॥९॥

छह द्रव्य भासक तू, छह काय पीहर है,
छह दस कारण कौ कारण अनादि का।
छहवीस मोह भेद नांहि तोमैं तू अमोह,
छहतीस गुन धार सूरि भजैं आदि का।
छह चालीसा जु दोष टारि मुनि भोजन लें,
तेरे ही उदेस रीति गहैं स्यादवादिका।
छह चालीसा जु गुन आदि हैं अनंत तोमैं
मुनिनि कौ तारक तू देनहार दादिका॥१०॥

छहपन देवि जे कुमारिका कहांवैं नाथ,
भजैं तोहि भावकरि देव सिर नांवहीं।
छह परि शून्य एक साठि जे कहांवैं ठीक,
साठि ही हजार सुत सगर के ध्यांवहीं।
छहसठि आध सिंधु थिति सुर नारक की
भासै उतकिष्ट तूहि मुनि गुन गांवहीं।
छह सत्तरी जु लाख देवल तिहारे नाथ,
छह भेद भवन निवासिनि मैं पांवहीं॥११॥

*काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर

— दोहा —

छह अस्सी जु छियासिया, ताके आधे खंध।
हौंहि तियालीसा प्रभू चौथे ठांणी अवंध॥ १२॥

छह निवै जु हजार ही, चक्रवर्ति तजि नारि।
तोहि भजैं छहखंड कौ, राज त्यागि व्रत धारि॥ १३॥

छह निवै लक्षा प्रभु, तेरे देवल पाँन।
कुमरदेव धारैं सदा, मुनी भजैं गहि मौन॥ १४॥

— मालिनी छंद —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

छाया माया, नांहि तेरे जु काया, छायाकारी, सर्व कौ तूहि राया।
छांनौ नांही, देव विख्यात तू ही, छांनौं नाथा, नांहि पांवैं समूही॥ १५॥

छात्रा नाही, छाक नांही जु तेरैं, त्राता तू ही, भ्रांति आवै न नैरैं।
छागा बोका, जे हतैं घोर पापी, नर्का जांवैं, कष्ट पांवैं सत्तापी॥ १६॥

छाया तेरी, नां लहैं हिंसका जे, पांवैं दुख्या, जीव विध्वंसका जे।
तू है रक्षा, कारणो सर्व जीवा, पापा चारी नांहि पांवैं कुजीवा॥ १७॥

— चौपई —

छागलि कौ जल है अति निंद्य, गावै तेरौ श्रुति जगवंद्य।
छाज चालनी चर्म अलीन, विना चर्म धारैं जु प्रवीन॥ १८॥

छाछि दही ए विदल जु जुक्ता, तेरे दास गिनैं हि अजुक्ता।
छाछि दही वसु पहर वितीत, तू हि निषेदै देव अजीत॥ १९॥

छाछि दही पांनी इत्यांदि, कुल किरिया विनु लेवौं वादि।
छाछि समांन सकल संसार, घृत रूपी तू जग मैं सार॥ २०॥

छाज समान गुनग्रह होय, तव पांवैं तोकौं प्रभु कोय।
छांटि छांटि सब जग परपंच, एक तोहि ध्यांवैं सुख संच॥ २१॥

छालि मूल कूंपल फलपात, वीजांकुर रक्षक तू तात।
छांडि विषय इंद्रिनि के साथ, तोहि भजैं तू देव अबाध॥ २२॥

छांणैं जल अर अन्न जु बीण, तेरे दास गृहस्थ प्रवीण।
छात जगत कौं तू भवतार, तेरी छाप गहैं गणधार॥ २३॥

छाद समान जगत के भोग, अभिलाषैं अज्ञांनी लोग।
छाके रहैं मोहमद पीय, जन्म विगारैं मूढ स्वकीय॥ २४॥

तो विनु मूढ भमैं भव मांहि, भगति माल गूंथैं सठ नांहि।
छाव भगति माला की दास, तो ढिग मे लैं धरि तुव आस॥ २५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— सवैया - ३१ —

छिपानाथ नाथ तू ही, छिपासम माया दूर
भ्रांति को हरन हार जगत को भांन है।
छिन छिन ध्यान तेरौ करैं ध्यांनी आतमज्ञ,
तू ही ज्ञाननाथ लोकालोक कौ सुजांन है।
छिक छाक तेरे श्रुति मांहि नांहि देखिये जू
आदि अंत एक शुद्ध सत्ता कौ बखान है।
छिनक प्रवादी कौ उथापक है तू ही प्रभु
स्यादवाद आगम कौ धारक प्रवांन है॥ २६॥

छिद्र तैं रहित ईस, छिपै न छिपायौ धीस,
छिद्र त्यागि तेरौ जस अहनिसि गायए।
छिमा कौ पहार तू ही, छिप्र शिव दाता देव,
कोटिक छिपाकरा जु नख मैं वतायए।
तेरे ध्यांन विन छिन जाय जोई वादि गनि,
छिन छिन ध्यांन नाथ, तेरौ उर लाइए।
छीनमोह छीनदोष, छीनराग छीनरोग,
छीजै नांहि काहू काल गुरनि तैं पायए॥ २७॥

छींक न जंभाई नाथ, छीति नांहि भीति कोऊ,
छीतल न पावैं भेद सीतल तू नाथ है।

छींट अर पांटवर अंबर सकल त्यागि
होय कैं दिगंबर सुदास करैं साथ है।
तू ही छीनकाम सब छीनता हरन रांम,
मार्गदर्शक :- भवदुख सुखक बुझावे कौं पाथ है।
छीनता हरनदेव अतुल अनंत भेव,
तारि भव सागर तैं तू हि वडहाथ है॥ २८॥

छीला के जु पात सम तैं ढिग चंद सूर,
छुट्यो तू न वंधै कभी अमल अवंध है।
छुरिका न पासि अर पासि सब काटै तूहि
छुटैं तोहि ध्यांवें छुट काल मांहि बंध है।
मेरी देह पूतिगंध छुऊं कैसैं तोहि ईस,
तू तौ अति सुंदर सुमूरति सुगंध है।
छूटि मेरी करौ देव छूटि करि करौं सेव
तोहि नांहि सेवै सोई हिरदै कौ अंध है॥ २९॥

छूंछि सम जग भोग, कणरूप भक्ति तेरी,
छूवैं नांहि तोकौं कभी रागादिक रोगिया।
छेद भेद खेद नांहि, छेव नांहि तेरौ कभी
छेदक तू पासि कौ मुनिंद है अरोगिया।
छेक नांहि तेरी सेवरूप नाव कै जु भूप,
खेवट अगाध तू हि, जनम कौ जोगिया।
छेलादिक जीवनि कौ रक्षक दयाल तू हि,
छेह नांहि पांवैं मुनि निज रस भोंगिया॥ ३०॥

छेदन औ भेदन सुवंधन सुबध और
अतिभाररोपण जु अन्नपांन रोकनां।
दया के विनासक ए भक्ति कौं न आंवन दें,
करैं ऐसे कांम सठ नाथ तेरे लोक नां।

छैल तोसौ दूसरौ न दीसै जग मांहि और
आनंद स्वरूप महा जाहि कछू सोक नां।
रमा कौ रमन हार आपद हरन हार,
सकति अपार एक तू ही है विलोकनां॥ ३१॥

छोटे मोटे जीवनि को रक्षक है तू ही नाथ,
छोटे मोटे दोषनि कौ तू ही हर देखिए।
तेरी सेवा विनु छोछि करंनी न आवैं कांमि,
करनी कौ मूल तेरी भक्ति जु बिसेखिये।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
छोहर है तेरे सव सुर नर नाग मुनि
तू है तात सबकौ, प्रसिद्ध इह लेखिये।
तातैं सव त्याग जोग तू ही एक लैंन जोग
सवै जग त्यागि एक तोहि कौं जु पेखिये॥ ३२॥

— सोरठा —

छोति हरै मल रूप विमल रूप तू देव है।
छोप नांहि जग भूप तू अछोप परमेसुरा॥ ३३॥

छोभ न छोह न देव, तो सम सोभ न जगत मैं।
छोडे दोष अछेव गुन निवास तू राजई॥ ३४॥

तू नहि आवै हाथ, छोच्छ पोल वातांनि तैं।
तू मुनि गन कौ नाथ, योग धारि योगी भजैं॥ ३५॥

छौंना नहि तू नाथ, तात मात सव जगत कौ।
सुरनर मुनिवर साथ, तोहि भजैं पुरखा तुही॥ ३६॥

छौटिक अर सव छंद तू हि प्रकासै शब्द सहु।
तू आनंद सुकंद, छौगा पाघ न अवंरा॥ ३७॥

छं कहिये श्रुति मांहि, निरमलता कौ नांम है।
तो विनु निर्मल नांहि, समल सवै ही जगत के॥ ३८॥

छं भाषै मुनिराय, नाम तटस्थ हु वस्तु कौ।
तू तटस्थ सुखदाय, और सवै वूडि जु रहे॥ ३९॥

छंद न बंध न फंद, छंद सवै परगट करै।
तू है त्रिभुवन चंद, तिमरहरन अमृत झरन॥ ४०॥

छेदन कौ है नांम, छः कहिये आगम विषै।
तू छेदै प्रभु कांम, क्रोध आदि दोषा घनें॥ ४१॥

छः संवर कौ नांम, भाषैं संवरधर मुनि।
तू जिनवर विश्रांम, संवर रूप अनूप तू॥ ४२॥

अथ एक कवित मैं बारा मात्रा।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— सवैया ३१ —

छल रूप लोक इहै, छार समभूति इहै,
अैसौ जांनि छिन हूं न भूलैं तोहि जोगिया।
छीजैं नांहि खीजैं कभी छुटै जग जालतैं जु
कुटैं नांहि काल पैंसु छूटैं भव रोगिया।
छेदन और भेदन कौ नांम है न रावरै जु
छैल तोसौ दूसरौ न आनंद कौ भोगीया।
छोडे तैं विभाव भाव छोटिक न छंद राव
छः प्रकास है अभास परम असोगिया॥ ४३॥

— दोहा —

छटा तुल्य जगभूति है, तुव विभूति है नित्य।
छति तेरी सत्ता रमा, संपति दौलति सत्य॥ ४४॥

इति छकार संपूर्ण। आगैं जकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

जगन्नाथं जनाधीशं, जातरूपाभमीश्वरं।
जिनं जीवाधिपं धीरं, जुटितं च न मायया॥ १॥

जटाजूटात्मकं देवं, जेतारं जैन भासकं।
रजोहरं महावीरं, मिलितं न हि कर्मणा॥ २॥

ज्योति रूपं सदा शांतं, यत्क्रमाब्जौ सुराधिपैः।
पूजितं तं नमस्यामि, ज्रंभितं जः प्रकाशकं॥ ३॥

— छप्पय —

जगजीवन जगभांन, नाथ तू जगत प्रकासी,
जगनायक जगदेव, शुद्ध तू तत्त्व विकासी।
जगत सिरोमणि धीर, तू हि जगमांन अमाना,
जगत उधारक ईस, तू हि जगदीस सुजांना।
जग त्यागी जग भाल सांई, जगतजीत अघजीत तू।
जडता रहित सुग्यांन रूपी, अजड अरूप अतीत तू॥ ४॥

जलजित निर्मलभाव, जलजजित तेरे पावा,
जलजबासिनी नाथ, जलधि जित तेरे भावा।
जलद नांहि अति ऊच, ऊच तू अमृतवर्षा,
जनक सकल कौ तू हि, जनक तारक अति हर्षा।
जक न परै जौ लग्ग दरसन, होय नहि प्रभु रावरौ।
दरस देहु परसन्न होई, किये दोष सहु छावरौ॥ ५॥

जड चेतन सव भास, तू हि चैतन्य सुरूपा,
जस तेरौ नर नाग, देव गावैं जु अनूपा।
जनम जरा अर मरन मेटि हमरे अविनासी,
जघनि मध्य उतकिष्ट, भेदभासक सुखरासी।
तू न जघन्य न मध्य देवा, उतकिष्टा उतकिष्ट तू।
जलथल उपन्न सव कष्ट हर, जठरागनि हर इष्ट तू॥ ६॥

जनपति जय जय देव, दास पांवैं जय तोतैं,
जहँ मूढताभाव, रावरौ अनुग्रह होतैं।
विनु अनुग्रह तप करैं, तौहु पांवैं नहि पारा,
मासमास उपवास, धरैं जलविनु तप भारा।
एक वूंद जल पारनौं करि, वहुत काल अैसे तपा।
करहि तदपि तो विनु गुसांई, कर्मभर्म कवहु न खपा॥ ७॥

जव कहिये प्रभु तेज, वहुरि इह सीघ्र जु नांमा,
सीघ्र तारि करि पार, तू हि अति तेज सुनांमा।
जव मात्र हि अन्न खाय, वूंद एकहि जल पीवैं,
तौ पनि तो विनु पार जगत जलकौ नहि छीवैं।
शंकर जु जटाधर चरन रज, सेवैं नाथ सुरावरी।
जटाजूट अतिभाव, स्वामी हरौ भ्रांति अति बावरी॥ ८॥

— दोहा —

जगत जेष्ट जग पाल तू, जगन्नाथ जग बंधु।
जगत ज्योति, जग योनि तू, जगत गर्भ निरबंध॥ ९॥
जगत हितैषी जग प्रभू, जगदग्रज जगमित्र।
ज्वलत ज्वलन प्रभ जगत गुर, जगतभिषक अतिचित्र॥ १०॥
जग सुंदर जग राय तू, जगत धात जग पीव।
जगत तात जग छात तू, जनपालक जगदीव॥ ११॥

— मंदाक्रांता छंद —

जांनैं सारी, तन मन तनी, जातरूप स्वरूपा,
जातव्रतो अति गुण तु ही, जाग्रतो तू अनूपा।
प्रीत्यप्रीती, कबहु न धरैं, जातजात्यादि वीता,
जाला काटै कलिमल हरैं, जाल जंजाल जीता॥ १२॥

जाच्यो देवा, भवभय हरौ, तू हि है जांन राया,
जाचैं काकौं, तुवतजि प्रभू, तू अवाची अकाया।
जाया माया, कछुहु न धरैं, जाय आवै न स्वांमी,
जाकौं जोगी, जगतजि रटैं, सो तु ही है विरांमी॥ १३॥

— दोहा —

जाति जरा मरणादि जे, जाग्रत सुपन सुषुप्ति।
तैं एक न जातुचित, तू अजात धर गुप्ति॥ १४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जाकै काहु काल ही, आलजाल नहि कोय।
नागर तू हि सुजागरू, परम उजागर सोय॥ १५॥

जाडौ लोक अनंत तैं, जामैं सर्व समाय।
परमाणू तैं पातरौ, मुनि हु नु देखैं राय॥ १६॥

जार चोर जाहि न लहैं, लहैं सुशील सदीव।
जाल रूप भव जाल तैं, जा भजि निकसैं जीव॥ १७॥

जावा की जेती वसत, ते सव मद्य समांन।
जाही नैं निंदी सवैं, त्यागैं दास अखांन॥ १८॥

जाप जपैं तेरे मुनी, जपैं देव नर नाग।
जालिम तू मोहादि हर, भक्ति धरैं वडभाग॥ १९॥

जिननायक जिननाथ तू, जिनपति तू जिनराय।
जिन मारग भासी तु ही, तू जिनदेव अमाय॥ २०॥

जिती जितेंद्री जित गुरू, जित मनजित बुधि धीर।
जित विमोह जित काम तू, जिताजीत अतिवीर॥ २१॥

जित जित देखैं नाथजी, जिहां जिहां तू ईश।
जिम जिम तोकौं ध्याइए, तिम तिम शुद्धि अधीस॥ २२॥

जिय की भ्रांति सवै मिटैं, हिय की सल्य पलाय।
जव तू आवै घट विषैं, जितजीतक अधिकाय॥ २३॥

तू जितजेय जितीसरो, है जिनिंद्र प्रभु जिश्नु।
परम जिताक्ष जितीश तू, तु ही जितांतक विश्नु॥ २४॥

जिगजिगाट तेरी छवी, जितविभाव जग जीत।
जिक्कहिये जेता प्रभू, तू जेता अघजीत॥ २५॥

जिक्कहिये जय नांम है, तू जयरूप अनूप।
जितकर्मा अतिधर्म तू, जित मनमथ व्रत रूप॥ २६॥

— सवैया तेईसा - २३ —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जीव अजीव तनें सवभेद कहे जगपीव, तु ही अतिभासा।
जीव दया प्रतिपालक तूहि सुजीवनि कौ पति जीव प्रकासा।
जीरण नांहि न जोवनवांन सुबाल न लाल अजीरण नासा।
जीति स्वरूप अजीत अपार सुजीवनि कौ रछि पाल अनासा॥ २७॥

जीभ अपार करे पति नाग जपैं वडभाग सुपार न पांवैं।
जिश्नु अनेक जु नैंननि तैं निरखै तुव रूप सुत्रिप्ति न आवैं।
जे अहमिंद्र अनुत्तरवासिसु नित्य निरंतर कीरति गांवैं।
काल असंखित तेहु न पार लहैं गणधार न तोहि जु भांवैं॥ २८॥

जीभ जु एक न शक्ति सुवाच्य महामतिहीन न आगम धारी।
नांहि अध्यातम कौ कछु लेस न धर्म गृहस्थ न साधु अचारी।
व्रत न जोग नही प्रभु ज्ञान सु कैसहि गांवहि कीरति भारी।
डेडर या भव कूप जु के हम तू गुनसिंधु अवंध अपारी॥ २९॥

— दोहा —

जीव जगत के हम प्रभू, गुन वरनन नहि होय।
भक्ति भाव भासै गुणा, और न कारन कोय॥ ३०॥

जुदौ मोहमद द्रोह तैं, जुदौ जगत तैं राव।
माया काया तैं जुदौ, तोतैं जुदे विभाव॥ ३१॥

जुदौ नही गुन ग्यान तैं, न हि सत्ता तैं भिन्न।
जुदौ नहीं आनंद तैं, आतम देव अभिन्न॥ ३२॥

जुगपत तेरौ ज्ञान है, व्यापि रह्यौ सव मांहि।
जु को दिवस तो विनु गमैं, धृक सो दिन सक नांहि॥ ३३॥

जुरैं न तो सौं कर्म ए, भिरैं न तो सौं भर्म।
परैं परैं फिरते फिरैं, तू अतिबल अतिधर्म॥ ३४॥

जुर्‌यो न तोसौं जीव इह, तातैं रुल्यो अपार।
जुरैं चित्त करि तोहि सौं, ते पावैं भवपार॥ ३५॥

जुटैं न तोसौं जड सवै, टूटैं तोहि सौं कर्म।
कटैं न मोतैं पासि ए, काटि भर्म दै धर्म॥३६॥

— सवैया - ३१ —

जूवो सव दोषनितैं गुननि कौ नाथ महा
जूवा मांस मदिरा कौ निंदक महाप्रभू।
गनिका कौ निंदक औ निंदक अहेरा हू कौ
चोरी चारी जारी तजि संतनि गहा विभू।
परदारा संगम निषेद्यो जांनैं पाप महा हु
विसन सेय कैं न काहू नैं लहा स्वभू।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

वहै प्राणिनाथ प्रांणि प्राणनि कौ रछिपाल,
उपज्यो न काहू काल सूत्र मैं कहा अभू॥३७॥

— सोरठा —

जूनौं तू अतिनाथ, काल अनंतानंत कौ।
नित्य नवल गुन साथ, जूनौं तू नहि देखिये॥३८॥

विषै भोग जग जूठि, सो दासा चाहैं नहीं।
दैकैं जग सौं पूठि, निहकामा ह्वै गुन रटैं॥३९॥

जेता जग कौ तू हि, जेठा सव मैं तू सही।
तू ऐसौ जु प्रभूहि, जे जन हीं तारै तुरत॥४०॥

जेते जीव अजीव, तेते सव तुव ज्ञांन मैं।
तू त्रिभुवन कौ पीव, अंतरजांमी सवनि कौ॥४१॥

लहैं जेहली नांहि, तू जेहलता दूर कर।
परे जेलि कै मांहि, जीव तुही काढै प्रभू॥४२॥

तोतैं सव हैं जेर, जेरज अंडज उदभवा।
तू मरजादा मेर, सव कौ रक्षक ईसरा॥४३॥

जेठमास गिरसीस, तापतपै तौंपनि प्रभू।
तुव भजिया विनु ईस, कटै कर्म की पासि नां॥४४॥

जैत्र शस्त्र को धार, कर्म निपातक तू प्रभू।
जीव दया प्रतिपार, जैंनी जैन प्रकास तू॥४५॥

जैत लहैं जगजीव, तुव भजियां परमेसुरा।
ज्योति रूप तू पीव, ज्योती सर जोगीसुरा॥४६॥

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ज्योति लहैं तुव ध्याय, जगत ज्योति तू जोगिया।
जोलजाल नहि राय, पार उतारै वेगि ही॥४७॥

जोरावर अति मोह, पारै तौतैं आंतिरौ।
मेटै तू निरमोह, मोहतनीं जोरावरी॥४८॥

जोम धरैं जगनाथ, हम लोगनि सौं कर्म ए।
जोम चलै नहि नाथ, तो आगैं सर्व कर्म की॥४९॥

जो है वेग जु नांम, एकाक्षर माला विषै।
वेगि उतारौ रांम, भवसागर गंभीरतैं॥५०॥

जो तेजस्वी नांम, तू तेजस्वी प्राक्रमी।
जो जो कहिये रांम, सो सो तोहि फवै विरद॥५१॥

जौ है जन कौ नांम, जन तेरे तू जनपती।
तेरी कीरति रांम, जौंन्ह सोइ औरै नं कौ॥५२॥

जंतुनि कौ रछिपाल, जंगम थावर नाथ तू।
दया धर्म प्रतिपाल, जंतु तिरैं तुव भजन तैं॥५३॥

जंघाचरण साध, जे अकास गमन जु करैं।
तोहि भजैं जु अबाध, तू अगाध परमातमा॥५४॥

जंबू आदिक दीप, लवणोदधि प्रमुखा जलधि।
तू भासै अवनीप, सर्व दीप कौ नाथ तू॥५५॥

जंबू फल नहि भक्ष, साधारण वर्जित सवै।
धारहि तेरी पक्ष, ते न अभक्षा आदरैं॥५६॥

— दोहा —

जः कहिये सिद्धांत मैं, है जन कौ ही नांम।
जन उधरैं भव जलधि तैं, तू तारक गुण धांम॥५७॥

---

* तेरी जाग्रत चेतना, ज्ञान चेतना लच्छि।

अथ बारा मात्रा एक सवैया मैं।

— सवैया - ३१ —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जगत कौ तारक तू जाग्रत सुरूप देव
जिननाथ जीति रूप वीतराग है सही।
जुँरे नांहि तो सौं कोऊ जूनौं तू न नौतन है,
जेलि तैं निकासै तू हि लोकनाथ है तू ही।
जैन कौ प्रकासक तू ज्योति कौ निवास सदा
जौंन्ह तेरी कीरति सी चंद मांहि है नहीं।
जंगम सुथावर कौ एक रछिपाल तू ही,
जः प्रकास सर्वभास चिद्विलास है वही॥ ५८॥

— दोहा —

तेरी जाग्रत चेतना, ज्ञान चेतना लच्छि।
रमा भगौती शंकरी, दौलति है परतच्छि॥ ५९॥

इति जकार संपूर्ण। आगैं झकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

झषध्वज रिपुं धीरं, सर्व प्राणि हितं परं।
सर्व मात्रामयं धीरं, वंदे देवेंद्र वंदितं॥ १॥

— दोहा —

झ कहिये भैरव प्रभू, तू भैरव कौ नाथ।
शांत देव परतक्ष तू, कर्मदलन वडहाथ॥ २॥

झ कहिये फुनि बंध कौं, तेरे बंध न कोय।
झ कहिये घर्घर स्वरा, तु सुस्वर प्रभु होय॥ ३॥

झलक झलक तेरी छवी, झलझलाट तू देव।
झमझमाट करि सुरनरा, करहि नृत्य धरि सेव॥ ४॥

झलमलाट वहिरंग ए, तोहि लहैं नहि नाथ।
तू चैतन्य प्रकास है, अति विलास गुन साथ॥ ५॥

झकझोल जु तैरै नहीं, तू अविवाद स्वरूप।
झरहर से तुष ग्राहका, लहै न तेरौ रूप॥६॥

— इन्द्र बज्रा छंद —

झषध्वजो नांम सुकांम पापी, करै जु पीरा अति ही सतापी।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तु ही जु देवा झषकेतु नासा, सुशील रूपी परम प्रकासा॥७॥

झषा कहावैं प्रभु मीन जीवा, बसैं जु स्वांमी जल मैं सदीवा।
तु ही सवौं की करुणा जु धारै, तु ही मुन्यों कौ भवसिंधु तारै॥८॥

झरै अमीं नाथ तु ही सुमेघा, तो सौ तु ही देव कहा जु मेघा।
लावै झरा तू हि अखंड धारा, त्रिश्ना झला तू हि करै प्रहारा॥९॥

नहीं झलक्कै प्रभू तू कभू ही, भरा जु पूरा गुन का समूही।
झल स्वरूपा भ्रम भस्मकारी, निर्धूम देवा न लघू न भारी॥१०॥

करैं हि मूढा झगरा जु झांटा, हिये जु मैला जिय मैं जु आंटा।
नहीं जु पावैं निज भक्ति तेरी, लहैं सु ते लैंहि न भ्रांति नेरी॥११॥

— गाथा छंद —

झगरा तैरै नांही, तू द्रव्यवादी अनेकवादी है।
अति गुण तैरै मांही, सतिवादी स्यादवादी है॥१२॥

झालरि कौ झुणकारा, तैरै वाजैं अनेक वाजित्रा।
झांझि मजीरा सारा, तू राया लोक कौ मित्रा॥१३॥

झांण सुगम्मा तू ही, तू ही झायार झांण रूपा।
झांणी णांण समूही, असरीरा तू अरूपा है॥१४॥

झाल जु त्रिश्ना रूपा, तो विनु सांता न होइ काहू तैं।
कर्म जुझार सुरूपा, दूरिदि नासैं जु साहू तैं॥१५॥

झिगति झिटति ए नामा, शीघ्र तेनें पंडिता जु भासैं ही।
वेगि उधारि सुरांमा, तुव भजियां पाप नासै ही॥१६॥

हम हि झिकाय मुनिंदा, पाय जु तेरी सु अमृतावांणी।
तो तै देव जिनिंदा, झीणी चरचा लखैं प्रांणी॥१७॥

झीणां तू अति पुष्टा, झीलि नहीं रावरी धरा मांही।
तू अति उच्च सपष्टा, कर्दम करिमा कभि नांही॥ १८॥

झुणकारा अति होवैं, वाजै वाजा अनेक भांतिनि का।
तुव भजि कलिमल खोवैं, कर्म प्रहारी झुझारनि का॥ १९॥

झुकै जीव जो कोई, तेरी द्यां तीन लोक के नाथा।
सकल कल्याण जु होई, सौई पावै जु तुव साथा॥ २०॥

झुकै न तू अघ मांही, तो मांही धर्म देखिये अतुला।
तू अधरम मैं नांही, नांही भाव धरै समला॥ २१॥

— सवैया - ३१ —

झूठौ है इकंतवाद जामैं नांहि स्यादवाद,
क्षणिक प्रवाद जाकौं वोध मत कहिये।
झूठौ विपरीत महा जामैं जीव घात कहा,
झूठौ संसैथाप जाकौ भूलि हू न गहिये।
झूठौ नास्तीकवाक जाकौ कहैं चारवाक,
झूठे कौल कापालिक करुणा न लहिये।
झूठौ विनै मिथ्या जामैं पूजिये जु सवै देव,
झूठौ है अग्यांन जातैं भ्रांति मांहि वहिये॥ २२॥

— सोरठा —

झूठ समांन न पाप, तैरै झूठी वात नां।
झूठे पांवैं ताप, भक्ति लहैं साचे नरा॥ २३॥

साच हु झूठ विसेस, जामैं जीव दया नहीं।
करुणामई असेस, सत्यादिक भासै तु ही॥ २४॥

झूठे सब ही देव, काल जीतिवे सक नही।
तेरी करहि जु सेव, ते ही काल जीतैं प्रभू॥ २५॥

झूठे मिथ्या पंथ, तिन मैं तेरी भक्ति नहि।
झूठे मिथ्या ग्रंथ, जिन मैं तुव चरचा नही॥ २६॥

झूप त्यागि नर नाथ, वन उपवन गिरि सिर वसैं।
करैं रावरौ साथ, हाथ करैं निरवांन ते॥ २७॥

झूलै निज रस मांहि, स्वरस विहारी देव तू।
सव छति है तुव पांहि, भव झेरा तैं काढि प्रभु॥ २८॥

सुरझेरा करि देव, उरझेरा हरि जग प्रभू।
दैं स्वांमी निज सेव, झेलि हमारी वीनती॥ २९॥

झेरा मैं रस नांहि, नीरस झेरा जग इहै।
सब रस तेरै मांहि, निज गुन वेढि निकासि तू॥ ३०॥

उरझै तो विनुजी, सुरझै तो करि जीव इह।
वूझै तोकौं पीव, तव आपौ जांनै सही॥ ३१॥

झै मात्रा मैं तू हि, झोल झाल तेरै नहीं।
झोक न गुन जु समूहि, जाग्रत रूप सदा तु ही॥ ३२॥

— छंद मोती दाम —

नहीं कछु झोर न ही झकझोर, तु ही अति जोर हरै सब रोर।
कहै प्रभु झोर पल्लंम जु नांम, नहीं जु पल्लम तु ही अभिरांम॥ ३३॥

नही कछु झौर तु ही अति दौर, हरै झकझौर तु ही जगमौर।
तुझै तजि मूढि विषै सुख मांहि, रमैं नरकांपुर तात हि जांहि॥ ३४॥

करै सठ झंपहपात जु देव, तुझै तजि धारहि आंन जु सेव।
नहीं प्रभु झंझह पौंन जहां जु, नहीं कछु सीत न घांम तहा जु॥ ३५॥

नहीं जलदान जहां तुव थांन, नही वन ग्रांम नही ससि भांन।
नहीं दिन रैंनि जहां अति चैंन, न नीच न ऊच नही जहँ मैंन॥ ३६॥

सवै तुव झिंडह मांहि दयाल, जु लोक अलोक अनंत विसाल।
तु ही जु रसाल सवै जगभाल, करै जु निहाल तु ही इक लाल॥ ३७॥

— दोहा —

झः कहिये सिद्धांत मैं, नष्ट वस्तु कौ नांम।
नष्ट जेहि तोहि न भजैं, तू सपष्ट अभिरांम॥ ३८॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं ।

— सवैया - ३१ —

झर लावै अमृत कौ जगत की जीवनि तू,
झाल माल नांहि लाल काल हर देव तू।
झिगति तू पार करै झीणी चरचा जु धरै,
झुकै नांहि झूठ मांहि अतुल अभेव तू।
झेरा तैं निकासै ईस झै विभास तू अघीस
झोलझाल नांहि तेरै, अचल अछेव तू।
झौरझार नांहि कोऊ झिंडा मांहि सर्व होऊ
झः करै जु राग दोष, देहु निज सेव तू॥ ३९॥

— दोहा —

नष्ट वस्तु कौ झः कहै, नष्ट करै रागादि।
ऐसी तेरी सेव दै, सरव गुननि की आदि॥ ४०॥

झगर समा झगरामई, भूति समा भवभूति।
तेरी दौलति सासती, सत्ता अतुल विभूति॥ ४१॥

इति झकार संपूर्ण। आगैं ञकार का व्याख्यान करै हैं।

— श्लोक —

ञकाराक्षर कर्त्तारं, सर्वज्ञं सर्वकामदं।
शिवं सनातनं शुद्धं, बुद्धं वंदे जगत्प्रियं॥ १॥

— छंद मोती दाम —

ञकार सुअक्षर मूढ जु नांम, नहीं हम से सठ और जु रांम।
तुझै जु विसारि रचे भव मांहि, कछू सुधि आतम की प्रभु नांहि॥ २॥

ञकार जु नांम विषै परसिद्ध, सुइंद्रिनि के रस मांहि जु गिद्ध।
लहैं नहि भक्ति जु ते मतिहीन, विषै सम पाप न और जु लीन॥ ३॥

अकार जु नाम कहैं श्रुति मांहि, जु गावहि ता कउ संसय नांहि।
तु ही सब गावइ धर्म जु रीति, तु ही जु निवारइ पाप अनीति॥४॥

प्रभू सुर सप्त जु भासइ तूहि, तुझै प्रभु गांवहि देव समूहि।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
नहीं कछु राग तु ही जु विराग, महा वडभाग, सदा अविभाग॥५॥

अकार जु नांम जु जर्जर वैंन, तु ही मधु वैंन सुकेवल नैंन।
जपैं सुर जर्जर, वृद्ध महांन, तथा सुर जर्जर क्रोध जुवांन॥६॥

न क्रोध सुरूप न ही प्रभु वृद्ध, तु ही जु नवल्ल अचल्ल अगृद्ध।
महारस रूप सु अमृत वैंन, सुनाय हमैं प्रभु देहु सुचैंन॥७॥

— सवैया इकतीसा —

मूढता न तेरै, मांहि मूढ़ तोहि पांवैं नहि,
इंद्रिनि के विषया न तोकौं कहूं पांवही।
विषई लहैं न तोहि, निर्विषै करे जु मोहि,
ज्ञायक तू तत्व कौ सुनायक वतांवहीं।
गावै तू सबै जु भेद जर्जरौ न बोल तेरौ,
मिष्ट इष्ट भासै तू जु मुनि जन ध्यांवही।
सर्वाक्षर मूरति तू क्यौं जकार मैं न होय,
सुर नर नाग खग एक तोहि गांवही॥८॥

— दोहा —

निर्विषया शक्ती जिको, शिवाभवा शिवभूति।
मा पद्मा जु रमा महा, सो दौलत्ति विभूति॥९॥

इति जकार संपूर्ण। इति श्री भक्त्यक्षर मालिका अध्यात्म बार खड़ी नांमध्येय उपासना तंत्रे सहश्र नांम एकाक्षरी नांममालाद्यनेक ग्रंथानुसारेण भगवद्भजनानंदाधिकारे आनंदोद्भव दौलति रांमेन अल्पबुद्धिना उपायनी कृते ककारादि जकारांत दशाक्षर प्ररूपको नांम द्वितीय परिच्छेद: ॥२॥ आगैं टकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

टकाराक्षर कर्त्तारं, चिच्चिमत्कार लक्षणं।
वंदे देवाधिपं देवं, सर्वभूत हितं परं॥ १॥

— दोहा —

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

टर्‌यो नही टरि है नहीं, टरै न कवहू देव।
अटल अचल अति विमल तू, दै स्वांमी निज सेव॥ २॥

एक टकोरी धर्म कौ, तैरै वाजै नाथ।
तू धरमी धरमातमा, धर्मनाथ गुण साथ॥ ३॥

— सवैया - ३१ —

टक बंधी वात जाकै, टकसाल शुद्ध जाकी,
टकटकी तोहि मांहि, सोई निज दास है।
टगी नांहि टची कोऊ, त्यागे राग दोष दोऊ,
टकेनि कौ त्यागी, वडभागी सुखरास है।
टरै नां भगति तैं जु, डरै नां जगत तैं जु,
करै नांहि कामना जु तेरौई विलास है।
टगटगापुरी अर रांम कौ कहावै राज,
तहां जायवे कौ चित्त जगतैं उदास है॥ ४॥

टल्ला नांहि लागै जाकौं, काल को कदापि नाथ,
पायो तुव साथ, जानैं परम प्रकास है।
जाके एक टल्लां ही सौं भागे मोह आदि सव,
पायो शुद्ध वुद्ध ज्ञान आतम विकास है।
टट्टमार लायकैं विभाव सव काढे जानैं
बाढे भवभाव निज भाव कौ विभास है।
तेरौ ले सरन औ मरन कौ स्वभाव डारि
राग दोष मोह टारि भायौ जू विलास है॥ ५॥

टण टण वाजैं तेरै वाजे अति कोटि भेव
 जीति की जु टेव तेरी अतुल अछेव है।
तेरे पुर मांहि नांहि सीत घांम कोई धांम
 टपका न परैं जहां रति कौ न भेव है।
टपकै अमी अपार तेरे वैंन सुनें सार
 त्रिश्ना कौ न नांम रहै स्व रस स्व बेव है।
अनुभौ की कला तोतैं पाइए त्रिलोकनाथ,
 अनुभव कौ दायक तू देव एक एव हैं॥६॥

टहल तिहारी मोहि देहु जू महल केरी
 टहल्यो अनादि कौ सु मूलि मोमैं ताव नां।
तिहारी टहल पाय हौंहगौ जु निरखेद
 रावरी टहल विनु मोमैं कछु आब नां।
टार्‌यो नांहि टरूं स्वांमी अब तौ उधारि मोहि
 टारटूरी, करौ जि न राखौ पासि ढाव नां।
नांहि कछू चाहि मेरै, तोकनां न मांगू और,
 एक निजभाव दै विभावनि कौं दाव नां॥७॥

टांडौ लादैं ऊरध कौं भरि जु अनंत भाव,
 तेई पुरि तेरै राव आवैं अति चैंन तैं।
टांगरौ सवै जु त्यागि अनुभौ कै पंथ लागि,
 तो सौं अनुरागि मुनि देखैं दिव्य नैंन तैं।
टाक हैं सिधंत मांहि भूमि कौ जु नाम ईस,
 ज्ञान की धरा अधीस पेखैं तुव वैंन तैं।
टावर औ रावर सवै जु त्यागि वडभाग
 तेरै ई प्रसाद साध जीतैं मन मैंन तैं॥८॥

— छंद वेसरी —

टामटूम सव त्यागि मुनीशा, रहैं तो मई ऋषि अवनीसा।
टापू सम ए लोक अलोका, तेरे ज्ञान सिंधु मैं थोका॥९॥

निज मूरति विनु टांकी टांची, ज्ञानानंद स्वरूप जु सांची।
पुरषाकार निराकारा जो, अघटित घाट निराधारा जो॥१०॥

ताके पायवे हि भवि जीवा, मूरति टांची घडित सदीवा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
पूजें तेरी सूत्र प्रवांनै, कर्तृम और अकर्तृम मांनै॥११॥

टांच टींच देवल की दासा, सौ रांवैं करि भगति प्रकासा।
पूजा दांन गृहस्थ जु धरमा, मुनि के दरसन मात्र हि परमा॥१२॥

त्यागि टापरा पाप जु भारा, हस्ती स्यंदन पाय कटारा।
टांक मात्र परिग्रह नहिं राखैं, मुनि तोकौं लखि अमृत चाखैं॥१३॥

टाटी मोह जु माया रूपा, दरसन कौं आडी जु विरूपा।
तोरै एकहि टल्ला सेती, त्यागैं जड परणति हैं जेती॥१४॥

टिकैं निजातम भावनि मांही, तेरे दास जु संसय नांही।
बिना टिकांनी सकट न चालै, भगति विनां व्रत ज्ञांन न पालै॥१५॥

टिक्यो न हूं कवहू तन मांही, ए तन यों ही उपजैं जांही।
टिकौं अनंतानंत जु काला, कवहु टरौं नहि होइ अकाला॥१६॥

टिक्यो रहूं अनुभव रस मांही, इहै भगति फल संसै नांही।
टिकैं न तोपैं कर्म अनंता, हमसौं टिरे टारि भगवंता॥१७॥

टीपटाप जग की सहु झूठी, इनतैं मुनि की वृत्ति अपूठी।
टीपटाप विनु तू अति सोहै, देव दिगंबर जन मन मोहै॥१८॥

टीकौ त्रिभुवन कौ जु ललाटा, तैंरै सोहै तू अति ठाटा।
टीकायत सव माँहैं तू ही, नई नई टीपै न समूही॥१९॥

टीपै द्वय नय एक स्वरूपा, श्रुति अनादि रूपी हि निरूपा
नहीं टिपिवौ नौतन तैंरै, नित्यानित्य कथन तू प्रेरै॥२०॥

टीप करांवैं टींच सुधारैं, तुव मंदिर की तेजस धारैं।
जीरण मंदिर मरमति जेई, करवांवैं ते अतिसुख लेई॥२१॥

नौतम मंदिर रचैं तिहारा, प्रतिमा पधरांवैं गुनभारा।
उपकरणा मंदिर मैं स्वांमी, जेहि चढांवैं हौंहि सुधांमी॥२२॥

टीसि न तेरै रीसि न कोई, टींटि करम की टारै सोई।
रूखा टुकरा पाय मुनिंदा, करै रावरौ ध्यांन जिनंदा॥ २३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

है टुटेक जीवन जयराया, टुक सी लोकनि की इह माया।
तामैं राचि विसार्यौ तोकौं, तातैं धृक धृक है मोकौं॥ २४॥

टूटपूंज्यो इह जीव गुसांई, पूंजी दावी करमनि सांई।
तू हि बतावै पूंजी देवा, हरै रोर अति घोर अछेवा॥ २५॥

टूटि गये भ्रम भाव सवै ही, दासनि तैं मद मोह दवै ही।
दास करौ और न कछु जाचैं, त्यागि कलपना तोसौं राचैं॥ २६॥

— छंद त्रिभंगी —

टूका ले रुखा, किस हि न दूखा, प्यास जु भूखा जीति प्रभू।
करि टूक जु टूका मोह धुरूका, सबद गुरू का धारि विभू॥
तजि टूम जु टामा, क्रोध जु कामा गृह धन धामा, तोहि भजैं।
तेई शिव पावैं, कर्म नसांवैं, आतम भांवैं, भ्रमण तजैं॥ २७॥

नहि टेक जु देवा, तू अति देवा, करहि जु सेवा, भव्यजना।
तेरी इह टेवा, सब सुख देवा, एक जु एवा गुन जु घना॥
वातैं नहि टेढी, तू गुन सेढी, पदमा वेढी, इक तोसौं।
टेढे मद मोहा, राग जु दोहा, करहि जु द्रोहा, प्रभू मोसौं॥ २८॥

— सोरठा —

मार्यो टेरि जु टेरि, टांग्यो इनि अति दुख दियौ।
कूंकौं टेरि जु टेरि, राव हमारौ न्याव करि॥ २९॥

एक टेव की तू हि, और टेव की नांहि को।
रागादिक जु समूहि, टेढे तैं सूधे किये॥ ३०॥

टैंणी तेरै नांहि, टैंणि उतारै मोह की।
स्वांमी तेरै मांहि, गुन अनंत अति शक्ति है॥ ३१॥

टो कहिये श्रुति मांहि, नांव महेश्वर देव कौ।
और सु दूजौ नांहि, एक महेश्वर तू सही॥ ३२॥

टोटौ पर्यौ अनंत, मोटौ करि टोटौ हरे।
खोटौ मोह इकंत, पूंजी दावी कुमति दे॥ ३३॥

तू चिद पूंजी देय, टोटौ हरि जु अनादि कौ।
तोकौं भवि जन सेय, अविनासी धनपति भया॥ ३४॥

टोक टाक नहि कोइ, तू स्वांमी सव लोक कौ।
तोतैं सव सुख होय, दुखहर भयहर भ्रांतिहर॥ ३५॥

प्रभू टौंकरै वैठि, गिर कै मुनि तोकौं भजैं।
रहैं जु तोमैं पैठि, तिन कौं काल ग्रसै नही॥ ३६॥

जगत टौंकरै तू हि, वैठौ दीनदयाल जी।
तोमैं गुन जु समूहि, तू जगजीवन जगपती॥ ३७॥

टं किरीठ कौ नांम, तूहि मुकट सव लोक कौ।
टंकी घड्यो न रांम, अघटित घाट अनूप तू॥ ३८॥

— इंद्रबज्रा छंद —

टंकोतकीरणैक सुज्ञायको तू, टंटा न पावैं जगनायको तू।
टंकार होवैं अतिशब्द तेरै, वादित्र वाजैं अतिभूति नेरैं॥ ३९॥

पंथा कुपंथा प्रभु टंट वंटा, तामैं परैं नाथ लगैं जु कंटा।
तोकौं न पावैं कुपंथैं चलंता, तोकौं न भावैं पर कौं छलंता॥ ४०॥

— दोहा —

टः कहिये सिद्धांत मैं, शून्य तनौं है नांम।
तू रागादिक शून्य है, गुन पूरण अति धांम॥ ४१॥

अथ बारा मात्रा एक सवैया मैं ।

— सवैया - ३१ —

टैं नांहि टारे कभी, तोही मैं टिके जु साध,
टीकायत लोक कौ, तुही अवाध रूप है।
टुक सी विभूति पाय, महामद धरैं राय,
तेरै नांहि मांन तू त्रिलोक मैं अनूप है।

टूकटूक करि डारैं, सकल विभाव दास,
टेक तजि टैंणी तजि तिरैं भव कूप है।
टोली नां अभावनि की, वैठो लोक टौंकरै जु,
टंकवतकीरण तू, टः प्रकास भूप है॥ ४२॥

— दोहा —

टग नहि तेरै और को, ज्ञान रूप टग सोय।
सोई कमला लच्छिमी, संपति दौलति होय॥ ४३॥

इति टकार संपूर्ण। आगैं ठकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ठकाराक्षर कर्त्तारं, दातारं धर्म शुक्लयोः।
नेतारं मोक्षमार्गस्य, वंदे तत्पद लब्धये॥ १॥

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— दोहा —

ठयो न काहू काल जो, नित्य निरंजन देव।
ठटै ठाट निज भाव कौं, सो अनंत अति भेव॥ २॥

ठई प्रतीति मुनीनि कौं, मुनि ध्यांवैं सक नांहि।
ठई न काहू की करी, तुव महिमा जगमांहि॥ ३॥

ठग मोहादि अनंत है, तिन हि ठगैं मुनिराय।
ते तेरै पुर चैंन सौं, आवैं भ्रांति गुमाय॥ ४॥

तुव भक्ती विनु ए ठगा, ठगे जांहि नहि नाथ।
तू ठगहर, दुखहर प्रभू, दीनानाथ अनाथ॥ ५॥

ठग विद्या सव त्यागि कैं, निह प्रपंच ह्वै कोय।
सोई तोकौं पावई, दास अवंचक होय॥ ६॥

मोहि ठग्यो मोहादिकनि, डारि ठगोरी सीस।
इहै ठगोरी भ्रांति है, टारौ जगत अधीस॥ ७॥

ठट्टनि कौ नायक तुही, अति ठट तेरै पासि।
ठाकुर मोहि उधारि तू, आपौ आप प्रकासि॥ ८॥

ठाकुर तू इक और नां, तुव ठकुराई साच।
चिंतामणि जगमणि तु ही, और जु जैसे काच॥ ९॥

कहवति के ठाकुर घनें, ते झूठे अवनीस।
काल जीतिवे सक नही, कायर कुमति अधीस॥ १०॥

ठाकुर तू जगजीत है, काल जीति अति सूर।
चाकर तेरे सुरनरा, तू ठाकुर भरपूर॥ ११॥

ठालिप तेरैं नांहि हैं, ठाट अनंत जु नाथ।
गुण पर्याय विहार तू, धरें अनंत जु साथ॥ १२॥

तू ठालौ जुं ठसाक है, राज न काज न कोय।
साथ दूसरौ नांहि को, एकल भड तू होय॥ १३॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ठाढे आसन धारि कैं, परम समाधि स्वरूप।
ते मुनि तोहि जु ध्यांवही, तू मुनि तारक भूप॥ १४॥

— सवैया-२३ —

ठाहरि जेहि रहैं तुव मांहि, नहीं जिनकैं भवभाव मुनीसा।
ध्यांन करैं न कछु पर आंन सुजांन महामति के अवनीसा।
तेरहि ध्यांन विनां नहि ज्ञान, नही निरवांन तुही सुगुनीसा।
तू जगजीवन है जगनाथ जिनिंद मुनिंद सु ईस अनीसा॥ १५॥

नांहि ठिगा न ठिगी तुव मांहि, ठिगै न किसै प्रभु तू हि अवंचा।
तू अविनासि ठिकांणु सदा निज दासनि कौ प्रभु देहि अरंचा।
नहि ठिलै प्रभु ठेलिउ तू हि, मिलै नहि तो महि नाथ प्रपंचा।
तो विनु ए ठिणकैं जगजीव, परे वसि कर्मनिकै धरि पंचा॥ १६॥

ठीक जु वात कहैं गुरदेव सुमुरिख ते नर तोहि न गांवै।
पंडित्त तोहि भजैं गुनवांन लहैं निज ज्ञान सु जे तुहि ध्यांवैं।
ठींगउ ले तुव भक्ति तनौं अति कूकर कर्मनिकौं जु नसावैं।
ते ठुकराय सबै जडभाव अनंत प्रभाव महापुर पांवैं॥ १७॥

— चौपड़ी —

ठुकराई तेरी अति जोर, जामैं एक न दीसै चोर।
तुव ठुकराई देख्यां देव, सव चाकर दीखैं अति भेव॥ १८॥

ठूंठ समांन वहिरमुख जीव, तोहि भजै नहि राचि अजीव।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
ठूंठ समाना मुनि भी कहे ध्यानारूढ स्वभावैं लहे॥ १९॥

इहै ठूंठता करि हरि देव, वहै ठूंठता हरि जु अच्छेव।
करण हरण कौ विरद जु एह, अघ हरि अपनी भक्ति हि देह॥ २०॥

ठूंणौ देय मोह नैं मोहि, लूट्यो अति भाषौं कह तोहि।
इह ठूंणौं दीयौ जगराय, क्यों धारी तैं माया काय॥ २१॥

ठेठि गुणाढ्य महाप्रभु तूहि, द्याय राय गुन माल समूहि।
तो सम ठेठर और न कोय, प्रभू ठेठि कौ ठाकुर होय॥ २२॥

ठेल्यो ठिलै न तू वरबीर, टेघी जग की तू अतिधीर।
ठेक लगै नहि कवहू नाथ, भगति नाव मैं मुनिजन साथ॥ २३॥

तो सम खेवट और न कोय, भव जल पार करै भवि सोय।
ठै ठै वाजे वाजै देव, तेरै कोटि असंखि अछेव॥ २४॥

ठोकर एकहि सौं भ्रम कोट, ढाहे तैं राखी नहि वोट।
ठोक ठाक करि काढे कर्म, तैं दासा तारे विनु भर्म॥ २५॥

ठोठी वहिरातम जे जीव, तोहि लहैं नहि तू जगपीव।
विना ब्रह्म बिद्या नहि कोइ, पावै तोहि जु निश्चै होय॥ २६॥

ठौर धरै तू ही जु स्वभाव, ठौर देय तू ही जगराव।
ठौर पछारे तैं हि विभाव, तेरी ठौर न कालउ पाव॥ २७॥

ठौहर देहु हमैं भगवांन, मति भरमावैं परम सुजांन।
ठंढि न उश्न न वरखा रती, काल न जाल देहु सो गती॥ २८॥

ठंठ जीव परिणांम कठोर, ते नहि पांवैं तोहि अरोर।
ठः कहिये अति धन कौ नांम, तू अति धनदायक गुन धांम॥ २९॥

ठः कहिये ससि मंडल नां, त्रिभुवन चंद तु ही निज धां।
थिरचर मांहि तिहारी तुल्य, और न दूजौ आप अतुल्य॥ ३०॥

अथ बारा मात्रा एक कबित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

ठट्ट कौ धनी अनादि, ठाकुर तु ही जु आदि,
ठिलै नांहि ठेल्यौं तात, ठीक बात भासई।
ठुकराई भरयो सदा, ठूंणौं नांहि देत कदा,
ठेठि कौ दयाल देव दया कौं प्रकासई।
ठै ठै बाजे बाजैं नाथ, ठोकि काढे कर्म साथ,
ठौर दी सुसाधनि कौं पापनि कौ नासई।
ठंढि नांहि उश्न कोऊ ठः प्रकास आप होऊ,
परम पुनीत देव दूरि नांहि पासई॥ ३१॥

— दोहा —

ठकुराई तेरी महा, सत्ता परणति सोय।
देवि भवानी लच्छिमी, सोई दौलत्ति होय॥ ३२॥

इति ठकार संपूर्ण। आगैं डकार का व्याख्यान करैं हैं।

— श्लोक —

डकाराक्षर कर्त्तारं, सर्व प्रांणि हितं करं।
वंदे लोकाधिपं देवं, सर्व मात्रा प्रकाशकं॥ १॥

— दोहा —

डकारांक आगम विषैं, शंकर कौ है नांम।
और न शंकर दूसरौ, तू शंकर गुन धांम॥ २॥

डकारांक फुनि लोक मैं, ध्वनि कौ नांम प्रसिद्ध।
और न ध्वनि दूजी प्रभू, ध्वनि तेरी गुणवृद्ध॥ ३॥

डक्का हू कौ नांम है, डकारांक जग मांहि।
डक्का तेरौ जगत मैं, और जु डक्का नांहि॥४॥

तैं डकार परगट कियो, तेरैं नांहि डकार।
डरहर निडर अनादि तू, तोमैं नांहि विकार॥५॥

डग हू चलै नहि स्वस्थ तूं, सर्व विहारी देव।
डक नहि तू जु अडंकिता, दै दयाल निज सेव॥६॥

डरैं न काल कराल तैं, तेरे दास नचिंत।
कौंन कमी जिन कै प्रभू, पायो तो सम मित॥७॥

— बसंत तिलका छंद —

माया गिनी अघ सनी भवि नैं जु कैसी,
मांटी डला जुतमला अति निंद्य तैसी।
डारैं सबै हि परपंच सुभक्ति धारैं,
तारैं प्रभू अपनपौ भव भोग डारै॥८॥

कालोहि कालभुजंगो न डसै जु ताकौं,
पीवैं पियूष प्रभू नांम स्वरूप जाकौं।
डाका परैं न जम किंकर कौ तिनौ कौं,
चालै न मंत्र रति डाकनि कौं जिनों कौ॥९॥

नांही डरैं जु डरतैं न हि दास डहकैं,
तोकौं जु ध्याय मुनिराय कभी न वहकैं।
जीवा परे जु जमा डाढ महैं प्रभू जी,
तेई बचैं जु नहि तोहि तजैं कभू जी॥१०॥

नाथा जु चित्त इह डाकत ही फिरै जी,
मोपैं कभी जु इह चित्त नहीं घिरै जी।
तेरै विहार नहि सर्ब लखै जु देवा,
रोकैं मनां मुनि तिके हि धरैं जु सेवा॥११॥

डांवां जु डल इह चित्त न तोहि ध्यावै,
तोकौं विसारि भव मैं भ्रम कौ उपावै।
जे हौंहि डाभ सम तीक्षण बुद्धि धारा,
ते याहि रोकि तुव भक्ति धरैं अपारा॥ १२॥

डाकैत चित्त सम और न कोइ होई,
तेई जु दास मन रोकही धीर होई।
तु ही जु सिंधु प्रभु डावर और देवा,
सोसै न तोहि रवि काल तु ही अछेवा॥ १३॥

डाबा समांन इह लोक तु ही जु रत्ना,
तूई करै जु जगजीवन जीव यत्ना।
डारे विभाव जडभाव अशुद्ध रूपा,
तेई भजैं सुमन लाय गुण स्वरूपा॥ १४॥

— सोरठा —

देह सनेह न कोई, तजे डावरा डावरी।
तन मन तोमय होय, तेई दास महा सुधी॥ १५॥

डिढता धरि मन मांहि, डिगाडिगी सव त्यागि कैं।
तोहि भजैं सक नांहि, ते निज दास प्रसिद्ध हैं॥ १६॥

डिगरैं नांहि कदापि, तेरी सेवा सौं प्रभू।
तन मन तो महि थापि, भजन करैं भौ जल तिरैं॥ १७॥

डिम डिम वाजैं नाथ, तैरै वहु वाजा प्रभू।
लागे मुनिजन साथ, तिरैं तेहि भव सिंधुतैं॥ १८॥

डिगरि गये जु विभाव, दासनि सौं लरिवे न सक।
तेरौ अतुल प्रभाव, तू डीलां अति पुष्ट है॥ १९॥

डीठि न लागै तोहि, अति सुंदर अवनीप तू।
सब मूठी में होहि, तेरी डीठि सवौं परैं॥ २०॥

डील अनंत स्वभाव, गुन पर्याय़ जु रावरै।
तू अनंतबल राव, भाव विभाव धरै नही॥२१॥

भई डुकरिया नांहि, काल अनंत जु वीतिया।
नित्य नई घट मांहि, वैंठी त्रिश्ना हरि प्रभू॥२२॥

डुलि डुलि चहुं गति मांहि, दुखी भयो अति जीव इह।
तू तारै सक नांहि, भव तारक जगदीस तू॥२३॥

डूब्यो जीव अनादि, तेरी भगति विना प्रभू।
धरे जनम बहु वादि, अब उधारि किरपा करे॥२४॥

डूंगरपति गिर मेर, सो तो सम निश्चल नहीं।
तू मरजादा मेर, पूरण परमानंद तू॥२५॥

डूडूगर अति मोह, जातैं हारे सुरनरा।
करै प्रभू अति द्रोह, इह द्रोही संसार कौं॥२६॥

तुझ दासनि थैं नाथ, डूडू मैं हार्‍यो इहै।
तू अनंतगुण साथ, वीतराग निरमोह तू॥२७॥

डूम ह्वै रहे देव, तेरे सुर नर मुनिवरा।
कहै विरद अतिभेव, तू अछेव गुनसिंधु है॥२८॥

डेडर सम हौं ईस, कहा कहि सकौं तुव गुना।
तू गुनसिंधु अधीस, जगदीस्वर अवनीस तू॥२९॥

डेढ दिवस कौ आय, तुच्छ मात्र माया इहै।
तामहि भूले राय, जीव न ध्यांवैं तोहि जी॥३०॥

डेरा इह तन होय, काचौ जीवनि कौ प्रभू।
तामैं राचे लोय, महाभाग ध्यांवैं तुझैं॥३१॥

— अरिल छंद —

डैरू वाजैं नांहि भयंकर शब्द नां,
वाजे वाजैं अतुल, तुल्यता अब्द नां।

नित्य नवल जगदीस, तु ही जग डोकरा,
सब मैं जूनौं तू हि सबै तुव छोकरा॥ ३२॥

डोड काग सम जीव जे न तोकौं भजैं,
महाभाग ते नाथ तोहि भजि जग तजैं।
डोल्हा मूरिख जीव जगत मैं राचिया,
तोहि न ध्यांवैं नाथ विषें मैं माचिया॥ ३३॥

डोबा सब पाखंड एक तारक तुही,
डोरि तिहारी मांहि सम्यकी हैं सही।
डोल चरम कौ निंद्य निंद्य डोहा कह्यो,
दास भखैं न अभक्ष वचन तुव सरदह्यो॥ ३४॥

डोरि तिहारैं नांहि, तुम जु बंधन विना,
डोरि मांहि सब लोक, डौरि विनु तू जिना।
डौरि तजैं भवि जीव, तेहि पांवैं तुझैं,
डंड हरण तू देव, तारि भव तैं मुझैं॥ ३५॥

डंडे जीव अपार मोह नैं कुमति दे,
तू द्यावै निज माल, जीव कौं सुमति दे।
तू नहि डिंभ अदंभ डिंभ वालक प्रभू,
तेरे बालक सर्व तू हि पुरिखा प्रभू॥ ३६॥

है डंडौत जु जोग्य तु ही जगदीस है,
कै तुव वांनि प्रवांनि मुनीस अधीस है।
और न जग मैं कोय, डंडवत जोग्य है,
डंक न तैरै कोय तु ही जु अरोग्य है॥ ३७॥

डंस मंस इत्यादि, जीव रच्छिपाल तू,
डंकित कवहु न होय अडंक दयाल तू।
डंड तीन हीं डारि तो मई ह्वै रहै,
वह जन तोकौं लहै और को नां लहै॥ ३८॥

— दोहा —

डः कहिये मात्रांतिकी, तू सब मात्रा मांहि।
तेरी सी मात्रा प्रभू, तीन लोक मैं नांहि॥ ३९॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

डर नांहि तैंरै कोऊ डारे रागदोष दोऊ,
डिगैं न कभी नाथ डीलां अति पुष्ट है।
डुल्यो नांहि डुलै नांहि, डूंगर तै अति ऊंच
डेरा ज्ञान मांहि तेरो देव तू हि इष्ट है।
डैरू नांहि वाजैं तैंरै वाजे वाजैं जू असंखि,
डोरि मांहि लोक सब तो सौं तू हि सिष्ट है।
डौरि नांहि तैंरै कोऊ डौरि हैरै डौरिनि की
डंडवत जोग्य तू ही डः प्रकास तुष्ट है॥ ४०॥

— दोहा —

डलाजु माटी कौ जिसौ, तेसी भव की भूति।
तेरी लक्ष्मी सास्वती, सो दौलत्ति विभूति॥ ४१॥

इति डकार संपूर्ण। आगै ढकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ढकाराक्षर कर्त्तारं, ज्ञान रूपं जगद्गुरुं।
लोकालोक प्रज्ञातारं, देवं देवाधिपं विभुं॥ १॥

— अरिल छंद —

ढ कहिये श्रुति मांहि मूढ़ का नांम है,
ते नर मूढ अयांन भजैं नहि रांम है।
ढ कहिये ध्वनि नाम ध्वनि जु तेरी सही,
तेरी धुनि सुनि पाप नास ह्वै सकल ही॥ २॥

ढरै भव्य की वोर अभव्यनि परि नही,
ढव तेरौ ही साच और ढव झूठ ही।
ढलक्यो नहि इह चित्त रावरी भगति मैं,
तातैं रूलियौ देव अनंती अगति मैं॥३॥

ढकै दोष जो कोय पराये धर्मधी,
सो पावै तुव भक्ति, त्यागि सहु भर्मधी।
ढाल जगत की तू हि दया कौ पूंज है,
परम पुनीत क्रिपाल गुनैंनि कौ कुंज है॥४॥

ढाक पत्र सम चंद सूर तो देखतां,
रंक सबै नर देव नाथ तो पेखतां।
ढाढिस बांधि मुनिंद, पंथ तेरो गहैं,
ढाढिसीक विनु देव दासभाव न लहैं॥५॥

ढांण चूक ए जीव भक्ति ढांण न लहैं,
तू हि बतावै ढांण तोहि मुनि जन चहैं।
ढाहे तैं प्रभु कोट अविद्या के सबै,
भाजि गये सब कर्म भर्म भै करि तवै॥६॥

ढाहैगौ प्रभु तूहि हमारे बंधनां,
तेरै सपरस नांहि नही रस गंध नां।
ढाहा तोड वहै जु नदी आसातणीं,
तु ही उतारै पार और कोई न धणीं॥७॥

ढाह्यो ढहै न मोह तो विना नाथजी,
ढांप्यो ढपै न तू हि महा गुणसाथ जी।
ढार्यो ढरै जु नांहि, आप ही तू ढरै,
भव थिति आवै नीड आपनौं जव करै॥८॥

ढिग ही रहै जु नाथ मूढ जांनैं नही,
ढीले आतम काज करन कौं सठ सही।

ढींचाढींच मचाय भूलि भौ मैं परे,
तोहि न ध्यांवैं नाथ पाप कर्मनि भरे॥ ९॥

— सवैया – ३१ —

ढीम सम गनैं लच्छि ढीव की न करै पच्छि,
नारी कौं अलीन सम जांनि त्यागै जब ही।
ढुकै मुनि मारग मैं ढुकै महाव्रत्तनि मैं,
ढुकिवौ स्वभावनि मैं लहै मोख तव ही।
ढुकनि न होय जाकी विषै के प्रचार मांहि,
ढुकि ढुकि चारित मैं छंडै पाप सब ही।
ढुलि ढुलि साधुनि मैं, ढुलिवौ न मिथ्या मांहि,
तवै जगफंद छुटै और नांहि ढव ही॥ १०॥

अथ जीव संबोधन —

ढूकडौ जु आवै काल सवै तजि जगजाल
प्रणव पुनीत मांहि द्रिष्टि धरि बावरे।
ढूंढै कहा माया कौं जु ढूंढि एक चेतन कौं,
चेतन मैं लीन होऊ त्यागि सव चाव रे।
ढूकै तू विषै जु मांहि यामैं कछू सिद्धि नांहि
ढूंढ्यो नांहि, पावै कहूं आप ही मैं दाव रे।
ढूंढ्यो तू सवै जु लोक पायो नांहि सुख थोक,
अवै जगदीस भजि समझि उपाव रे॥ ११॥

ढूंढि ढूंढि विषै कौं जु पाए तैं अनंत खेद,
अव निज लीन होऊ वहै मति डावरे।
ढूंढिवौ उपाय तोकौं सिद्ध लोक जायवे कौ
शुद्ध रूप तू ही सब तजि उरझावरे।
ढूकडी लवधिकाल, पाय प्रभू जी कौं ध्याय
समकित रूप होय निज रस लावरे।

ढेठि तजि जीव की सुढेठौं तू अनादि ही कौ,
ढेठि विनु त्यागें भया पावै नांहि भाव रे॥१२॥

ढेढ घर सम देह भर्यो दुरगंध सौं जु
हाड मांस चांम रोम कुथिति कौ पुंज है।
उदधि के जलसौं पखालैं तऊ शुद्ध नांहि,
असुचि कौ सागर जो पापनि कौ कुंज है।
ब्रह्म होय ढेढ सौं मिलाप राखै कौंन बात
छुयें पाप लागै जाकौं दोषनि कौ भुंज है।
तू तौ सठ ब्रह्म भया ढेढनि सौं हित राखै
इहै नांहि ब्रह्मता सुमारै कहा गुंज है॥१३॥

— सोरठा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ढै इह अष्टम मात्रा, सब मात्रा मैं देव।
जो ताकौं ध्याय सुपात्र, तातैं भव भरमण मिटै॥१४॥

— सवैया – ३१ —

ढोर होय रह्यो कहा नैंक तौ विचार करि
ढोलि मिथ्या मद कौं जु बावरौ तुझै कियो।
ज्ञान को वजाय ढ़ोल निज पर बल तोलि
भगति मति लहि गाढौ करि कैं हियौ।
करमनि कौ वंस खोय निज रस अंस जोय,
बांधि सब रागदिक कष्ट वन ही दियो।
ढोकि ढोकि प्रभु जी कौं ढोरी लाव जिन ही सौं
ढोक दै जु वारंवार बांछै जो प्रभू लियो॥१५॥

ढोकि परमेशुर कौं ढोरी लाव साधुनि सौं,
ढोरी लाव दांन सील जप तप व्रत सौं।
ढोलै जिन दया रस भरि ज्ञान सीसे मांहि
ढोरता जु छांडि सव रूखौ है अब्रत सौं।

ढोल खोसि मोह कौ जु पकरि मरोरि
वांधि निज रस छाकि, भया पूठि दै अकृत सौं।
ढोकै मति मिथ्या देव मिथ्या गुर की न सेव
धरि जति [illegible] चूकै [illegible] विनु सौं॥१६॥
ढोटा नांहि काहू कौ जु तू जु है अनादि सिद्ध,
सांई ही की जाति तू जु और नांहि भाव है।
सांई कौं जु भूल्या ढोर वांधे नांहि इंद्री चोर,
हूवा तेरा भोर भया चूका तूहि दाव है।
अवै सांई यादि करि सांई ही का ध्यान धरि
सांई ही वतावै तोहि छूटि का उपाव है।
ढोटा नांहि काहू कौ हू ढोटा सव वाही के जु
वाकौं छांडि वावरे, करैगौ कहा चाव है॥१७॥
ढोहे तैं अनंत ढंग ढंग तेरौ वंध्यो नांहि
अव सव त्यागि भया लेहु जिन सरनौं।
ढौरी मांहि आय जाहु ढौरी तजि लोकनि की,
तवै ढौल पावै तू जु और नांहि करनौं।
ढौरी लै जु साधुनि की, ढीठि सव परी मेलि
झूठी ढेठि करै कहा आखरी तौ मरनौं।
ढंग तौ विगरि गयो ढंढ सौ जु होय रह्यो
जगत मैं राचि भया करै कहा भरनौं॥१८॥
ढंपै मति औगुन कौं गुरु कै निकट जाय
सवै निज दोष भासि आलोचन करि रे।
ढंपि पर दोषनि कौं पर दोष जिन भासै
गुन ग्राही होहु भया कथनी तू हरि रे।
कथनी करै तौ एक हरि ही की करि सदा
हरि ही कौं जपि अर हरि ही सौं अरि रे।
एक जिन नांम विनु आंन जिन भासै भया
मौंनी होय अंदर मैं जिन हीं कौं धरि रे॥१९॥

ढंग तू पकरि भया ढंढ मति होय रहै
ढींचा ढींची तजि कैं विमोह ही सौं लरि रे।
सबै तू उपाधि तजि, एक प्रभु ही कौं भजि,
मुनि मतमांहि रजि प्रभु पाय परि रे।
ढंढता विनसि जाय ढंग तेरौ वंधि जाय,
पावै मोख द्वार भवसागर कौं तिरि रे।
देह तौ तजी अनंत दोय कौ न कीयौ अंत
अब ऐसी करि पंच देहनि सौं मरि रे॥ २०॥

— दोहा —

ढः कहिये मात्रांतिकी, तू सब मात्रा मांहि।
तेरी सी मात्रा प्रभु, तीन लोक मैं नांहि॥ २१॥

अथ ग्यारा मात्रा एक सवैया हैं ।

— सवैया – ३१ —

ढरै नांहि ढार्यो कभी ढिग ही रहै सदीव
ढील नांहि जाकै कभी पारकर देव हैं।
ढुकै मुनि मारग मैं तबै नाथ आवै हाथ
ढूंढ्यो नांहि पाइए जु तारकै अछेव है।
ढेठि नांहि जाकै कोऊ ढेठि हरै ढेठिनि की
ढै प्रकास ढोक ताहि नाथ अति भेव है।
ढौरी लावै साधुनि कौं ढंढ नांहि पावै जाहि,
ढः प्रभास शुद्ध भास गुण तैं अभेव है॥ २२॥

— दोहा —

हरै ढंढता नादि की, पूरण तेरी ज्योति।
सो विभूति धन संपदा, संपति दौलति होति॥ २३॥

इति श्री ढकार संपूर्ण। आगै णकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

णकाराक्षर धातारं, ज्ञानिनं परमोदयं।
सानंदं परमानंदं, वंदे सर्वेश्वरं गुरुं॥१॥

— सोरठा —

ण कहिये श्रुति मांहि, ज्ञान नांव परगट प्रभू।
तो विनु ज्ञान सु नांहि, ज्ञान मांहि तू ही गुरू॥२॥

थुति कौ नांम प्रसिद्ध, कहैं णकार सुपंडिता।
थुति तेरी गुण वृद्ध, करैं देव नरपति मुनी॥३॥

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— गाथा छंद —

णमो णमो प्रभु तोकौं, णय परमाण णिखेप हु ण पावैं।
रागादिक रिपु मोकौं, दुख दे तो ध्याइ यां जांवै॥४॥

रटैं णमोकारा जे णांवैं, तोकौं स्व सीस मतिवांना।
अति गुण गण भारा जे निरविघ्न ना हौंहि भगवांना॥५॥

णाण सरूवा तू ही, णाणी णादा सुणागरा राया।
णाणा गुण जु समूही, णाणा रूवा जु सुखदाया॥६॥

णागिंदा जु सुरिंदा, चंदा सूरा जपैं हि सब तोकौं।
ध्यांवैं तोहि मुनिंदा, भवसागर तारि प्रभु मोकौं॥७॥

णाव तिहारौ नामा, खेवट तू ही अनंत तैं तारे।
हम हूं तारि सुरामा, रागद्वेषादिकां टारै॥८॥

— दोहा —

णिय भावें जो रमि रहइ, अन्य विभाव मुएइ।
सो पावइ णिय धम्मद्धिइ, सयल विभाव चएइ॥९॥

णिच्चाणिच्च सरूव मुणि, सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध।
णियमादि सु उरधारि जिय, जपि जग गुर अणिरुद्ध॥१०॥

णियडउ आवइ मरण जिय, णियणाहें लवलाव।
छंडिवि सयल वियार तुह, उरधरि भवदधि णाव॥११॥

णीय जु धारि अणीड़ मुय, णीच संग सहु हेय।
णींबें वोयें अंब फल मूढ मई किम लेय॥१२॥

णुति करि णति करि नाथ कौं, णूतण सो न पुरांण।
णेय सयल जा णांण मैं, णेयणाह सो जाण॥१३॥

णेमिणाह णमिणाह जो, णेदा मोखुह मग्ग।
णेय रूव अति रूव जो, मुणिवर जा महि लग्ग॥१४॥

णेयण जम्हि ण णेय मैं, सो सहु भासक तौहु।
ताहि भजहु परपंज तजि, चाहहु शिवपुर जौहु॥१५॥

णैक रूव सो देव मुणि, णैक रूव मुणि णेय।
णिय णिय भाव ण छंदई, णिय सरूव हुइ ध्येय॥१६॥

णोजीवस्स सहाव जिय, दव्व विभाव विकम्म।
णोकम्म जु परभाव मुणि, अप्पा चेयण धम्म॥१७॥

णोइंदिय णोमण हवइ, णोवण वि णोगंध।
णोरस फरस वि सद्द जिय, अप्पा मुणि जु अबंध॥१८॥

णोव मणि रुव व मणा ण तण, अप्पा सुद्ध विकुद्ध।
णौका भवदधि की सही, चेयण स्वच्छ प्रबुद्ध॥१९॥

णंदउ विरधउ गुर वयण, णंदउ जगगुर देव।
णंदउ सयलवि संघचउ, णंदउ भत्ति अछेव॥२०॥

णः द्वादसमी मात्रिका, तू सव मात्रा मांहि।
सव अक्षर मय देव तू, सर्वातम सक नांहि॥२१॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

णमो णमो देव तोहि, णाण रूव करे मोहि,
णिय मणि रूवक तू णीय कौ णिवास है।
णुति णति तेरी जेहि, करैं धन्य धन्य तेहि,
णूतण पुरातण तू णेय कौ विभास है।

णैक रूव एक रूव णोकमा ण कोइ होइ,
आनंद कौ सागर उजागर विलास है।
णौका सम तारक तू पंदौ जगदीस धीस,
णः पयास सव्व अंक भासक सुपास है॥ २२॥

— दोहा —

णमियामर णियरा धुरू, गुरू तिहारि भूति।
सत्ता शक्ति रमा शिवा, सो दौलति विभूति॥ २३॥

इति णकार समात्तं। आगैं तकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

तत्त्वं तथ्य प्रणेतारं, तारकं ताप हारकं।
त्रिगुणं तीरदं तुष्टं, तूप हर्म्यावली युतं॥ १॥

तेजोरासिं महाशांतं त्रैगुण्यगुणितं विभुं।
तोष रोषादि निर्मुक्तं, संतोषामृत सागरं॥ २॥

तौर्य त्रिकान्वितं धीरं, तंत्र मंत्रादि दूरगं।
तः प्रकासं चिदाकासं, वंदे देवं महोदयं॥ ३॥

— सोरठा —

त कहिये सिद्धांत, मांहि चित्त का नाम है।
तू परमेश्वर शांत, चित्त वाक तनु रहित तू॥ ४॥

त भाष्यो श्रुति मांहि, नांम क्रोध कौ ठीक है।
तेरै क्रोध सुनांहि, मांन न माया लोभ है॥ ५॥

नांव पूंछ कौ ख्यात, त कहिये आगम विषै।
सींग पूंछ विनु तात, भगति रहित नर ढोर हैं॥ ६॥

तमहर तपहर देव, तपधर गुणधर धीर तू।
तपसी धारैं सेव, है अछेव अतिभेव तू॥ ७॥

इहै तमासौ नाथ, जड़ नैं जीव जु बांधिया।
जब छूटैं बडहाथ, तू हि छुडावै करि कृपा॥ ८॥

— त्रोटक छंद —

तन तैं मन तैं अति दूर तुही, तमनासक तूहि प्रकास कही।
तपनीय समांन अमांन सदा, तुव तुल्य न तप्त सुवर्ण कदा॥ ९॥

प्रभु तत्व सुरूप अरूप महा, तप भेद सबै प्रभु तैं हि कदा।
प्रभु तथ्य निरूपक है परमा, तपधारि भजैं धरि कैं धरमा॥ १०॥

तरणो जु तुही अर तारण तू, तप सागर आगर कारण तू।
प्रभु तूहि तटस्थ जु स्वस्थ सदा, तुझकौं नहि छांडहि दास कदा॥ ११॥

तलफौं अति नाथ विना तुझ हूं, दरसन्न जु देहु न और चहुं।
इह सुक्क तडाग समान भवो, गुन सिंधु तुही जगदीस सिवो॥ १२॥

तटिनी तट सीत जु काल महैं, तप काल महैं गिर सीस रहैं।
तरु के तलि चातुरमास महैं, जु रहैं मुनिराय सु तोहि चहैं॥ १३॥

तब ही उधरै भव सागर तैं, इह जीव महा दुख आगर तैं।
जव तू हि कृपा करि हाथ गहै, प्रभु आधि न व्याधि उपाधि रहै॥ १४॥

तकि तू हि रह्यौ सव कौ प्रभु जी, नहि कोइ तकै तुझ कौं विभुजी।
तकिवौ प्रभु तेरहु होय जवै, तजि भ्रांति मनां सुध होय तवै॥ १५॥

तजियो नहि जाय सुवल्लभ तू, भजियो नहि जाय सुदुल्लभ तू।
तजिया सव तैंहि विभाव प्रभू, गहिया गुण रासि सवै हि विभू॥ १६॥

तनु पंचक तैं निरवर्त्त तुही, अविनश्वर ईश्वर धीर सही।
हुय तद्भव मुक्त तुझैं हि भजै, भरमैं भव मैं प्रभु तोहि तजैं॥ १७॥

तरु सौ फल छाय जु दाय तुही, तरु ज्ञान विना तुव ज्ञान सही।
तलि तेरहि लोक सवै जु वसैं, भव भक्तिहि ले तुव मांहि धसैं॥ १८॥

इहु तस्कर मोह जु ज्ञान हरै, तुव दासनि तैं इह चोर डरै।
प्रभु मोह हरै तुहि ज्ञान सु दे, नहि ज्ञान थकी भव भ्रांति कदे॥ १९॥

तुव दास क्रिया अर ज्ञान मई, अति ही सुदयाल सुबुद्धि भई।
तरकारि हरी नहि दास भखैं, सव त्यागि सवाद जु धर्म रखैं॥ २०॥

— दोहा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तलवर ज्ञान विराग से, दंडे तस्कर मोह।
तू राजा अति न्याय धर, काहू सौं नहि द्रोह॥ २१॥

त्रय गुण धारक देव तू, भेद त्रयोदस रूप।
चारित भासै धीर तू, मुनितारक मुनिभूप॥ २२॥

त्रयवीसा विषया सवै, भव सागर के मूल।
सेया त्रयतीसा उदधि नरक भोग दुख थूल॥ २३॥

तू हि प्रकासै नाथ जी, तेरे दास दयाल।
समदिट्ठी त्रय चालिसा, प्रकृति न वांधै लाल॥ २४॥

त्रय पंचास जु भाव है, क्रिया तरेपन होय।
तू सब भासै लाल जी, शुद्ध स्वभाव जु कोय॥ २५॥

पुरष तरेसठि उत्तमा, तू भासै जगदीस।
तीर्थंकर चक्री हली, हरि प्रतिहरि अवनीस॥ २६॥

कला बहत्तरि जगत की, इनतैं परैं जु कोय।
सुकला अनुभव की प्रभू, त्रय सत्तरमी होय॥ २७॥

त्रय अस्सी लख पूरवा, रिषभ रहे घर मांहि।
पाछैं मुनि ब्रत धारि कैं, सिद्ध भये सक नांहि॥ २८॥

त्रय निवै प्रक्रती सवै, नाम कर्म की होय।
तैरैं प्रक्रति एक नां, प्रक्रति रहित तू सोय॥ २९॥

त्रय सत वरषी होय कैं, नेमि भये मुनिराय।
त्रय दस गुन वरषा गयें, पास वीर जतिराय॥ ३०॥

त्रय सत छतीसा प्रभू, मतिज्ञान के भेद।
त्रय सत त्रेसठि मूढ धी, पाखंडी अति खेद॥ ३१॥

त्रय सत तीयालीस है, राजू लोक अनादि।
घणाकार भासै तू ही, तो बिनु सरव जु वादि॥ ३२॥

त्रय दिन थिति अगनी सही, त्रय सहश्र है अब्द।
पवनकाय उतकिष्ट थिति, तू भासै पतिशब्द॥ ३३॥

त्राता तारक तात तू, त्यागी भोगी देव।
ताप हरन तारन तुही, दै क्रिपाल निज सेव॥ ३४॥

तांरनतां तिन तांननहि, गावै अदभुत राग।
आतम रूप अनूप कौ, तू गायक बडभाग॥ ३५॥

ताब तिहारी मोह जड, सहि न सक्यो बलवांन।
लुक्यो भाजि भव वन बिषै, महा दुष्ट छलवांन॥ ३६॥

तामस राजस सात्विका, तैंरै एक न कोय।
तू आनंद स्वरूप है, ज्ञान [illegible] होय॥ ३७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ताडन मारन कोइ कौं, तेरै मत मैं नांहि।
तैं ताडे रागादिका, दोष नांहि तो पांहि॥ ३८॥

ताल मजीरा झांझि अर, झालरि आदि अनेक।
वाजे वाजैं रावरै, तू है रावर एक॥ ३९॥

तांणैं सिवपुर कौं मुनी, ते तेरौ पथ लेय।
पंथ दिखावा एक तू, तो विनु सर्व जु हेय॥ ४०॥

ताव आदि रोगा सवै, हरै तिहारौ नाम।
रागादिक रोगा हरै, तू सुवैद गुण धांम॥ ४१॥

त्रास न मांनैं काल की, निरभय तेरे दास।
कालहरन दूखहरन तू, जगजीवन जगभास॥ ४२॥

तात तिहारै ढील नहि, सीघ्र उतारै पार।
परमेश्वर परवीन तू, प्रभु है त्रिभुवन सार॥ ४३॥

ताल तमाल न उपवना, सर वापी नहि कूप।
सरिता सिंधु न ग्राम गिर, तुव पुर अदभूत रूप॥ ४४॥

— छंद वेसरी —

त्रिदसाधिपपति, तू त्रिपुरारी, त्रिज्ञ त्रिज्ञान त्रिनेत्र विहारी।
तिग्मकरो जु कहावै भांना, तेरौ भजन करै भगवांना॥ ४५॥

त्रिविध हरै त्रिविधातम तू ही, तू त्रिकाल दरसी जु प्रभू ही।
त्रिपथ विहारी सर्व विहारी, त्रिधा वुद्ध सनमारग धारी॥ ४६॥

त्रिगुण रूप त्रिभुवन कौ स्वांमी, दरसन ज्ञान चरन अभिरांमी।
त्रिभुवन वल्लभ त्रिजग गुरू तू, त्रिदसाधिक्ष दुपक्ष धुरू तू॥ ४७॥

त्र्यक्ष त्रिलोक सिखामणि देवा, त्रिप्त त्रिदोष रहित विनु छेवा।
नाथ त्रिभंगी भासक तू ही, नाम त्रिभंगी लाल प्रभू ही॥ ४८॥

त्रिश्नहरण त्रिसल्य वितीता, त्रियारहित जगजीत अतीता।
त्रिण तुल्या भवभोग विभावा, दास न चांहैं कण मन लावा॥ ४९॥

कण रूपा तुव भक्ति गुसांई, तू त्रितापहारी है सांई।
तिष्टै तू हि सदा सव पासा, विरला जांनहि तत्व विलासा॥ ५०॥

मो हति मंगल भव जल मांही, तो विनु पार हौंहि जन नांही।
तीरथ तूहि जु भव जल तीरा, तीरथकर जगदीसुर धीरा॥ ५१॥

तीन लोक कौ नायक तू ही, तीरथ तेरी वांनि समूही।
दासा तीरथ जगत उधारैं, भगति भाव हिरदां मैं धारैं॥ ५२॥

तीर ज्ञांनमय तीखा लागैं, मोहादिक सव कर्म जु भागैं।
तुच्छ वुद्धि जीवनि की स्वामी, परे मोह के वसि अविरांमी॥ ५३॥

तुररा पघरी वागा पटका, पटकि मुनी प्रभु तोमैं अटका।
तुमकौं सेय हेय सहु त्यागा, तुम्हरी भक्ति मांहि भवि लागा॥ ५४॥

तुरहि आदि असंखि जु वाजा, तेरै वाजै तू जगराजा।
तुच्छ मती मैं तू नहि सेया, तुच्छ गती धारी वहुभेया॥ ५५॥

तुलना तेरी और न कोई, तू अतुल्य अविनासी सोई।
ज्ञान तुला मैं सर्व जु तोले, तो विनु जन भव भव मैं डोलै॥ ५६॥

तुज कहिये प्रभु सुत कौ नामा, पुत्र कलत्र संग धन धामा।
इनमैं राचे भौंदू भाई, तेरी भक्ति न उर मैं लाई॥५७॥
तुरत उधारै तू भव सिंधू, हमहि उधारि जगत के वंधू।
तुस सम देह जु कण सम जीवा, तू हि वतावै त्रिभुवन पीवा॥५८॥
तुल सम तुनका सम जगवासी, उडे फिरैं अति ही दुखरासी।
भ्रांति वायु मैं परे विमूढा, ऊंच नींच धारी गति रूढ़ा॥५९॥

— छंद मोती दाम —

तुषार समांन जु है जड भाव, जु भांन समांन तु ही जग राव।
तुचा करि वेढि उहै इह देह, जु अस्थिनि कौ प्रभु पंजर एह॥६०॥
परयौ तन मांहि इहै सठ जीव, तु ही जगतारइ तू जगपीव।
तुणंतुण तार वजैं जगराज, महा जु विराग वडे महराज॥६१॥
तुही जु तुही जु तुही जु तुही जु, वही जु वही जु वही जु वही जु।
कही जु कही गुर नैं हि सही जु, सुदासनिनैं उर मांहि गही जु॥६२॥
वजैं अति तूर सु तू अतिपूर, सु हौं लघु तूल समान जु कूर।
उडयो जु फिरौं भ्रम वाय मझार, तु ही थिर दे पद तारन हार॥६३॥
भजें प्रभु तोहि सु तूटहि फंद, न तूठइ रूठइ तू सिवकंद।
कहै प्रभु तू हि समूह जु नांम, सवै जु समूह धरैं तु हि रांम॥६४॥

— सोरठा —

तूडा सम जगभूति, कण रहिता पसु ही चहैं।
भक्ति समान विभूति, भई न है हैहै कवै॥६५॥

तूश्री मौन जु नांम, मौन धारि मुनिवर भजैं।
तेरौ पंथ जु रांम, पावैं तेई ज्ञानमय॥६६॥

तेरे मत विनु लाल, वारावाट जु जग भयो।
तेजोरासि विसाल, तेजपुंज गुनकुंज तू॥६७॥

तेरौ सौ नहि तेज, सूर चंद हुतभुग धरैं।
तो ढिगि सुर सग रेज, रतन रतन धर तेज विन॥६८॥

तेड्यो आवै नांहि, रहै सदा सव पास ही।
जामैं सर्व समाहि, तेगादिक जाकै नही॥६९॥

तेजरादि सव रोग, नांम लियें दरिहि नसैं।
तैं त्यागे जग भोग, जोग रूप जोगी तु ही॥७०॥

जैसैं तिल मैं तेल, तैसैं घट मैं जीव इह।
पर परणति कौ मेल, याकै तो विनु नां मिटै॥७१॥

तेह रह्यो नहि नाथ, मो मैं कछु वाकी नहीं।
देहु आपनौं साथ, जाकरि है अति पुष्टता॥७२॥

तैरै राग न रोष मोहादिक तैरैं नहीं।
तैरै बंध न मोख, शुद्ध बुद्ध चैतन्य तू॥७३॥

तैलादिक सव लेप, त्यागै अवधूता मुनी।
तू है देव अलेप, तोहि भजैं मुनिवर महा॥७४॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

तु त्रैकालि दर्सी सु त्रैलोकि ईशा, तु त्रैगुण्य रूपा अनूपा मुनीसा।
तु त्रैलोकि लोकी विलोकै, सव ही समैसार तू ही सवै तो फवै ही॥७५॥

तु त्रैलोकिनाथा चिदानंद तू ही, महादेव देवा गुरू है प्रभु ही।
नही तैजसा कारमाणा न तैरै, तु उपाधी न व्याधी न आधी न नैरै॥७६॥

नहीं तोल जाका नहीं मोल जाका, भजै तोहि जोई नहीं नास ताका।
नही तोष रोषा तु ही वीतरागा, सुसंतोष रूपा मुनि पाय लागा॥७७॥

नही तोड जोडा नही कोई तोरा, नही तो परैं एक तू ही सजोरा।
तु तोटा हरै देव दे भूति मोटी, सुमोटौ तु ही रीति नांहि जु छोटी॥७८॥

नही तौर तेरा लहैं कोइ दूजा, त्रिकातौर्य होवै करै देव पूजा।
सुगीतं सुनृत्यं सुवादित्र वाजा, जु तौर्य त्रिका ए कहांवैं सुसाजा॥७९॥

गलै तौख राल्यौ महामोह नैं जी, जु मिथ्यात रूपो सुदृष्टि हनैं जी।
तुही जो छुडावै महा वंदि सेती, कही जाय नांही लही व्याधि जेती ॥ ८० ॥

सुतंत्रो तुही तंत्र कृत्तंत्र धारी, जु तंत्राधिपो तू हि तंत्री अपारी।
सुतुंगा उतंगा तु ही है असंगा, नही तंत्र मंत्रा नही कोइ रंगा ॥ ८१ ॥
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
करैं तांडवा वासवा धारि सेवा, तुही देवदेवा प्रभू है अछेवा।
तु ही है स्वतः सिद्ध स्वांमी सवौं का, सुरौं का नरौं का सही है मुन्यौं का ॥ ८२ ॥

— दोहा —

तः प्रकास अतिभास तू, सव मात्रा मैं नाथ।
सर्वाक्षरमय धीर तू, गुण अनंत तुव साथ ॥ ८३ ॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं ।

तप कौ प्रकासक तू, तम कौ हरनहार,
ताप सहु मेटै तात, त्रिश्ना कौ न नांम है।
तीर भव सागर की, वैठौ अति उज्जल तू,
तुष कौ न लेस तैंरै, कांम कौ न कांम है।
तूर वाजैं जू अनंत, तेज कौ निवास कंत,
तैजस औ कारमाण नाहि तैंरै धाम है।
तो सौ तू न दूसरौ जू, तौर तेरौ तोहि मांहि,
तंत मंत आप ही स्वतःप्रकास राम है ॥ ८४ ॥

तेरी नाथ जु अस्थिता, तत्व तरंग स्वरूप।
सो गौरी धन संपती, दौलति ऋद्धि निरूप ॥ ८५ ॥

इति तकार संपूर्ण। आगैं थकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

थकाराक्षर धातारं, सर्व मात्रा मयं विभुं।
वंदे देवेंद्र वृंदार्च्यं, लोकालोक प्रकासकं ॥ १ ॥

— दोहा —

थ कहिये सिद्धांत मैं, भय रक्षण कौ नांम।
तू रक्षक है भय थकी, निरभै आतमरांम ॥ २ ॥

थकारांक आगम बिषै, उच्चसिलोचय नांम।
सिद्ध सिला सम और नहि, अदभुत अतिगति धांम ॥ ३ ॥

थकित ह्वै रहैं सुरपती, थल तेरौ अवलोकि।
थल दै जलतैं काढि कैं, राख्यो कर्मनि रोकि ॥ ४ ॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

थकै कर्म तो ढिग प्रभू, लुकै जु भव वन मांहि।
थलचर जलचर नभचरा, तू पालै सक नांहि ॥ ५ ॥

थक्यो बहुत हूं नाथजी, भटकि भटकि भव मांहि।
थकै चित्त तो मैं प्रभू, सो करि लै निज पांहि ॥ ६ ॥

थरकि रहैं मुनि तो विषै, थल रूपी तू देव।
थल वांधै प्रभु धर्म कौ, थलदायक तुव सेव ॥ ७ ॥

थल मैं जल मैं नभ महैं, तु ही सहाय न और।
ऋद्धि करन संकट हरन, तू त्रिभुवन कौ मोर ॥ ८ ॥

थट्ट तिहारै पासि है, गुन अनंत परजाय।
सदा अकेले तुम प्रभू, एक रूप समुदाय ॥ ९ ॥

चित्त वृत्ति अति थरहरी, जीव घात तैं नाथ।
जिनकी तेई पावही, देव तिहारौ साथ ॥ १० ॥

थण वहुती मातांनि के, चूंषे वहुती वार।
अव भव सागर तारि तू, तरण जु तारण हार ॥ ११ ॥

थाघ न आवै भव तनी, पारावार अपार।
थाह लहैं तेईन प्रभु, दास हौंहि अविकार ॥ १२ ॥

थाह न तेरी पांवई, सुर नर खेचर नाग।
मुनि गणधर हू नां लहैं, जे अनंत वडभाग॥ १३॥

थाह न केवल विनु कहू, तू केवल्य स्वरूप।
दै केवल निजभाव प्रभु, शुद्ध बुद्ध चिद्रूप॥ १४॥

थांन मांन धन धांन प्रभु, तैरै एक न होय।
सव दाता सव रूप तू, निज स्वरूप निज सोय॥ १५॥

सव थांननि मैं तू सही, रहै जु एकैं थांन।
सर्वग व्यापक स्वस्थ तू, निश्चल श्री भगवांन॥ १६॥

थाती तैरै पासि है, और दरिद्री सर्व।
तू ही रमापति जगपती, हरै जगत कौ गर्व॥ १७॥

थार कटोरा त्यागि सहु, लें करपात्र अहार।
ते मुनि तेरौ ध्यान करि, पांवै भवजल पार॥ १८॥

थांघ तिहारी विनु प्रभु, थाघ जगत कौं नांहि।
दास करौ जगदीस जी, राखऊ अपुनैं पांहि॥ १९॥

— सवैया - ३१ —

थाप औ उथाप एक तेरी ही जु लोक मांहि,
तेरी थापी रीति कौ, उथापक न कोई है।
थाट कौ धणी जु नाथ पाट धार है अनाथ,
थाह न लहत कोऊ तू जु एक दोय है।
थाक्यो अति हों जु देव, थाक टारि दै स्व सेव,
थालि घालि देहु थांन तो विनां न होय है।
थांणे मोह कर्म के उठावै तूहि और कौंन,
ध्यांवैं मुनि धारि मौंन तारक तू सोई है॥ २०॥

थिर रूप थिर देव, थिरचर नायक तू,
थिरचर जीवनि कौ पालक गुरू तु ही।

थिर थांन थिर धाम, थिर ज्योति थिर नाम,
तू ही थिर रांम अभिरांम एक है वही।
थिर थिरता कौ मूल, थिरता अपार देय,
थिरीभूत भाव एक तू ही जो धरै सही।
थिति सव कर्मनि की तैं ही जो प्रकासी देव,
सवै थिति हरी, तैं ही भव थिति तैं दही॥२१॥

— सोरठा —

थीजै छीजै नांहि, पघरै तू न कदापि ही।
अति गुन तेरै मांहि, थुति जु करैं सुरनर मुनी॥२२॥

थुति करिवे सक्त नांहि, इंद्र मुनिंद्र गनिंद्र हू।
वुद्धि न मेरै पांहि, कैसैं मो से थुति करैं॥२३॥

तोकौं नाथ विसारि, पर धन पर दारा गहैं।
ते इह जनम मझारि, थुक थुक ह्वै नरकां परैं॥२४॥

थूल महा तू देव, थूणी लोकालोक की।
करहि महा मुनि सेव, तू अछेव अतिभेव है॥२५॥

अैसौ थूल जु तूहि, जामैं सर्व समांवहीं।
गुनी गुनाढ्य समूहि, दूहि न तेरै कोइ सौं॥२६॥

सूक्षम अैसौ नाथ, अणु देखैं तेहु न लखैं।
मुनि जन हूं कैं हाथ, नहि आवै सो है तु ही॥२७॥

जीवनि के जु असंखि, जनम लखैं मन की लखैं।
ध्यांनी मुनि निहकंखि, अैसे हू तोहि न लखैं॥२८॥

थूणी पर की नांहि, दावैं जो तुव सूत्र सुनि।
ते दासनि कै मांहि, आय महाभव जल तिरैं॥२९॥

थूणी पर की जेहि, दावैं पापी दुष्ट धी।
जांवें नरकि जु तेहि, भगति लहैं नहि रावरी॥३०॥

— सवैया - ३१ —

थेई थेई तत्त करि नांचैं इंद चंद तेरै,
ताल लय नाद करि तोही कौं जु गांवही।
नारद हू कंधै धरि वीन अति सुंदर जो,
अति ही उछाह करि तो ही कौं जु ध्यांवही।
शची आदि देवी सहु तोही कौं अलापैं नाथ,
अहमिंद औ जतिंद तो ही कौं जु भांवहीं।
चक्री अधचक्री हलि मनु मुनि संकर जु,
सुर नर नाग खग तोकौं सिर नांवहीं॥ ३१॥
थेथी वात करैं ते न पांवैं तोकौं काहू काल,
तेरै कोऊ थेथी वात हेरैं हू न पाइए।
तोहि लहैं, पंडित विवेकी परवीन नर,
थेथी बुद्धि त्यागि एक तोही कौं जु ध्याइए।
मार्गदर्शक: आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
थै सुमात्र अष्टमी प्रकासै तूहि और कौंन
थोक धार तू ही एक तोहि सिर नाइए।
थोक हैं अनंत गुन भाव परजाय तेरै,
थोकनि कौ नायक तू हि उर लाइए॥ ३२॥
थोथी भूति त्यागि औ उपाधि सव त्यागि नाथ,
त्यागि सहु साथ मुनि ध्यांवैं तोहि देव जी।
थोक तोमैं माय रहे जीव ओ अजीव सव
भव्यनि कौ तारक तू देहु निज सेव जी।
थोथी बात कियें तू न आवै कभी हाथ नाथ,
धारि तुव धार नाहि पांवैं तुव भेव जी।
थोरी औ वहुत तेरी साधु ही पिछांनैं वात
और नांहि जानैं तात, तेरौ है न छेव जी॥ ३३॥

— सोरठा —

थोरी बहुत कछून, मैं मूढै भगति जु करी।
थोरी सम अति नून, सो तन पोख्यो अघमई॥ ३४॥

थोरीकु लहू तोहि, भजैं कदापि निपाप है।
सव मैं तोहि जु टोहि, करूणा धरि सुभगति वरैं॥ ३५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

थौ तू ही जिननाथ, अमित काल पहली प्रभू।
है रहसी जगनाथ, नित्य निरंतर देव तू॥ ३६॥

— सवैया - ३१ —

थंभ एक लोक तीन कौ तु ही अनंतनाथ,
थंभे तैं अनंत भाव थंभे तू उपाधि तैं।
तैं ही थंभे दुष्ट धिष्ट कर्म मोह आदि देव,
तू ही एक टारै ईस सवै आधि व्याधि तैं।
तू ही एक थांघ और थांघ नाहि दीसै कोऊ,
तु ही थिर थापै तात तारै जु असाधि तैं।
जल थल मांहि एक तेरौई अधार धीर,
और कोइ थंभे नांहि भव असमाधि तैं॥ ३७॥

— सोरठा —

थथा पासि दु सुन्य, वारम मात्रा बुध कहैं।
तू देवा अति पून्य, अतिमात्रो सव मात्र मैं॥ ३८॥

अथ द्वादश मात्रा कवित्त एक मैं।

— सवैया - ३१ —

थल रूप देव तू हि, थाघ तेरी लहै तू हि,
थिरता अपार नाथ, थीजै न पघर ही।
थुति तेरी करैं देव, थूणी लोक की सु सेव,
थेई थेई तत्त करि नांचैं सुर नर ही।
थैं प्रकास है अनास, थोक कौ धनी सुपास,
थोथी वात नांहि कोऊ, गुन थोक धर ही।
थौं तुही रहै तुही हि, है तुही हि थंभ लोक,
थः प्रभास ज्ञान रास पाप नास कर ही॥ ३९॥

— दोहा —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

थोथी जग की भूति इह, सो न विभूति कदापि।
तेरी सत्ता शक्ति जो, सो दौलत्ति उदापि॥४०॥

इति थकार संपूर्ण। आगैं दकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

दयामयं सुदातारं, दिनाधीशेश्वरं विभु।
दीनवंधुं जगद्वंधुं, दुष्ट कर्म निवारकं॥१॥

दूषकं पाप भावानां, देह गेहादि वर्जितं।
द्वैताद्वैत विनिर्मुक्तं, दोष मोहादि दूरगं॥२॥

दौर्जन्य रहितं शुद्धं, वुद्धं दंड निवारकं।
दः प्रकाशं चिदाकासं, वंदे देवं सदोदयं॥३॥

— सोरठा —

दह्यौ न मोपैं कांम, दले न मैं कोपादि जे।
तूहि उधारै रांम, सम्यकभाव लखाय कैं॥४॥

दर्भ समांन कठोर, तीखे रागादिक महा।
अति दलबल छल जोर, मोहि भर्माया जगत मैं॥५॥

दल मेरे ज्ञानादि, दले डारि तनु जंत्र मैं।
दुख दीयो प्रभु वादि, इनकौं मैं न विगारियो॥६॥

दझ्यो लोभ की लाय, शांत भाव पायो नहीं।
धरी अनंती काय, राय अबै निज बोध दै॥७॥

द्रव्य प्रकाशक देव, सव द्रव्यनि मैं तू सिरै।
दै दयाल निज सेव, दया करौ प्रभु दीन परि॥८॥

द्रव्य स्व गुण परजाय, भेद अभेद विभासई।
तू त्रिभुवन कौ राय, पाय परैं तैरैं मुनि॥९॥

द्रव्य क्षेत्र अर काल भाव, भावभवा सव भासई।
तू अतिभाव क्रिपाल, लाल ललांम जु लोक कौ॥ १०॥

— छंद त्रिभंगी —

दमधर जु मुनीशा, शमधर ईशा, यम नियमीसा, तोहि भजैं।
दरसन गुन धारा, ज्ञान प्रचारा, चरन अचारा, मोह तजैं।
तू है सुदयाकर, अति हि दयापर, शुद्ध सुधातर, लोकपती।
दम इंद्रियरोधा, कहइ प्रबोधा, तू अनिरोधा, शुद्ध जती॥ ११॥

है दत्त दयाभर, दक्ष क्रिपाकर, दृढकर दृढतर, ज्ञानमई।
है दरसन जोग्या, अमर अरोग्या, हरइ अजोग्या, शुद्ध दई।
तू ही जु दया निधि, धारइ अतिरिधि, करइ महासिद्धि, ज्ञानदसा।
दशलक्षण धारा, मुनि मतवारा भजहि अपारा, चरनवसा॥ १२॥

— सोरठा —

दवीयान अतिदूर, दृढीयान अति निकट तू।
घट घट मैं भरपूर, दरसन दरसिक दृश्य तू॥ १३॥

दसा भली ह्वै नाथ, साथ तवै तेरौ गहै।
तू पकरै जव हाथ, तव कैसी चिंता रहै॥ १४॥

दसा जाति मैं हीन, सोऊ तुव भजि उच्च है।
जे तोसौं नहि लीन, ते कुलीन हू नष्टकुल॥ १५॥

दक्षन उत्तर और, पूर्व पश्चिम चउ दिसा।
चउ विदिसा कौ मौर, अध ऊरध कौ मूरधा॥ १६॥

दषिणा देय अनंत, ददा सवौं का एक तू।
अतुल दरव कौ कंत, दगादार पांवैं नही॥ १७॥

दगडा लूटैं जेहि, दगा दगी हिरदै धरैं।
परैं नरक मैं तेहि, तोहि न पांवैं पाप धी॥ १८॥

दत्तव तेरौ सौ न, तीन लोक मैं और कै।
सठपन मेरौ सौ न, तोहि ध्याय रोर न हर्यो॥ १९॥

दव नहि काहू की हि, दव मेटै त्रिश्नामई।
गम्य न साधू की हि, हम से कैसैं बरनवैं॥ २०॥

दव्यौ करमतैं जीव, उरलौ तू हि करै प्रभू।
तीन लोक कौ पीव, दरै न काहू तौं कवै॥ २१॥

दडक दडका नांहि, तेरे दासनि कौं विभू।
जीते नांही जांहि, अनुचर तेरे मोह पैं॥ २२॥

दल फल फूल जु कंद, तेरे दास न आदरैं।
तू त्रिभुवन कौ चंद, दयापाल परवीन तू॥ २३॥

दहे करम भव रूप, गहे अनंता गुन प्रभू।
दबे तोहि तैं भूप, दोष अनंता दुख मई॥ २४॥

दही मही वसु जांम, आगै लेवौ विधि नहीं।
नही दास कै कांम, दही मही भेला द्विदल॥ २५॥

— सार्दूल विक्रीडित छंद —

दाता दांन जु धर्म भेद सवही, भासै तु ही भासको।
दासा तोहि भजैं सुचित्त करि कै, तू दायको वास को।
दारिद्रा न रहैं कदापि निकटा, जाकै जु तोकौं भजै।
देवा दानव मानवा मुनिगना, भव्या न तोकौं तजै॥ २६॥

पीरैं नांहि सुदानवा अतिवला, दांसानिकौं क्वापिही।
तैरैं द्वादसभाव को इक वही, नांही तु ही आप ही।
दासी दास उदास होय तजि जे, तोकौं भजैं नाथ जी।
दांता शांत करे कृतांत न तजैं, तेरौ प्रभू साथ जी॥ २७॥

दातारा नहि कोइ, दात्रि इक तू, देवै महा संपदा।
दांना अन्न जु आदि पाप दलना, टारैं सवै आपदा।
दातृी पात्र सुदांन भेद सुविधी, भासै तुही ओर को।
दाता भुक्ति विमुक्ति देय इक तू, हारी महारोर को॥ २८॥

— चौपई —

दाग लग्यो मोकौं प्रभू एह, मलिन महा धारी इह देह।
दाह ऊपनौ अति परचंढ, त्रिश्ना कौ हूवो न विहंड॥ २९॥

दाह निवारै करइ प्रशांत, तू ही एक परम अतिकांत।
द्वारौ तेरै सौ नहि और, द्वारै तेरै दीसै दौर॥ ३०॥

द्वारै तेरै संपति खरी, द्वारै तेरै नौ निधि परी।
द्वारौ सेवैं सुरनरपती, फणपति खगपति अर जतिपती॥ ३१॥

दाव्यो करमनि दाड्यो अती, करौं पुकार सुनौं जगपती।
दाझ्यो हौं मायानल मांहि, दावानल माया सम नांहि॥ ३२॥

दाता दै संतोष जु धनां, जा करि तोसौं लागै मनां।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
दांनी ग्यांनी तू भगवंत, दारा पुत्र न तेरै संत॥ ३३॥

दाढ काल की तैं मुहि काढि, द्राक हमारी भ्रांति जु वाढि।
द्राक सीघ्र कौ कहिये नांम, द्राक उधारि देहु निज धांम॥ ३४॥

दिगवासा जु दिगंबरदेव, द्रिगाधीस द्रिगपाल अछेव।
दिसादसौं कौ एक हि नाथ, दिन दिन अधिक तेज अति साथ॥ ३५॥

दिन दूलह कमला पति जती, लोकपती जीत्यो रतिपती।
द्रिजपति कहिये मुनिवरधीर मुनिवंदि स्वामी वरवीर॥ ३६॥

द्रिज पंछी द्रिज है मुनिराय, द्रिज विप्रादि त्रिकुल अधिकाय।
द्रिज तारक तू द्रिप हु सुधार, द्रिविधा हरन भवोदधि पार॥ ३७॥

द्रिरुक तन हि तु नवल सुजांन, छिन छिन तेरौ ध्यांन प्रवांन।
द्रिणुकादिक मिलि है जड खंध, जड़ खंधनि तैं तू हि अबंध॥ ३८॥

दिव्य रूप दिव्य ध्वनि खिरै, तेरे मुखतैं अमृत झरै।
तोहि दिनेस महेस सुरेस, सेस मुनेस जपैंहि असेस॥ ३९॥

द्रिपपति कौ पति तेरौ दास, द्रिप हस्ती कौ नांम प्रकास।
द्रिरद कहैं द्रिपहू बुद्ध कहैं, तेरी चाल न हस्ती लहैं॥ ४०॥

कहै चंद कौं वुध द्विजराज, तू द्विजराजनि कौ पतिराज।
रुलत रुलत हूं दिक अतिभयौ, महाभाग तैं तोकौं नयो॥ ४१॥

अव सव दिकता मेटि दयाल, देहु आपुनौं दरसन लाल।
तु द्रिष्टा द्रिष्टांत सवै हि, तोहि फवै सव पाप दवैं हि॥ ४२॥

दीरघ दरसी दीरघ दमी, दीपतिवंत तु ही अतिक्षमी।
दीप्ततपा ध्यांवैं मुनिराय, दीरघ सोच न तेरैं राय॥ ४३॥

— सालिनी छंद —

दीना नाथा, दीन बंधू जु तू ही, दीक्षादीक्षा, दीप है तू प्रभू ही।
दीपा संख्या, वीत हैं नाथ तेरैं, दीना तोकौं, पाय दैवत्व प्रेरै॥ ४४॥

दीनागदी, त्यागि सेवैं मुनीसा, तू निर्ग्रंथी, देव है लोकसीसा।
दीनैं तैं ही, ज्ञान आदी अनंता, भीने तोमैं, त्यागि भूती जु संता॥ ४५॥

दीजे दांना, लीजिये रांम नांमा, तू ही रांमो, सर्व व्यापी सुधामा।
दीसै तू ही, योग निद्रा मझारे, ध्यांवैं तोकौं, साधवा जोगधारे॥ ४६॥

दुष्टा कर्मा, दुख्य दाई सवौं का, टारै तू ही, नाथ है तू मुन्यौं का।
तोकौं ध्यांयें, दुर्गति नांहि पांवैं, तोकौं गांयें, दुर्मति नांहि भांवैं॥ ४७॥

दुख्या सुख्या, नांहि तेरैं जु कोई, आनंदी तू, ज्ञान रूपी जु होई।
सौजन्यो तू, दुर्जना नांहि पांवैं, योगारूढा, तोहि योगी हि ध्यांवैं॥ ४८॥

— दोहा —

द्रुघण वज्र कौ नांम है, वज्री तेरे दास।
दुराघर्ष अति कठिन तू, दुष्ट न पांवैं पास॥ ४९॥

द्युति धारी दुति रूप तू, द्युतिकर दुर्ग अछेव।
दुरति हरन दुरगति हरन, दै दयाल निज सेव॥ ५०॥

दुरयो नही दुरि है नहीं, दुरै न कवहू देव।
वुद्धि दुष्टता की हरै, सिष्ट प्रतिष्टित एव॥ ५१॥

द्युम्नि नांम है सुर्ण कौ, तू सुवर्ण अति शुद्ध।
कनक कामिनी त्यागि कैं, सेव करैं प्रतिबुद्ध॥५२॥

दुग्ध कहा उज्जल प्रभु, तू उज्जल जगदीस।
नीरस भोजन लेय कैं, भजैं तोहि जोगीस॥५३॥

दुराराध्य नहि तू प्रभू, आराधैं मुनिराय।
दूठ करम तैं दंडिया, तोसौ दूठ न राय॥५४॥

दूरि नही अति दूर तू, अदभुत गति अवनीस।
दूनौं दूनौं तेज अति, तेज पूंज जगदीस॥५५॥

द्यूत मांस मदिरा प्रभू, वेस्या अर आखेट।
चोरी नारी पार की, ए तैरे मत मेट॥५६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दूषक पापनि कौ तु ही, पापी लहैं न भेद।
दूजि नही दासांनि सौं, एकी भाव अभेद॥५७॥

दूजौ जग परपंच तैं, दूहौ भवि तैं नांहि।
दूजौ देव न तो विनां, तू देवा सब मांहि॥५८॥

देवल तेरौ ही सही, प्रतिमा तेरी पूजि।
जे देवल ढोकैं नहीं, जिनकैं तोतैं दूजि॥५९॥

देस कोस धन धाम सहु, त्यागि भजैं भवि तोहि।
तू देसाधिपती प्रभू, देस असंखित होहि॥६०॥

देनहार तोसौं नहीं, देहु देहु निजवास।
देव देव नरदेव तू, देह न गेह न वास॥६१॥

देह देहुरौ देव है, चेतन अतुल प्रभाव।
ताहि लखैं तुव भक्ति तैं, ज्ञानी ज्ञान स्वभाव॥६२॥

नाथ तिहारी देसना, जे धारैं उर मांहि।
देस ज्ञानमय ते लहैं, यामैं संसै नांहि॥६३॥

देहो दरसन करि कृपा, और न चाहैं तात।
देखैं तेरौ रूप अति, या सम और न बात॥६४॥

— सवैया - ३१ —

देस त्यागि कोस त्यागि, रोस त्यागि दोस त्यागि,
तोहि मैं रहौं जु लागि, तेरौई जु होय जी।
छांडौं माया मोह सब, छांडौं कांस लोभ सब,
शुद्ध रूप देखूं तेरौ ध्यांन मांहि जोय जी।
देह तैं जु नेह छांडि, कुटम सनेह छांडि,
तोही तैं सनेह करि छांडौ दोष दोय जी।
शुभऔ अशुभ नाथ त्यागि तेरौ गहौं साथ,
तोही कौ आराधौं देव तू है एक कोय जी॥ ६५॥

— सोरठा —

द्वैताद्वैत न कोय, तू अवाच्य द्वै रूप है।
दैव अतुल गति होय, दैत्य देव सव ही भजैं॥ ६६॥

नहीं दैन्यता नाथ, पीरैं जाकौं कवहू भी।
जाकौ पकरै हाथ, तू वडहाथ अनाथ जी॥ ६७॥

द्वै नहि तोमैं दोष, द्वै अधिका दस तप कहै।
देहि मुन्यों को मोख, कहै परीसह वीस द्वै॥ ६८॥

द्वै अधिका प्रभु तीस, लक्षण धर वड भाग नर।
तोहि भजैं जगदीस, तू ईसुर धीसुर प्रभू॥ ६९॥

द्वै अधिका चालीस, नांम कर्म की प्रकति हैं।
तो मैं एक न ईस, प्रकति परैं परवीन तू॥ ७०॥

द्वै अधिका पच्चास, देवल तेरे नाथजी।
नंदीसुर जु विभास, दीप आठमौं धारई॥ ७१॥

द्वै अधिका प्रभु साठि, मारगणा भासै तु ही।
तू है आगम पाठि, अपठ पाठ अवनीस तू॥ ७२॥

— दोहा —

द्वै अधिका सत्तरि प्रभु, कला जगत की होय।
तेरे पावे कौ जतन, ज्ञान कला है सोय॥ ७३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दोष हरन दुख हरन तू, दोषा हर जगदीस।
दोषा नांम जु रात्रि कौ, भ्रांतिमई निसि ईस॥ ७४॥

दोषाकर है चंद कौ, नांम संसकृत मांहि।
चंद सूर अर सूरि सहु, तोहि भजैं सक नांहि॥ ७५॥

द्योति अनंत धरै तु ही, अति सोभा कौ पुंज।
द्योढि करै तोसौं कवन, तू है आनंद कुंज॥ ७६॥

द्योढ दिवस की साहिवी, जगवासिनि की नाथ।
तेरी अचल जु साहिवी, तू समरथ वड हाथ॥ ७७॥

कियो दोहरौ अति प्रभु, कर्म मिले अति जोर।
दिये जु दोटा भव विषै, तू दुख हरि हर रोर॥ ७८॥

दोव समांन गन्यो मुझैं, खोद्यो खुरपा होय।
कर्मनि अव किरपा करौ, हरै कष्ट प्रभु सोय॥ ७९॥

दौर्जन्यादिक अवगुणा, धारै पापी मोह।
तुम सज्जन अैसी करौ, करै नही इह द्रोह॥ ८०॥

दौर्गत्यादिक टारि तू, निहचल गति दै नाथ।
दौर अनंत धरै तु ही, दौलति तैरै साथ॥ ८१॥

दंभ रहित अति सरल तू, दंभी लहै न तोहि।
द्वंद रहित निरद्वंद तू, निरवांनी गुर होहि॥ ८२॥

दुंदभि वाजा रावरै, वाजैं दीनदयाल।
मोह डरै पातिग डरै, हरषैं भव्य रसाल॥ ८३॥

दंपति नांम जु दोय कौ, तू एको द्वय रूप।
दंगलवासी मुनिवरा, ध्यावैं तोहि अनूप॥ ८४॥

दंग नगर कौ नांम है, तू नागर रसरूप।
नगर तिहारौ सर्व कै, माथै है जगभूप॥८५॥

दंती हस्ती कौं कहैं, हस्तीपति कौ नाथ।
तोहि भजै जगनाथ जी, तू अनंत अति साथ॥८६॥

दं कहिये जु कलत्र कौं, तेरै नारी नांहि।
तू निज परणति सौं रमैं, रमा तिहारै मांहि॥८७॥

दं कहिये प्रभु छेद कौं, छेदन भेदन नांहि।
तेरै भाव दयाल है, हिंसा नाम न पांहि॥८८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दं कहिये फुनि दांन कौं, तू दांनी जगदीस।
भुक्ति मुक्ति की मात जो, भक्ति देहु अवनीस॥८९॥

दद्दा पासि दु शून्य है, अंतिम मात्रा जोय।
तू सब मात्रा मांहि है, चिनमात्रो प्रभु सोय॥९०॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया – ३१ —

दया कौ निधांन है सुदांनपति दाता एक,
दिन दिन तेरौ जस देखिये नवो नवो।
दीनानाथ दीनबंधु दुष्टनितैं दूर देव,
देस ब्रत महाब्रत भासै तू हरै भवो।
दैव एक तू ही सब दोष कौ हरन हार,
दौर अति तेरौ, दौरजन्य बिनु तु शिवो।
दंभतैं रहित और रहित मोह तैं विशुद्ध,
दः प्रकास है अनास देहु आपनी लवो॥९१॥

— दोहा —

दया रूप गुन शक्ति जो, भवा भवांनी भूति।
सो संपति लछमी रमा, है दौलत्ति विभूति॥९२॥

इति दकार संपूर्ण। आगैं धकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

धर्माधीशं धराधीशं, धातारं धिषणाधिपं।
शुद्धं बुद्धं सदा शांत, धीरं वीरं धुरंधरं॥१॥

विधुतारि ध्वजाधीशं, धूम्रमार्गादि दूरगं।
ध्येयं मुनिगणैर्धीरं, धैवंतादि प्रकासकं॥२॥

सर्वाक्षरमयं देवं, धोमात्राविभासकं।
धौतरागं विनिर्मोहं, ध्वंसकं पुण्य पापयो॥३॥

धः प्रकाशं चिदाकाशं, शुद्धाकाशं प्रभाधरं।
वंदे नाथं रमाधीशं, कर्म मर्म निवर्हणं॥४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— मालिनी छंद —

धरम करम भासै धर्म कौ मूल तू ही,
धरम अतुल तोमैं, आत्म भावा समूही।
धरम करण रूपा, धर्म है जीव रक्षा,
असति बचन त्यागा, नाथ तेरी जु पक्षा॥५॥

धन प्रभु पर कौ जी, चोरियां नर्कि जांवैं,
अर परवनिताजी सेययां कष्ट पांवैं।
भल नहि धन लोभा, तू हि संतोष गावै,
ज्ञान विनु नहि धर्मा, धर्म दासा जु भावै॥६॥

धनपति पति तोकौं, कंठ शुद्धो जु गावै,
धनपति नहि तो सौ, तू धनी धर्म भावै।
धन निज अनुभूती, और नांही विभूति,
अविचल धन तोपैं, नांहि धारैं प्रसूती॥७॥

धरणिधर अनादी, तैं धरे शुद्ध भावा,
धनि धनि प्रभु तू ही, है धरानाथ रावा।
अति गति धनपाला, तू हि है धर्म चक्री,
धनद विसद तू ही, तोहि सेवैं जु चक्री॥८॥

— दोहा —

धर्मनाथ धन त्याग को, धनदाता धरमज्ञ।
अति धनाढ्य तू धवल है, धरमाधिक्ष सुविज्ञ॥९॥

धनुष ज्ञानमय रावरै, ब्रत्तबांन अघहार।
धनुरद्धर वरवीर तू, कर्म हरन अविकार॥१०॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
धक धक अगनि स्वरूप तू, कर्मेधन क्षयकार।
तू हि धनुंजय नाथ है, पवन जीत वलधार॥११॥

— चौपई —

धन्वंतरि है वैद्य जु नांम, कर्म रोग हर तू अभिरांम।
अति रोगी हौं दुरवल महा, धज नांहि जु विभावनि गहा॥१२॥

धस्यौ मोह घट घर मैं चोर, धप्यो न पापी करत जु भोर।
लीनौं सरवसु पिंड न तजैं, या पकस्यो जिय तोहि न भजै॥१३॥

धजा धार तू त्रिभुवन राव, तेरै द्वार निपख्यो न्याव।
मोह हरौ द्यावो गुन माल, मोह जीत तुम लोक विसाल॥१४॥

धडक काल की कछु हु न रहै, जव जिय चरन सरन तुव गहै।
धाता ध्याता ध्यांनी तू हि, ध्यान गम्य है तू हि प्रभूहि॥१५॥

धारण रूप धेय तू देव, ध्यांवैं सुरनर मुनि अतिभेव।
धातु न गात न कर्म न कोय, तू चैतन्य धातु है सोय॥१६॥

धांम न गांम न ठांम ना जोय, धारावाही सर्वग होय।
धा कहिये लक्ष्मी कौ नांम, श्रीधर श्रीवर तू अभिरांम॥१७॥

धारक गुन पुंजनि कौ तू हि, षटकारक मय अमित समूहि।
धारासम इह भवजल धार, याते वेगि उतारौ पार॥१८॥

धावत धावत भव वन मांहि, खेद खिन्न हूवो सक नांहि।
निज पुर कौ दरसावो पंथ, धारहु वात देव निरग्रंथ॥१९॥

तो विनु धांवैं अति गति मांहि, तोहि ध्याय तेरे पर जांहि।
धिषणाधर तू अति वुधिवांन, धिषणा कहिये वुद्धि प्रवांन॥ २०॥

सब भासै धिषणा दे सही, धिष्ट कर्म टारै प्रभु तु ही।
तोहि विसारि करैं जड साथ, धिग धिग तिनकौ जीतव नाथ॥ २१॥

धीर तोहि ध्यांवैं वरवीर, तो सौ धीर न हरइ जु पीर।
धरि पपीलिका मारग जीव, धीरां धीरां पांवैं पीव॥ २२॥

मुनिवर पंथ विहंगम धारि, तुरत हि पांवैं तत्त्व निहारि।
धीत अधीत तुही जगजीत, धीजें तोहि जु शुद्ध अतीत॥ २३॥

धीमां धीमां गमन करंत, भूमि निरखि जे पाय धरंत।
ते मुनि सीघ्र सिद्ध पुर गहैं, तेरे मत करि तो मैं रहैं॥ २४॥

धीठ करम दंडे तैं देव, धीधन धीर धरैं तुव सेव।
धीज पतीज मोह की करैं, ते सठ परकति कै वसि परै॥ २५॥

धी कहिये जु वुद्धि कौ नांम, वुद्धि हु तोहि न पावै रांम।
वुद्धि परैं तू ज्ञप्ति स्वरूप, है चिद्रूप सदा सद्रुप॥ २६॥

जे हि धीर धी धारैं सेव, पांवैं चेतन रूप अभेव।
धीरजवंत तु ही भगवंत, धीरज धारि भजैं प्रभु संत॥ २७॥

धीस अधीस जु धीसुर तू हि, धुर धर्मनि की एक प्रभू हि।
तू हि धुरंधर है धुजवंध, धुतकर्मा तू धरइ न वंध॥ २८॥

ध्रूव तू ही अध्रुव संसार, तो विनु कौंन उतारै पार।
ध्रुव उतपाद व्ययात्रय भेद, त्रिक रूपो तू एक अभेद॥ २९॥

धू कहिये श्रुति मांहि विख्यात, अंग कंप कौ नांम जु तात।
तू अकंप प्रभु हे जु अपंक, धूजैं तोतैं कर्म जु वंक॥ ३०॥

फुनि धू भाख्यौ धौत जु नांम, उज्जल तू हि सुनिश्चल रांम।
धू कहिये जु चित्त कौ नांम, रिधू तू हि मन तै पर रांम॥ ३१॥

धू एकाक्षर माला विषै, नांव भार कौ परगट लिखै।
तू हलकौ नहि भारौ नाथ, अगुरलघू अति गुणगण साथ॥ ३२॥

धूरि समांन जगत की भूति, चिद्रूपा तेरी हि विभूति।
धूरि धूसरे मुनिवर धीर, ध्यांवैं तोहि हरैं भव पीर॥ ३३॥

धूत न पांवें भूत जु नाथ, महाभूत ध्यांवैं गुन साथ।
तेरी भक्ति गहै, तजि भर्म, सिर धूणैं तव सर्व जु कर्म॥ ३४॥

धूप न छांह न सीत न धांम, वरखा नहि तेरैं पुरि गांम।
अमृत वरसैं मृत्यु जु हरैं, तू ही मेघ महा सुख करैं॥ ३५॥

धूमकेतु सम कर्म प्रजार, धूम न तोमैं तू अतिसार।
ध्येय रूप तू धेठि वितीत, धेठि हरै धेठिनि की जीत॥ ३६॥

धेनु काम अर कलप जु वृक्ष, चिंतामणि तुव नांम प्रतक्ष।
धेनुपुत्र सम मूरिख लोक, तोहि न ध्यांवैं तू गुन थोक॥ ३७॥

धैवंतादिक सप्त जु सुरा, तू हि विकासैं नायक धुरा।
धोटा काहू कौ तू नही, धोक धोक तोकौं प्रभु सही॥ ३८॥

धोरी तू इक और न कोय, धोरी लावैं मुनिवर होय।
धोवैं तुव भजि पाप जु मैल, तेरे दास लगे तुव गैल॥ ३९॥

धोखा नहि यामैं कछु देव, हरै भ्रमण तेरी निज सेव।
धोती नेती आदि जु क्रिया, तू अक्रिय तेरैं नहि त्रिया॥ ४०॥

धौत वस्त्र धोती जे धारि, पूजैं तोहि ग्रहस्थ अचारि।
ते पांवैं अनुभव कौ पंथ, तू अनुभव दायक निरग्रंथ॥ ४१॥

धौ कहिये वंधन को नांम, तेरैं वंध न तू गुन धांम।
धौत मला मुनि ध्यांवैं तोहि, करुणा करि तारौ प्रभु मोहि॥ ४२॥

धौंल लगाय मोह नैं जोर, खोसि लिये गुन इहु अति चोर।
मेरे गुन द्यावो जगदीस, मोह निवारौ लोक अधीस॥ ४३॥

ध्वांत हरौ अज्ञान जु हरौ, ध्वंस सकल पापनि कौ करौ।
जीव ध्वंसकर पापी जीव, तोहि भजैं नहि दुष्ट अतीव॥ ४४॥

धंधा त्यागि भजैं मुनिराय, धंधा मैं हिंसा अधिकाय।
धः कहिये वंधन कौ नांम, तोमैं वंध नही विश्रांम॥ ४५॥

धः कहिये धन धांन जु नांम, तू सव दायक गुण गण धांम।
धांन चांन मिष्टांन जु आदि, हिंसा कारन वनिज अनादि॥ ४६॥

दास तजैं करुणा उर भजैं, करुणा विनु सठ पाप न तजैं।
पाप तजैं विनु भक्ति न होइ, भक्ति विना प्रभु मिलै न सोय॥ ४७॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं ।

— सवैया – ३१ —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

धरम कौ नायक है दायक है ध्यान कौ जु,
धाता धिषणाधिप तू, धीर वीर धुर कौ।
धूत नांहि पांवै जांहि ध्येय रूप है महा हि,
धेठि हरै धेठिनि की, गुरु है सुगुर कौ।
सेवैं जू सवै जु सुर धैवंत प्रमुख सुर,
करि कै अलाप चार, गावै पति सुर कौ।
धोरी तू हि धौत मल धंध भाव नांहि छल,
धः प्रकास है अनास, नासक भौंज्वर कौ॥ ४८॥

— दोहा —

धर्म स्वभाव जु वस्तु कौ, धर्मी तू निजरूप।
तेरी जो धरमज्ञता, चेतन भाव स्वरूप॥ ४९॥

सो लछिमी गौरी रमा, धा राधा निज भूति।
स्यामा गोपी संकरी, सो दौलत्ति विभूति॥ ५०॥

इति धकार संपूर्ण। आगै नकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

नत्वा नाभिभवं धीरं, ऋषभं ऋषि पूजितं।
नित्यं निरंजनं शांतं, नीति मार्ग प्रकाशकं॥ १॥

नुतं शक्रादिभिर्देवै, नूंनं निर्वाण नायकं।
नेतारं मोक्षमार्गस्य, नैक रूपं महामुनिं॥ २॥

नोकर्म रहितं शुद्धं, नौका तुल्यं भवांबुधौ।
नंदितं नः प्रियं देवं, वंदे देविंद्र वंदितं ॥३॥

— दोहा —

नमो नमो वा देव कौं, चिदघन आनंद रूप।
परम पुनित परमातमा, परमेश्वर जग भूप ॥४॥

नकारांक है ज्ञान कौ, नांम जु ग्रंथनि मांहि।
ज्ञान रूप ज्ञानी तुही, तो सम और जु नांहि ॥५॥

कहैं नकार निषेद कौं, पाप निषेदै तू हि।
विधि निषेद दोऊ कथन, भासै जगत प्रभू हि ॥६॥

नय उपनय भासै तु ही, अनय निवारक देव।
नवधा भक्ति प्रकाशिकौं, कौं सुख तुम सेव ॥७॥

नव तत्त्वनि कौ कथक तू, नव दस जीव समास।
भासै तू हि जु वीस नव, रतन त्रय प्ररकास ॥८॥

नव अधिका प्रभु तीस हैं, ऊरध लोक निवास।
दास न चाहैं नाथजी, चाहैं तेरौ पास ॥९॥

नव अधिका प्रभु चालीस, नरक पाथडा होय।
परैं नरक मैं दुष्ट धी, भगति न धारैं सोय ॥१०॥

नव अधिका पच्चास नर, पदवी त्रेसठि होय।
हुंडा तैं चउ नर घटे, पद घटियो नहि कोय ॥११॥

नव अधिका सठि सौ परैं, वडे पुरुष परवीन।
त्रेसठि इनमैं आयया, जिन मारग लवलीन ॥१२॥

नव अधिका सत्तरि प्रभू, ताके दूनें नाथ।
है इक सौ अट्ठावना, प्रकृति न तेरै साथ ॥१३॥

नव अधिका अस्सी प्रभू, कहैं निवासी लोक।
तू हि निवासी मोक्ष कौ, तो मैं सर्व जु थोक ॥१४॥

नवांत नाम निवै सही, निव सागर कोडि।
वीते सुमति पछैं सही, प्रगटे पदम वहोरि॥ १५॥

नव नवती सौ लाख प्रभु, कोटि कुलां कौ पाल।
जीव दयामय देव तू, हिंसादिक अघटाल॥ १६॥

नव सै विंजन नाथजी, लक्षण सौ परि आठ।
तीर्थंकर धारैं सदा, जारैं करम जु काट॥ १७॥

नमोकार जपि तोहि जी, जे ध्यावैं मन लाय।
ते नर तेरौ पंथ गहि, आवैं तुव पुरि राय॥ १८॥

— चौपई —

नवल रूप तू अतुलित वृद्ध, नगन दिगंवर धर्म प्रवृद्ध।
नग तो सम नहि जग मैं और, नग दायक त्रिभुवन कौ मौर॥ १९॥

नग परवत तू निश्चल देव, नग तरवर तू सुरतरू एव
फल छाया मंडित जगदीस, नग रतन जु तू रतन अधीस॥ २०॥

नट सम जीव नच्यो वहु रूप, तेरी भगति विना जग भूप।
वह्यो नदी आसा मैं नाथ, भव नद मैं डूब्यो जु अनाथ॥ २१॥

नभ सम शून्य हिदै सठ जीव, तोहि न ध्यावै तू जग पीव।
नभ प्रमांण तू अति विसतार, चेतनता कौ पुंज अपार॥ २२॥

नत कहिये जो नम्रीभूत, तोहि नवैं मुनिवर अवधूत।
तू न नवीन पुरातन नाथ, नमसकार तोकौ जगनाथ॥ २३॥

नय नय अपुनैं पुर मैं विभू, नहि नहि मैंरै और जु प्रभू।
नलिन समान अलिप्त जु तूहि, नरकांतक है तूहि प्रभूहि॥ २४॥

नगर अनश्वर दायक देव, नश्वर तू नहि दै निज सेव।
नर नायक नागर तू नाथ, नास हरन अति गुन गन साथ॥ २५॥

नागपती गांवै गुन ग्राम, नाकपती नांवैं सिर रांम।
नाना दुखहर आनंदरास, नाटक भासक शुद्ध विलास॥ २६॥

नारायण, नारद कौ नाथ, नाव तु ही तारै भव पाथ।
नांव तिहारै जे नर जपैं, तिनके पाप करम सहु खपैं॥ २७॥

नाग काल दासैं नहि डसै, कर्म नाग दासैं लखि नसै।
नाग करम कौं नाहर तुही, नाग काल कौं गरड जु सही॥ २८॥

न्याय शास्त्र कृत स्वांमी तू हि, धर्मशास्त्र भासै जु समूहि।
नाक लोक दायक तू ईस, शिवदायक तू है जगदीस॥ २९॥

नागकुमारादिक सव देव, तेरी सर्व हि धारैं सेव।
नाना रूप एक भगवांन, नाटक चेटक एक न आंन॥ ३०॥

नाटसाल जाकै नहि कोय, जाके सिर परि तू प्रभु होय।
न्याति पांति नाता तजि मुनी, तांता जोरैं तोसौं गुनी॥ ३१॥

नाद वेद कौ भासक तु ही, नाद विंद कौ भेद जु कही।
नासाग्र जु धरि दृष्टि मुनीस, तोहि भजैं तू है अवनीस॥ ३२॥

नास्तिक जाहि न पांवैं मूढ, तू है अस्ति नास्ति अति गुढ।
नाल लगै तेरै जो कोय, ताहि उधारै तू प्रभु सोय॥ ३३॥

नाहर हू तोकौं भजि देव, भये दयाल ज्ञान रस बेव।
निरमांनी निरवांनी नाथ, निरद्वंदी निरमोही साथ॥ ३४॥

निरावाध निकलंक दयाल, निहकल निरमल अति गुन पाल।
निरुकति निरुपम निर्गुण तुही, गुणी गुणातम गुणपति सही॥ ३५॥

निरुपद्रव तू है निरमुक्त, नित्य निरंतर देव विरक्त।
नित्यानित्य कहै सव तूहि, द्वयवादी है तूहि प्रभूहि॥ ३६॥

निर्निमेष निरनिमित अपार, निद्रारहित निजाश्रित तार।
तत्व निलीन निखिल दुखहार, करइ जु निरनय तत्व विचार॥ ३७॥

निमित उपादाना सव कहै, तोकौं ध्याय निराकुल रहै।
निराहार निःक्रिय निरग्रंथ, निराभर्ण देवै निज पंथ॥ ३८॥

हौं निकृष्ट दुष्ट जु पापिष्ट, तोहि विसारि गहे जु अनिष्ट।
तू ही तारै दे निज बोध, तो विनु कौंन करै प्रतिवोध॥ ३९॥

निरलोभी निरवंधी गुरू, निर:कंटिक निरआयुध धुरू।
निरमद निरुतर निरधन धनी, निरजरपति पूजैं तजि मनी॥४०॥

निराधार नि:किंचन देव, निरधारां आधार अछेव।
निरागार निजरूप अभेव, निराकार निरलेप सुदेव॥४१॥

तू निष्टप्त कनक सम काय, तू निरविघन निरामय राय।
निगम प्रकासक निगम स्वरूप, निरदोषी अति धर्म निरूप॥४२॥

निश्शेषामल शील निधांन, निधि अनंत धारै भगवांन।
निरविकार निरवैर निराग, निसप्रेही निश्चय बडभाग॥४३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

निरविकलप निरहिंसक निस्व, निस्तुष निरभय नायक विश्व।
निरारंभ निहसल्य निकंप, तू हि निरंजन भजहि निलिंप॥४४॥

कहैं निलिंप देव कौ नांम, तू देवनि कौ देव सुरांम।
निसि दिनि ध्यांवैं तोहि मुनिंद, निरखैं वदन तिहारौ इंद॥४५॥

निश्चय अर व्यवहार प्रकास, निरनायक निरमायक भास।
निरमायल निंदैं श्रुति मांहि, निवल तणौं भीडी सक नांहि॥४६॥

निखिल उपाधि रहित निज रूप, निहपरमाद निरासय भूप।
शुद्ध वुद्ध चिद्रूप अरूप, नभनिभ निरमल सर्वग भूप॥४७॥

निभ कहिये जु तुल्य कौ नांम, तेरी तुल्य न कोई रांम।
माया निसिहर तू दिनकरो, जपैं निसाकर तू तमहरो॥४८॥

काल निसाचर पीरै नांहि, तुव दासनि तैं सव दुख जांहि।
नर्क निगोद कष्ट नहि लहैं, तेरे दास सुवासहि गहैं॥४९॥

नित्य निवास तु ही अनिवास, श्रीनिवास स्वांमी अतिभास।
तेरी प्रतिनिधि दूजौ नहीं, निधि निधांन अनिधन तू सही॥५०॥

— मंदाक्रांता छंद —

नीरा दूरा, अतिगति तू ही, तोहि मूढा न लेवैं,
पावां तेरे, भंवर जु मुनी, नीरजां मांनि सेवैं।

नीरा नांही, तुव सम प्रभू, दाह मेटै जु तू ही,
नीचा तेरी, भगति न लहैं, साधु सेवैं समूही॥५१॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नीको तू ही, निज गुण मई, नीतिवानो प्रभू ही,
नीरागो तू, जगपति जती, नीठि पैए जु तू ही।
नीली भाजी, वरजित कहै, नीलि निंदै जु तू ही,
नीसाना जे, अति गुन मई, तू हि धारै समूही॥५२॥

नीवा वोयें, कर नहि चढै, नाथ आम्रा फलाजी,
नींचा देवा, भजिहि न मिटै, काम क्रोध छलाजी।
अैसी जांने, भवि जन भजैं, तोहि कौं है अनन्या,
नीरा देखैं, निजमहि सदा, तोहि कौं ते हि धन्या॥५३॥

— दोहा —

नीलांबर कहिये हली, हलधर पूजै तोहि।
नीड नांम घर कौ सही, तैरै घर नहि होहि॥५४॥

ईहां कोय प्रश्न जु करै, हलधर अंबर नील।
क्यौं धारैं ते अति चतुर, इहै रंग अवहील॥५५॥

ताको उत्तर है इहै, नीलि रंगे नहि होय।
रतन मई पांवन महा, धारै हलधर सोय॥५६॥

नींद भूख तैरै नही, दूषन भूषन नांहि।
नीलांबर तारक तु ही, गुन अनंत तो पांहि॥५७॥

उच्च जाति हू तोहि तजि, नीच हौंहि दुख रूप।
नीच जाति हू तोहि भजि, उच्च हौंहि सुख रूप॥५८॥

नुति नति इंद्रादि करै, थुतिजु करैं मुनिराय।
नुद नुद उर अंतर तिमर, ज्योति रूप अधिकाय॥५९॥

नुद कहिये दूरि जु करौ, भ्रांति हमारी देव।
अनुपम निरुपम भक्ति दै, करैं निरंतर सेव॥६०॥

मुनि सुरपति अहिपति भज्यां तू ऊंचौ नहि नाथ।
ते ऊंचा हैं तो जप्यां, तू अनंत गुन साथ॥ ६१॥

नूतन नांहि पुरांन तू, नून भाव तोमैंन।
नूनं निश्चय रूप तू, द्रुय वादी दोमैंन॥ ६२॥

निवृत्ति परकृति विधि कहै, राग दोष द्रुय नांहि।
हरै नूनता जीव की, गुन अनंत तो मांहि॥ ६३॥

नूपर सम वाचालता, जौ लगि तो न लहंत।
तोहि लह्यां अनुभव दसा, मौन रूप एकंत॥ ६४॥

— गाथा छंद —

नेता नांम नियंता, कहै नियंता जु प्रेरको जो है।
तू प्रेरक भगवंता, प्रेरै निजभाव निजं मांहै॥ ६५॥

नेदीयांन जु नीरै, तू नीरै दूरि नांहि कवहू भी।
तू काहू हि न पीरै, दूरा तू जीव घातिनि सौं॥ ६६॥

नेज तिहारी बांनी, काढै संसार कूथी।
जीवा नेम धारि जे प्रांनी, तोहि जपैं तेहि जम जीतैं॥ ६७॥

नेमि नांम है धुर कौ, धुर धर्मनि की तु ही हि जग धोरी।
तू ही गुरू सुरनर कौ, नेमि प्रभू नेम कौ मूला॥ ६८॥

नेत्र त्रिलोकी कौ तू, नैको एको तु ही अनेकांतो।
नाथ अलोकी कौ तू, नैंन गिनैं तोहि मुनिराया॥ ६९॥

नैंन तिहारै ज्ञाना, निरखै लोका अलोक निश्शेषा।
नैक स्वभाव प्रधाना, नानाभावा लखै तू ही॥ ७०॥

नोइंद्री नोचित्ता, नोकर्मा नांहि भाव करमा हू।
नोधामा नोवित्ता, अति वित्ता तू हि अति धामा॥ ७१॥

नौ कहिये पूरण कौं, पूरण तू ही तू ही प्रभु नौका।
भव सागर तारण कौं, तो विनु कोई नही दूजा॥ ७२॥

नौपाधिक है तेरा, रूप महा ज्ञान पिंड है तू ही।
मलमय पुदगल मेरा, कैसे तोकौं छुवै स्वांमी॥ ७३॥

नंदन तू नहि काकौ, नंदन वन कौ धनी तु ही स्वामी।
नंदन नांम जु ताकौ, जाहि लखें होय आनंदा॥ ७४॥

नंदौ विरधौ स्वांमी, निंदा थुति दोय तुल्य दास गिनैं।
परनिंदा नहि कांमी, जपहि विरांमी प्रभू तोकौं॥ ७५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— छप्पय —

नः असमाकं देव, देहू तू निज पदभक्ती,
नः असमाकं नाथ, नांहि चहिये भव भुक्ति।
असमाकं कौ अर्थ, हम हि तू तारि जिनेसा,
भ्रमण मेटि जगदीस, तिमर हर तू हि दिनेसा।
भय भव जु भ्रांति हरि जोगिया, हरि जू अंधता नादि की,
दै दिव्य चक्षु जोगीसुर, पर परणति हरि वादि की॥ ७६॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

नमो नमो देव तोहि, नाथ सेव देहु मोहि,
निपट निरंजन तू, नीरजो, अनंतरा।
नुति नुति करै साध नूनता हरै अगाध,
नेह त्यागि देह तैं, रटैं मुनि निरंतरा।
नैक रूप एक रूप, नोविभावभाव तोमैं,
नौपाधिक नौका प्रभू और नां पटंतरा।
भव जल तारक तू, नंदन तिहारे सब,
नः प्ररूप एक रूप बाहिज अभंतरा॥ ७७॥

— दोहा —

तेरी नित्य विभूति जो, मा पदमा अनुभूति।
सत्ता शक्ति शिवा रमा, दौलति संपति भूति॥ ७८॥

इति नकार संपूर्ण।

इति श्री भक्त्याक्षर मालिका वावनी स्तवन अध्यात्म बारखडी नाम ध्येय उपासना तंत्रे सहस्त्रनाम एकाक्षरी नांममालाद्यनेक ग्रंथानुसारेण भगवद्धज्ञानंदाधिकारे आनंदोद्भव दौलतिरामेन अलप वुद्धिना उपायनी कृते टकरादि नकारांत प्ररूपको नांम त्रितीयः परिच्छेद॥ ३॥ आगैं पकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

परमानंद संयुक्तं, पापापेतं महेश्वरं।
प्रियं पिनाकि संसेव्यं, प्रीत्यप्रीति विवर्जितं॥ १॥

पुण्यं पुण्यगुणोपेतं, पूतदेहं प्रभास्वरं।
प्रेक्षणं सर्व लोकस्य, पैशून्यादि निषेधकं॥ २॥

पोत तुल्यं भवांभोधौ, पौरषान्वितमीश्वरं।
पंडितं पंडितैर्वंद्यं, पः प्रकासं नमाम्यहं॥ ३॥

— दोहा —

पकारांक आगम बिषै, पवन तनौं है नांम।
पवनजीति मनजीति मुनि, तोहि भजैं गुन धांम॥ ४॥

पवनागम मैं भेद सहु, मंडल मुद्रा मंत्र।
सुर नाडी तत्वादि के, वीज सहित शिव तंत्र॥ ५॥

रेचक पूरक कुंभका, त्रिविध जु भेद बिचार।
प्राणायाम करैं बुद्धा, मन जीतन कौं सार॥ ६॥

नव द्वारि कौं रोक सुर, काढहि दसम दुवार।
मन वांधैं सुर रोकिकै, योगी योग प्रचार॥ ७॥

मन वसि करि ध्यांवैं तुझैं, आतम रूप बिचार।
लहहीं परम समाधि कौं, योगी स्वरस बिहार॥ ८॥

बहुरि प्रगट रण रंग जो, ताकौ नांम प्रकार।
तू रण ऋण तैं रहित हैं, त्रिभुवन वल्लभ सार॥ ९॥

प्रभव प्रजापति तू प्रभू, परमेसुर परवीन।
प्रणव प्रणेता परम गुर, परम जोति रस लीन॥ १०॥

परम तत्व परमातमा, परम ज्ञान परमज्ञ।
परमेष्टी परतर प्रगट, परम धाम अति विज्ञ॥ ११॥

परम रूप परमारथी, परम पुरिष भगवान।
परम विद्य परतक्ष तू, परम हंस अतिज्ञांन॥ १२॥

प्रज्ञानिधि प्रवुधातमा, प्रथित प्रथीपति नाथ।
परम परापर तू प्रचुर, परमानंद अनाथ॥ १३॥

परमदेव परसिद्ध तू, प्रजापाल दुखटाल।
परम पवित्रातम तु ही, परम प्रताप विशाल॥ १४॥

परिग्रह त्यागि मुनी भजैं, परमव्रह्म कौ रूप।
सो परब्रह्म विसुद्ध तू, आप हि आप स्वरूप॥ १५॥

परम प्रीति दासा करैं, परम प्रतीति जु धारि।
पर देवो निज देव तू, परिणामी अविकारि॥ १६॥

परणति परणामनि थकी, कवहू नांहि विभिन्न।
पक्षपात रहितो प्रभू, पक्षांतर प्रतिपन्न॥ १७॥

प्रथम प्रशम परिमित तुही, प्रणमैं सुरनर पाय।
परम स्वछंद प्रतिष्ठितो, प्रथीयान अतिकाय॥ १८॥

प्रत्यग्र जु कहिये नवल, नित्य नवल तू नाथ।
परम परापति भक्ति तुव, तू तारै भवपाथ॥ १९॥

परमोदय परवांन तू, है प्रक्षीण जु बंध।
तोहि भज्यां निज पुर लहैं, तू ही सिद्धि प्रवंध॥ २०॥

प्रकृति परैं निज प्रकृति तू, परम प्रशस्त दयाल।
नय प्रमाण निक्षेपतैं, परैं तू हि जगभाल॥ २१॥

परम प्रकास्य प्रकासको, अतुल प्रकास विकास।
पद अंबुज सेवैं मुनी, मधुकर भाव विभास॥ २२॥

पगि पगि निधि दासांनि कौं, दास निरीह निकांम।
तेरी पख विनु और पख, राखैं नांहि विरांम॥ २३॥

पगे नही विषयनि विषै, पगे तोहि मैं धीर।
पणधारी तू पार कर, अपठपाठ अतिवीर॥ २४॥

पख पख मास उपास धरि, तप करि मुनिवर धीर।
मन इंद्री अवरोध करि, तोहि भजैं वरवीर॥ २५॥

भजन विना अति तप करै, तौउ न कर्म हनेय।
भजन सहित तप आदरै, भव जल कौं जल देय॥ २६॥

परचा प्रगट जु रावरै, तारै अमित अपार।
पतिराखन दासांनि की, तू जगपति अविकार॥ २७॥

पदवीधर सेवैं तुझैं, लहैं उच्चता सेय।
तू हि पदारथ परम है, तुव भजि तोहि लहेय॥ २८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पवि कहिये प्रभु वज्र कौं, वज्री तेरे दास।
परतखि देव परोक्ष तू, भज्यां कटै जम पास॥ २९॥

प्रतिमा तेरी पूजि है, देवल तेरौ पूजि।
प्रतिमा तैं विपरीत जे, तिनकैं तोतैं दूजि॥ ३०॥

परम पयोनिधि गुननि कौ, प्रमित रहित जगदीस।
पल पल मैं मुनि ध्यांवही, मुनि तारक तू ईस॥ ३१॥

पल भक्षण सम पाप नहि, याते करुणा नास।
करुणा विनु कुगति लहैं, करुणा भगती प्रकाश॥ ३२॥

पष्ट किये सव कर्म तैं, पुष्ट किये सब धर्म।
परम प्रफुल्लित वदन तू, अति प्रसन्न विनु भर्म॥ ३३॥

प्रतिविंवित तोमैं सवै, तुव प्रतिविंव जु पूजि।
दिढ जु प्रतज्ञा धारि कैं, पूजहि दास अदूजि॥ ३४॥

प्रवचनसार जु तूही, समयसार अविकार।
तेरौ प्रवचन सुनि प्रभु, पांवहि भक्ति विचार॥ ३५॥

पट घट रहित जु सुघट तू, घट पटादि परकास।
दिगपट सेवहि तोहि कौं, तू ही निपट विलास॥ ३६॥

पाः कहिये सिद्धांत मैं, पान वस्तु कौ नांम।
अनुभव अमृत पान है, सो तू पावै रांम॥ ३७॥

पाः कहिये फुनि नाथ जी, पावा वालो जोहि।
सो तू ही औरैन को, पावै अमृत सोहि॥ ३८॥

पाता त्राता पालक जु, पाप निवारक देव।
पारस तू कंचन करै, पातिग हरइ अछेव॥ ३९॥

पास अपासि सुपास तू, पात्र जु पात्र वितीत।
पावन पारेतम तु ही, पासि हरन जगजीत॥ ४०॥

पात्र दातृ दांन जु विधी, सकल विभासै तू हि।
मार्गदर्शक कर पात्र ध्यांवैं तुझैं, तू भवि पात्र प्रभू हि॥ ४१॥

पारख तो सम और नां, परखै सरव जु भाव।
पारंकर पाठिक तु ही, प्रांण नांथ भव नाव॥ ४२॥

— छंद वाल —

प्राणनि कौ रक्षक तूहि, ध्यांवैं सव तोहि समूही।
जो पारणामिका भावा, सो निश्चै शुद्ध स्वभावा॥ ४३॥

तो ही तैं जांनहि भव्या, पांवैं नहि जाहि अभव्या।
तू प्राज्ञः प्रज्ञाधारी, पाखंड निवारै भारी॥ ४४॥

पाखंडी तोहि न पांवैं, तेरे मत तोमैं आंवैं।
सुख सत्ता अर चैतन्या, अवबोधादिक जे धन्या॥ ४५॥

निश्चै प्राणा तू धारै, इंद्री सुख दुख्य निवारै।
प्रांणिनि कै प्राणा कहिये, इंद्र्यादिक सो नहि लहिये॥ ४६॥

तेरे हैं शुद्ध स्वभावा, लहिये नहि एक विभावा।
तू प्राग्र्यः प्राग्ररो है, ताकौ इह अर्थ धरो है॥ ४७॥

तू दुःपरवेस रहस्या, पांवैं निजदास अवस्या।
प्रभु पाशुपता पशुपति कौं, सेवहि पारवती पति कौं॥ ४८॥

पारवती अर पशुपति भी, तोकौं ध्यांवैं गणपति भी।
पशुपति धारहि तुव सेवा, पशुधन पांवैं नहि भेवा॥ ४९॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पशुधन दुरगति कौं पांवैं, पशुकरमी तोहि न गांवैं।
पशुकरमी मैथुन कारा, पशुकरम जु मैथुन भारा॥ ५०॥

पशु हू तुव भजि सदगति कौं, पांवहि प्रभु त्यागि कुमति कौं।
पागे मुनि तो महि धीरा, लागे तुव गुन मैं वीरा॥ ५१॥

पांवैं नहि कर्म विपाका, तू धारक शुद्ध रमा का।
पाघ न छौगा कछु वस्त्रा, भूषन एको नहि शस्त्रा॥ ५२॥

अदभूत राजा तू जोगी, नहि जोग एका अति भोगी।
भोगा नहि इंद्री विषया, आनंद भोग श्रुति लिखिया॥ ५३॥

पाछौं नहि कवहू होइ, तू अग्र अग्रणी सोई।
तू पाटधार जगराजा, अदभुत जोगी भव पाजा॥ ५४॥

पारे न परैं कर्मनि के, तुव दासा विनु भर्मनि के।
नहि पाठ पठंतर कोई, तू अदभुत पाठिक होई॥ ५५॥

नहि पात न कंद न फूला, फल हू न भखैं व्रतमूला।
सव मैं लखि आतमरामा, निरवैर रहैं गुन धामा॥ ५६॥

पाथोधि गुननि कौ तू ही, सुर पादप तू हि प्रभू ही।
पादप है वृक्ष जु नामा, पाथोधि समुद्र सुधामा॥ ५७॥

पार्थिव सेवैं तुव पावा, पार्थिव कहिये नर रावा।
है पाक सासनो इंद्रो, तेरौ दासा जु महेंद्रो॥ ५८॥

मुनि पाद मूल तुव सेवैं, तोकौं भजि शिवपुर लेवैं।
मैं महापातकी मूढ़ा, सेये पापी अति रूढ़ा॥ ५९॥

पांवन हैं तोकौं सेयें, हैं पार भक्ति तुव लेयें।
पामर पांवैं नहि भेदा, अध्यातम तू हि अभेदा॥ ६०॥

प्रायश्चित्तादिक गावै, तपभेदभाव अति भावै।
तेरौ सौ पांण न कोई, धारै दूजौ नर होई॥ ६१॥

पायो तेरौ जब मरमा, तब भागे सर्व जु भरमा।
पाल्यो जब सर्व जु धर्मा, टाल्यो जब सर्व अधर्मा॥ ६२॥

— छंद वेसरी —

प्रियः प्रियंकर पिक जित बैंनां, तू पिनाकि पूजित जगनैंनां।
नावं पिनाकी शंभू कैये, पिक कोईल कौ नांम जु लैये॥ ६३॥
पित्त वाय कफ सर्व हि रोगा, नांम लियें नासें दुख भोगा।
पिडच न चाप न तेरैं रोपा, अदभुत धनरद्धर बिन कोपा॥ ६४॥
पिठर समांन देह मैं जीवा, करम अगनि करि तपिउ सदीवा।
तेरी भगति हि तपति निवारै, परम शांतता भाव जु धारै॥ ६५॥
तु पिधानतैं रहित जु देवा, निरावर्ण प्रगट जु अतिभेवा।
पिता पितामह तू हि सवौं का, सुरनर विद्याधर जु मुन्यौं का॥ ६६॥
प्रिया पुत्र परिवार न तेरैं, कमलापति निज परणति नेरैं।
पिवहि जिके तेरी निजवांनी, जित पियूष अमरण पद दांनीं॥ ६७॥
छकहि स्वरस मैं विकलप दूरा, थकहि आपमैं आनंद पूरा।
पिसैं ज्ञांन जंत्रै सब कर्मा, लसैं अनंता आतम धर्मा॥ ६८॥
पिव पिव भव्या निज रस शुद्धा, जाकरि जीव होय अतिबुद्धा।
अैसे बैंन तिहारे स्वांमी, जे पीवैं ते धन्य सुधांमी॥ ६९॥
प्रीति जु अप्रीती नहि दोऊ, वीतराग तू अदभुत होऊ।
प्रीति करैं तोसौं जे जीवा, तिन हि न पीरैं कर्म अतीवा॥ ७०॥
पीक समान जगत की भूती, पीप भर्‍यो इह देह प्रसूती।
इनतैं प्रीति त्यागि जे जीवा, तोहि भजैं ते हैं जग पीवा॥ ७१॥
पीठि देय सब जग सौं नाथा, तोहि जु ध्यांऊं तजि सहु साथा।
कबहु पीठि देंहु नहि तोही, मोहि सुधारि देव निरमोही॥ ७२॥

पीठ नांम सिंहासन होई, चमर छत्र सिंहासन सोई।
तोहि फवै तू त्रिभुवन राजा, प्रीणय भव्य लोक भव पाजा॥७३॥

पीतांवर तू अतुल अभेवा, कीयो अंवर शून्य अछेवा।
परम समाधि ध्यानमय तू ही, पीतांवर पूजित जु प्रभू ही॥७४॥

पीहर जीव मात्र कौ स्वामी, सव कायनि कौ रक्षक नामी।
ज्ञान यंत्र मैं कर्म जु पीसैं, तिनकौं तेरे निज गुन दीसैं॥७५॥

पीत न सेत न रक्त न स्यामा, हरित नही तू अवरण नामा।
पीतामृत तू अजर अमृत्यू, तोहि ध्याय जीतैं मुनि मृत्यू॥७६॥

— छंद मोती दांम —

पुरांण पुनीत पुरांण जु सार, तु ही पुरसोतम है अविकार।
महा पुरषत्व पुराधिपराज, नही प्रभु पुण्य अपुन्य समाज॥७७॥

तु ही पुरदेव सवै पुरनाथ, तु पुष्कल रूप अनंत जु साथ।
तु ही सु पुरातन पुष्टिद पुष्ट, भजैं पुरहूत महारस तुष्ट॥७८॥

तु ही जु पुरंदर नाथ अनादि, भजैं मुनि तोहि पुलाक जु आदि।
कहैं पुरहुत पुरंदर इंद, सु तोहि भज्यां सव लेंहि अनंद॥७९॥

दवै जु हियो सरवै प्रभु नैंन, पुलक्कित होय सरीर सु चैंन।
सुतोहि लख्यां सव भ्रांति पुलाय, सुपुण्य जु रासि तु ही सुखदाय॥८०॥

कहैं प्रभु पुण्य पवित्र जु नांम, तु ही सुपुनीत महामति रांम।
तु ही पुरुषारथ भासइ च्यारि, तु ही पुरिखा सवकौ मुझ तारि॥८१॥

करौं जु पुकार तिहारहि द्वार, रुल्यो वहुतौ अव दै ततसार।
तु ही प्रभु पुज्य भजैं सव लोक, नहीं जु पुरां नव तू गुन थोक॥८२॥

पुलिन्नि महैं निवसैं मुनिराय, वसैं गिर गह्वर मैं जतिराय।
वसे वन मांहि करैं तुव ध्यांन, न तो सम आंन तु ही अतिज्ञान॥८३॥

न पुत्र न पौत्र न धांम न गांम, सुपुस्तक मांहि तु ही अभिरांम।
जु पुच्छ विना तिरजंच जिकेहि, भजैं नहि तोहि जु मूढ तिकेहि॥८४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वृथा करि फूलि धरैं जु गुमान, सु चूंटिहि जाय जु पुष्प समान।
नही तुव दास करैं प्रभु मांन, चहैं न विमान गहैं तुव ज्ञान॥८५॥

नही पुनरुक्त जु तू हि कदापि, भजैं हि पुनर्पुन धीर अलापि।
तु पुष्करसौ निरलेप मुनीस, अकास तनौं इह नांम भनीस॥८६॥

कहैं फुनि पुष्कर नांम तडाग, तु ही सर सौ तपहा रसभाग।
तु ही इक पूजि नही पर पूजि, महा अतिपूरव तु ही जगदूजि॥८७॥

न पूत न नाति हि तू निजरूप, अपूरव पूरव तु जगभूप।
तु ही परिपूरण पूरण ज्ञान, सुपूठि न देहु सुनौं भगवांन॥८८॥

करौ प्रभु हौं अतिपूत जु कार, हरे हमरे गुन मोह अपार।
सु रंचक दै करि इंद्रिय भोग, ठग्यो मुझकौं लखि मूरख लोग॥८९॥

अवै करि न्याव गुना धन द्याव, तु ही जगराव सुन्यौं अतिभाव।
जु पूछि तिहार हि द्वार महंत, तु ही जगपूजित नाथ अनंत॥९०॥

हमारी ही देह महाहि मलीन, महा अति पूति जु गंध अलीन।
भजैं तुव नाथ पुनीत जु होइ, करौ अति पूत प्रभू तुम सोय॥९१॥

तु ही इक प्रेष्ट जु और न कोइ, महा अति इष्ट सुअर्थ जु होय।
महा इक प्रेषण तू हि दयाल, करैं अति प्रेम मुनीस विसाल॥९२॥

तु ही प्रभु प्रेम अपेम वितीत, तु भक्त जु बच्छल देव अतीत।
कहैं प्रभु रुद्र हि प्रेत जु नाथ, जपै तु हि रुद्र सुगौरि हि साथ॥९३॥

तु पेखहि देखहि लोक अलोक, तु ही इक पेड धरैं वहु थोक।
लगे जग लोक सुपेट इलाज, भजैं नहि मूढ तुझै महराज॥९४॥

सुपैठि रहे परपंचनि मांहि, जु पैसिहि मायक मैं सक नांहि।
करै अति पैसुन्यता जगजीव, तुझै नहि पांवहि तू जग पीव॥९५॥

जुपै रहि भक्ति रसाधिक मांहि, तिके भव पार लहैं सक नांहि।
लहैं नहि भक्ति सुपैसुनि धारि, सुदुष्ट स्वभाव महादुखकारि॥९६॥

निभी इह पैज तिहारि सदाहि, जु ले सरनौं तुम द्यो शिव ताहि।
सुपोथिनि मांहि तुम्हारि ही कित्ति, तु ही गुन पोषक है अति सत्ति॥ ९७॥

कहै तु हि प्रोषध युक्त उपास, धरे प्रभु पोसह ध्यांवहि दास।
जिके नर पोषहि इंद्रिय स्वाद, तिके नहि पांवहि भक्ति प्रसाद॥ ९८॥

मुनीसर पोस जु माघनि मास, रहैं तटिनी तट भोग उदास।
सुग्रीषम मांहि रहैं गिरसीस, सुचातुरमासहि वृक्ष तलीस॥ ९९॥

करे तप तोहि जपे अघनासि, लहैं पद केवल ज्ञान विलासि।
विना तुव भक्ति तपा फल नून, महातप तेज तु ही हि अनून॥ १००॥

तु ही अति पोरिस पोषन हार, सुनौं इक वात भवोदधितार।
जु पोट महा दुरगंध तनीहि, धरी हमरै सिरि ऐसि वनीहि॥ १०१॥

महा सठ मोह न छांडहि पिंड, भमावहि लोक महैं जु अखंड।
तु ही हमरौ करि ऊपर नाथ, करे निरबंधन दै निज साथ॥ १०२॥

तु ही इक पौरिष रूप अथाह, तु ही प्रभु पौरव नागर नाह।
भजैं तुव पौरि सुरासुर सर्व, भजैं नरनाथ तजे सहु गर्व॥ १०३॥

नही प्रभु पौरि न खाइ हि कोट, न साथ न संग न आंन दपोट।
सवै धर तूहि सवै हि वितीत, अजीत सजीत अभीत अतीत॥ १०४॥

— सोरठा —

पौलोमी कौ नाथ, अर पौलोमी तुव रटैं।
तू ही अति गुन साथ, पौत्र न पुत्र न नारि नां॥ १०५॥

इंद्राणी कौ नाम, पौलोमी पंडित कहैं।
जपैं निरंतर धाम, तेरौ पौलोमी सदा॥ १०६॥

खीण भयो अति नाथ, रोगी नादि जु काल कौ।
तू अनंत वड हाथ, पौष्टिक भाव सु दे मुझैं॥ १०७॥

— दोहा —

पंजर नांम शरीर कौ, तेरै पंजर नांहि।
पंच शरीरनि तैं रहित, चिदघन गुन तन मांहि॥ १०८॥

पंगा अव्रत धारका, चरन रहित अविवेक।
ते तेरे परसाद तैं, पांवहि चरन विवेक॥१०९॥

तु ही पुंडरीकाक्ष है, प्रभु पंचत्व वितीत।
ज्ञानानंद सु पिंड तू, पंक रहित जगजीत॥११०॥

पंकज चरन जु मुनि भमर, सेवैं तन मन लाय।
पंथ प्रकासक एक तू, पंथी भक्त निकाय॥१११॥

पंच महाव्रत धारका, इंद्रिय पंच निरोध।
पंद्रह त्यागि प्रमाद जे, ध्यांवहि चित्त विसोधि॥११२॥

पंच अधिक प्रभु चालीसा, लख जोजन परमांन।
सिद्ध सिला है सासती, सोहि त्तिहारी थांन॥११३॥

पंचास जु लक्षा कहे, कोडि उदधि परवांन।
ऋषभ पछैं इतनें दिननि, प्रगटे अजित सुजांन॥११४॥

सुर्ग सोलमैं आय है, देविनि की उतकिष्ट।
पंच अधिक पंचास पलि, तू भासै जग इष्ट॥११५॥

पंच साठि प्रकती प्रभू, चौदह के हैं भेद।
मिलि अठवीस तिरांणवै, नाम प्रकति अति खेद॥११६॥

तेरे एक न पाइए, प्रकति परैं तू होय।
अविनासी आनंद मय, केवल रूप जु कोय॥११७॥

पंच अधिक सत्तरि सहस, ताके आधे जोय।
सर्व प्रमाद न तो विषै, निह प्रमाद तू होय॥११८॥

पंच अधिक असी प्रकति, जरी जेवरी तुल्य।
ते हु खपाय सुकेवली, सिद्ध जु हौंहि अतुल्य॥११९॥

पप्पा पासि दु सुन्य है, अंतिम मात्रा जोहि।
तू सव मात्रा मांहि है, चिनमात्रो प्रभु होहि॥१२०॥

अथ बारा मात्रा एक सवैया मैं।

परम प्रसिद्ध देव, पावन जु दै स्व सेव,
अतिहि प्रियंकर तू प्रीतम प्रसिद्ध है।
पुलिनि मैं वैठे साध तेरी ही करैं अराध,
पूतातम पूजि एक तू ही अनिरुद्ध है।
प्रेम तोसौं कीजे नाथ और तैं जु कौंन साथ,
पैसुन्य न भाव तोमैं एक न विरुद्ध है।
पोषक न तोमौं और पौरिष अपार तोमैं,
मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
पंथ देहु आपुनौं तु पः प्रकास शुद्ध है॥१२१॥

— दोहा —

तेरी पदमा शुद्ध जो, निज सत्ता निज शक्ति।
सोई कमला लक्ष्मी, दौलति संपति व्यक्ति॥१२२॥

इति पकार संपूर्ण। आगैं फकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

फकाराक्षर कर्त्तारं, फलदाता रमीश्वर।
सर्वमात्रामयं धीरं, वंदे देवं सदोदयं॥१॥

— दोहा —

फकारांक सिद्धांत मैं, झंझा पौंन सु नांम।
पौंन न झंझा पाइए, नाथ तिहारै ठांम॥२॥

वहुरि फकार कहैं वुधा, भय रक्षण कौ नांम।
तू भयहर भवहर प्रभू, चिदघन आतमरांम॥३॥

ईति भीति सव दूरि है, लेत तिहारौ नांम।
डरै दास के दास सौं, भय भाजै तजि ठांम॥४॥

स्तुति हू कौश्रुति मैं कहैं, नांम फकार प्रवांन।
स्तुति तेरी गनधर करैं, सुरनर करैं सुजांन॥५॥

— छंद नाराच —

कहैं प का टकार हू फकार कौ हि अर्थ ही,
सुसोर होय जोर सो प का टकार है सही।
नहीं जु सोर जोर है जहां तु ही विराजई,
तुझै जपैं सुईसरा उपाधि सर्व भाजई॥६॥

फवै हि सर्व तोहि कौं, दवैहि मोह तोहि सौं,
किये अनंत पार तैं, टरै मतीहि मोहि सौं।
प्रभू फटिकसारि साकरे सुभाव निर्मला,
भजैं जु तोहि साधवा सवै हि पाप दर्मला॥७॥

फला लहैं जु तोहि तैं अनश्वरा अनंत जी,
विभुक्ति मुक्ति दायको तु ही त्रिलोक कंतजी।
वृथा तनौं हि फल्गु नाम, तू न फल्गु भासई,
कहै सुतत्त्ववारता तु ही सवै प्रकासई॥८॥

फलैं न कर्म पादपा जवै अग्यान दुष्फला,
करैं हि दास दग्ध वीज रूप ताहि निष्फला।
फणाधिपा सुराधिपा नराधिपा तुझै भजैं,
अनादि काल के जु कर्म दासतैं परे भजैं॥९॥

फटै न फूटई कभी स्वभाव भाव जीव को,
तु ही कहै इहै स्वरूप नाथ है सदीव कौ।
फला दला न फूल कंद रावरे जनाभखैं,
तजैं हि जीभ स्वाद कौं दयाल भाव ते रखैं॥१०॥

फंदकतौ फिरै हि चित्त ले विषै सवाद कौं,
भजै न तोहि मूढ धी लग्यो महाविवाद कौं।
तु ही सुधारि आप मैं लगावई महा प्रभू,
फल्यो जु फूलियो सदा तु ही तरू महाविभू॥११॥

फणी जु काल रूप है डसै न नाथ दास कौं,
फसैं न मोह मैं मुनीस छांडि नाथ पास कौं।
फस्यो अनादि काल कौं सु आतमा फसाव मैं,
निकास होइ तोहि तैं जु आवई स्वभाव मैं॥ १२॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी

— छंद त्रिभंगी —

फरहरहि पताका, नाथ रमा का, करम विपाका, तू हि हरै,
है अति फलदाता, फलित विख्याता, त्रिभुवन त्राता, वोध करै।
कित हू नहि फसियो, अति गुण लसियो, निजगुनवसियो, तू हि प्रभू,
फणपति अति गावैं, गुन मन लावैं, सुर सिर नावैं, जगत विभू॥ १३॥

— सवैया-३१ —

मोह कौ फरफराट मेटै तू जगतराट,
पाटधारी तू विराट नायक अनूप है।
दायक स्वभाव कौ सुज्ञायक अनंतभाव,
लायक अनंत नाथ, आनंद सुरूप है।
फासि काटि कंठ की अज्ञानता सुरूप जोहि,
डारी मोह चोर नैं हमारै दुखरूप है।
जीव कौ दयाल तू क्रिपाल है विसाल लाल
राखि छत्र छाय मैं तु ही अनुप भूप है॥ १४॥

चुभी जु फांस हीयमैं मिथ्यात भाव रूप देव
माया औ निदांन बंध रूप जो विरूप है।
सम्यक स्वभाव चिमुटा तै काढि फांस नाथ
चैंन देहु दास कौं तु ही दयाल रूप है।
फारातोरी नांहि तैंरै, फारितोरि डारै अघ,
फारिक विभाव तैं तु ही पियूष कूप है।
फाल चूकौ नादि कौ फस्यौ जु फासि मांहि मैं ही
तू ही काढि फासि तैं क्रिपाल तू अनूप है॥ १५॥

फाकी तेरे सूत्र की हरै अनादि रोगनिकौं,
फकै मायामोह कौं सुचूरण स्वरूप जो।
जीव के असाध्य रोग, जन्म जरा मृत्यु सोग,
सब ही नसावै देव अैसी है निरूप जो।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
याकौ करै सेवन जु साधु सब बाधा जीत,
याकौ जस गावैं सुरनाग नर भूप जो।
दोष सब कटै यातैं, तेरीई प्रसाद इहै,
औषध कौ दायक तू वैद है निरूप जो॥१६॥

फाकी लेय औषध की पथ्य जे रहैं सदीव
अभष अहार त्यागि तजैं जू कषाय कौं।
जीभ वसि राखैं अर नारी सौं न नेह राखैं
अलप अहार लेय राखैं दिढ काय कौं।
तबै रोग कटैं नाथ कबहू न करैं साथ,
कल्प काय हौंहि जीति पित्त कफ वाय कौं।
बहुतनिकौं रोग हर्यो इहैं जाची औषध जु
फाकी देहु याकी देव हरै जू अपाय कौं॥१७॥

फांफ मारते जु कांम क्रोध लोभ मोहादिक
जीव लोक जीति कैं सु सूरवीरपन की।
तेरे दास देखत ही भाजि गये छांडि खेत,
सनमुख भये नांहि बुद्धि त्यागि रन की।
दासनि नैं लोक हू उधारे तुव दास करि
काल तैं बचाये रीति पाली जु सरन की।
इहै रीति देखि कैं जु कायर लखे विभाव,
भ्रांति सब नासि गई भव्यनि के मन की॥१८॥

फाटि टूटि जाय सो तौ पुग्गल कौ रूप सब
फाटिवौ न टूटिवौ न जीव मांझ देखिये।
अैसौ भेद तोही तैं लह्यौ जु भव्य जीवनि नैं
तू ही है सफार परिपूरण विसेषिये।

स्फार कौं अरथ विसतीरण कहैं मुनीस
तू ही विसतीरण अनंत रूप पेखिये।
गुन है अनंत औ अनंत परजाय तेरैं,
सकति अनंत महिमा अनंत लेखिये॥ १९॥

जाड्यता अनादि की सुसीतकाल रीति सम
भव्यनि कै दूरि होय तेरेई प्रसाद तैं।
फागुन सौ सम्यक जु प्रगटै तवै हि नाथ
ज्ञानरवि तेज लहै, तेरे स्यादवाद तैं।
ध्यानानल ताप गहै, विमल स्वभाव लहै,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
फूलै गुन फूल अति छूटै जू विषाद तैं।
जीव भंवरौ जु सोई सुख मकरंद लेय,
स्यामता नसावै नाथ छूटै जु विवाद तैं॥ २०॥

चारित जो चैत्र सम प्रगटै तवै जु वेगि
त्यागि लोक कांनि जव स्वेछता विहार ही।
ऋतुराज सम मुनिराजता प्रगट होय
दिन दिन तप कौ प्रभाव अति धार ही।
परमत भाव मास वैसाख जु मिटि करि
जेठपन होय अति सुचिभाव सार ही।
सांवन समांन मनभांवन पुनीत भाव,
झर लावैं अमृत कौ अतुल अपार ही॥ २१॥

भादव समांन भद्रभाव सुकलो जु होय
सरद समांन तव केवल उपाव ही।
सीत चौकरी न फेरि उपजै कदपि काल,
कालतैं वितीत होय जाल मै न आव ही।
सिद्धि ऋद्धि वृद्धि औ समृद्धि कौ भर्यो अनंत
आप रूप होय करि आप रूप पाव ही।
भ्रमण न भ्रम सु कदापि शुद्ध कौं न होय
अध्यातम जोग इहै तू ही एक गाव ही॥ २२॥

— दोहा —

फागुन कातिग अर प्रभू, मास अषाढ हु मांहि।
शुक्ल पक्ष त्रय मास मैं, वसु दिन वृत्त करांहि॥ २३॥

अष्टमि तैं पून्यौं सुधी, इहै अठाई होय।
तू हि प्रकासै नाथ जी, सिद्ध गुननि परि सोय॥ २४॥

फिरयौ अनंती जौंनि मैं, तो विनु दीनदयाल।
अव फिरिवौ सब मेटि तू, दै निज ज्ञान विसाल॥ २५॥

फिरि फिरि विनऊं नाथजी, भ्रमण न फिरि फिरि होय।
सो निजवास दयाल जी, देहु क्रिपा करि सोय॥ २६॥

फिल्ल पार्यो तैं ही मोह, [illegible], सुविधिसागर जी म्हार
तो सौं लरि सकै नांहि, चोरनिकौ रावही।
फिट्ट फिट्ट कीये तैं हि राग दोष भाव सव,
दासनि पैं भागि जांहि सकल विभाव ही।
फीटी बात तेरे दरवार मैं न दीखै कोऊ,
फीटी वात कीयें नाथ तू न हाथ आव ही।
फुनि फुनि कहौं मेरी भ्रांति हरि दास करि,
तेरा दास होय सो तुझै तुरंत पाव ही॥ २७॥

— दोहा —

फुटकर गुन तेरे नही, गुन अनंत इक रूप।
फूटि फाटि नहि गुननि मैं, शक्ति अनंत स्वरूप॥ २८॥

फूलि धरैं भव भाव मैं, मूरिख लोग अयांन।
फूलि धरैं तुव भक्ति लहि, ज्ञानवंत गुनवांन॥ २९॥

फूल पांन नहि जोग्य है, ब्रह्म व्रतिनि कौ देव।
ब्रह्मचर्य के शत्रु ए, त्यागहि दास अभेव॥ ३०॥

फूंकि फूंकि पग मुनि धरैं, धारैं दया अछेव।
तेरे दास उदासते, भव भोगनि तैं देव॥ ३१॥

फूस तुल्य भव भोग ए, कण रहिता जड भाव।
चाहैं पसु सम नर तिनैं, दासनि कै नहि चाव॥ ३२॥

चाव एक तुव भक्ति कौ, दास धरैं अतिभाव।
फेन तुल्य भवभूति, जिनकै नांहि उपाव॥ ३३॥

— सवैया इकतीसा —

फेन सम माया और काया है तडित सम,
वादर की छाया सम जाया जग जाल है।
इंद्र चाप तुल्य भोग्य भावना विनश्वर जो,
वुद वुद जल के समांन धनमाल है।
यामैं नांहि सार कोऊ सार एक तू हि होऊ,
तारि भव सागर तैं तू हि दुख टाल है।
फेरी जग मांहि देत वीत्यो जु अनंत काल,
फेरि फेरि कहूं कहा जगत प्रपाल है॥ ३४॥

— सोरठा —

फैलि रह्यो सव मांहि, फैल न एक धरै तु ही।
जिनकै फैकट नांहि, तेई तोहि लहैं प्रभू॥ ३५॥

फैंन न एको कोय, जैन प्रकासक तू सही।
वैंन सुधा से होय, फोरे तैं हि अनंत अघ॥ ३६॥

फोरा सर्व मिटैहि, फौरे ही से भजनतैं।
कर्म कलंक कटै हि, तोतैं सर्व कल्याण है॥ ३७॥

— दोहा —

फौरि जु मोहादिकन की, मेटैं तेरे दास।
फौज त्यागि है एकले, काटैं कर्म जु पास॥ ३८॥

फंद न तेरै एक हू, फंद रहित निरद्वंद।
छंद अलंकारादि सव, तू भासै जग चंद॥ ३९॥

पर्यो फंद मैं मैं महा, तू छुडाय प्रभु मोहि।
फंद जु काटि स्वछंद करि, कहौं कहा अति तोहि॥ ४०॥

फरसी सम्यक बोध की, नाथ रावरै हाथ।
क्यौं न फंद काटौ प्रभू, क्यौं न देहु निज साथ॥ ४१॥

फः कहिये ग्रंथनिविषै, फूतकार कौ नांम।
फूतकार सरप जु करै, विष भरियो अघ धांम॥ ४२॥

नांम मंत्र तुम्हरौ रटें, सर्प माल सम होय।
फः कहिये फुनि नाथ जी, निःफल भाषा सोय॥ ४३॥

निःफल तेरौ भजन नां, फलदायक तू देव।
दासनि कै कछु कांम नहि, निहकामा रस बेव॥ ४४॥

फः प्रवेस कौ नांम है, तोतैं ज्ञान प्रवेस।
फः कहिये फुनि कलह कौं, कलह रहित मुनि भेस॥ ४५॥

कलह तजें विनु ज्ञान नहि, ज्ञान विना न अनंद।
ज्ञानानंद स्वरूप तू, अदभुत परमानद॥ ४६॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

फल कौ जु दायक तू नायक फणिंद कौ जु
फासि तैं निकारि अर फिरिवौ मिटाय तू।
फीटी बात मूढ करि फुनि फुनि धारैं देह
दास तेरे हैं विदेह कर्म तैं छुडाय तू।
फूस तुल्य भोग भाव फेन तुल्य भूति राव
फैकट भयौ जु लोक शुद्ध रूप राय तू।
फौर तू विभाव भाव, फौरि हरै फौरिनिकी,
फंद विनु फः प्रकास नाथ सुखदाय तू॥ ४७॥

— दोहा —

तेरी नाथ सफारता, अति विसतीरण शक्ति।
सोई पदमा मा रमा, संपति दौलति व्यक्ति॥ ४८॥

इति फकार संपूर्ण। आगैं बकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

बर्द्धमानं महाबाहुं, विश्व विद्या कुलगृहं।
वीतरागं विनिर्मोहं, बुद्धं शुद्धं प्रभाधरं॥ १॥

बू मात्रा भासकं धीरं, बेद सिद्धांत रूपिणं।
बैनतेय निभं वीरं, कर्म नाग निवर्हणे॥ २॥

बोध रूपं चिदानंदं, बौद्धादि मत दूरगं।
बंदे धीरं सदा शांत, निर्ग्रंथं बः प्रकासकं॥ ३॥

— दोहा —

ब्रह्मनिष्ट ब्रह्मन्य तू, है ब्रह्मज्ञ दयाल।
परब्रह्म परमातमा, ब्रह्म निदेसक लाल॥ ४॥

ब्रह्म शब्द के अर्थ बहु, भगवत मोक्ष सुज्ञांन।
शील जीव श्रुति द्विजकुला, एते ब्रह्म बखांन॥ ५॥

बहुश्रुत बिश्रुत बस्तु तू, तैं नांहि अबस्तु।
बहु जीवनि कौ पारकर, तू बहुत्त परशस्त॥ ६॥

ब्रह्म योनि निर्योनि तू, बध बंधन तैं दूर।
ब्रह्म वचन प्रतिपाल तू, आनंदी भरपूर॥ ७॥

— छंद त्रिभंगी —

बक सम कपटी जे, धन झपटी जे, अघ लपटी जे, तुव न लहैं।
मुनि हंस समाना, कपट न जाना, उज्जल ज्ञाना, तुव जु गहैं।
निरमल जो भावा, अति निरदावा, अतुल प्रभावा, प्रभु इक तू।
सरवर अमृत भर, तपहर तपधर, दुखहर सुखकर इक त्रिक तू॥ ८॥

मुनि हैं बनबासा, तजिधर बासा, बिविध बिलासा, तोहि जपैं।
लखि सब मैं तोहि, है निरमोही, तोहि जु टोही, साध तपैं।
फुनि बन जल नामा, जलजित रामा, अति अभिरामा चिदघन तू।
जित बनज सुचरणा, आनंदकरणा, हरइ जु मरणा सुखतन तू॥ ९॥

बहु बलभद तारे, अतिबल धारे, बणिक हु तारे, भव जल तैं।
तू बिप्र उधारा, क्षत्रिय तारा, जगत उधारा, निजबल तैं।
अति बनियां ठनियां, श्रीगुर भनियां, जगगुर गनियां, जग राजा।
बलि जांहु तिहारी, गुनबपु भारी, तू भवतारी, भव पाजा॥ १०॥

थिरचर की बर्मा, अतुलित धर्मा, रहित जु कर्मा, अति मर्मी।
बज्रांग जु स्वांमि, भयहर नांमी, मृदुतर धांमी, अतिधर्मी।
करमनि कौं तौरै, अघमद मौरै, अपुनैं जौरै, अति राजै।
बत्सल गुन धारैं, भगत उधारैं, पाप प्रहारैं, अति छाजै॥ ११॥

ब्रतधर अति ध्यांवैं, गुन गन गावैं, मुनि लव लावैं, धरि समता।
अतिब्रत्त परायन, तू मन भायन, निज सुखदायन, प्रभु रमता।
बहु बस्तु जांनैं, भ्रांति जु भांनैं, भव्य जु मांनैं, इक तोकौं।
करम जु बटपारा, हरि भवतारा, करि भव पारा, प्रभु मोकौं॥ १२॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

— दोहा —

बाद बिबाद न तो बिषै, बाह्याभ्यंतर एक।
बहिरातम पावैं नहीं, तू एको जु अनेक॥ १३॥

सब बाहिर सब मांहि तू, बाल न पावै तोहि।
बाला रहित अतीत तू, श्रीधर दै शिव मोहि॥ १४॥

ते ब्राह्मण जे तुवं भजैं, तोहि तजैं ते निंद्य।
निराबाध जगदीस तू, श्री भगवंत सुवंद्य॥ १५॥

बाग सघन तुव गुननि के, ता सम और न कुंज।
कुंज विहारी देव तू, रमैं अतुल गुन पुंज॥ १६॥

बापी सरवर नहि तटिनि, तेरे पुर मैं नाथ।
सुख सरवर नरवर तु ही, गुन समुद्र अति साथ॥ १७॥

ब्याह बिना नारी सकल, तू बरजै जगनाथ।
ब्याहत नारी हू तजै, तब पावै तुव साथ॥ १८॥

बासी भोजन जे भखैं, ते न लहैं तुव भक्ति।
भक्त न श्रुति वर्जित गहैं, बिषयनि मैं नहि रक्त॥ १९॥

द्वै महूर्त दिन जब रहै, ब्यालू तब ही जोगि।
रात्रि न भोजन उचित है, तू बरजै हि अजोगि॥ २०॥

ब्याल नांव है दुष्ट गज, ब्याल नांव है नाग।
अहि न डसै गज हु नसै, तुव दासा बडभाग॥ २१॥

ब्याघ्रादिक लखि दास कौं, दास हौं हि तजि गर्व।
सुरनर असुर जु खेचरा दासहि सेवहि सर्व॥ २२॥

काल करम रागादिका, पीरि सकैं नहि एहि।
तो ऐसौ दूजौ कवन दासनि कौं दुख देहि॥ २३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बास रहित तू बसि रह्यो, निश्चै आपुन मांहि।
व्यवहारैं सब ज्ञेय मैं, तू हि बसै सक नांहि॥ २४॥

बासुदेव पूजित तुही, बासुपूज्य जग पूज्य।
ब्याकरणादिक भास तू, अव्याकृत जग दूज्य॥ २५॥

बादीगर कौ बानरा, मोहि जु कीयो मोह।
ज्यों हि नचावै त्यौं नचौं, इहै मोह अति द्रोह॥ २६॥

बाट बहंता नाथ जी, उपनौ अति गति खेद।
अब निज पुर कौ पंथ दै मोहि करौ निरखेद॥ २७॥

बांनी तेरी सुनत ही, बहुतनि खोयो खेद।
तेरी बानि पियूष है, परम स्वरस अतिबेद॥ २८॥

वारी तेरी फलि रही, जाकै बारि न कोय।
फल पांवैं प्रभु तोहि करि, तू फलदायक होय॥ २९॥

बिगरी बात सुधारि तू, तो विगरि न कहुं चैंन।
विक्यौ अचेतन हाथ हूं, अब दै सम्यक नैंन॥ ३०॥

बिरही नादि जु काल कौ, लही नही निज शक्ति।
बिर्यों बिर्यों करि नर भयो, दै नरहरि निज भक्ति॥ ३१॥

बिरला तोकौं पांवही, भव बिष हरि जगनाथ।
विजय जीव की तोहि तैं, विलै होत अघसाथ॥ ३२॥

मार्गदर्शक :-

बिदित सकल सुरभूप तू, बिरद बिहद जगदेव।
निरविकार निरलेप तू, दै स्वांमी निज सेव॥ ३३॥

तू बिहाय सम निरमलो, तिष्टैं सर्व विहाय।
तैं योंहि बिहावई, स्वरस छक्यो अधिकाय॥ ३४॥

तू बितर्क तैं बेग लौं, युक्ति जु सर्व प्रकास।
तोहि बिसारि जु हौं भम्यौं, अब दै भक्ति बिलास॥ ३५॥

तू हि बिदारै सर्व अघ, तू हि बिडारै भर्म।
तू बिस्तार सुरूप है, निस्तारक निज धर्म॥ ३६॥

तू बिचार जोगीनिकौ, निज बिहार विसफार।
सकल विभाव वितीत तू, हरइ बिभीति अपार॥ ३७॥

बिनजारौ निरबांन कौ, मोटौ सारथबाह।
बिनज निजातम बस्तु कौ, तैं अतुल अथाह॥ ३८॥

मेरी बिकरै तब परै, तू पकरै जब हाथ।
बीवा तैं पासि है, तू हि बतावै नाथ॥ ३९॥

बीहैं नाहि कदापि हू, तेरे दास अभीत।
तू बीचार वितीत है, बीजभूत जगजीत॥ ४०॥

तोहि बीसर्‍यां भव भमैं, तुव भजियां भव मुक्ति।
भुक्ति मुक्ति की मात जो, दै देवा निज भक्ति॥ ४१॥

जिह्वा भूषन भजन है, बीरा भूषन नांहि।
बीरा नांम तँबोल कौं, लौकिक भाषा मांहि॥ ४२॥

बीरा सील ब्रतीनि कौं, उचित न होय कदापि।
भोग मूल हैं पुष्पदल, तू बरजै श्रुति थापि॥ ४३॥

बीर धीर बरवीर तू, वीजाक्षर परकास।
योगी योग विलास तूं, ध्यानारूढ विभास॥ ४४॥

काया माया बीजली, सम क्षणभंगुर होय।
तोहि भज्यां अविनश्वरा, लहिये लक्ष्मी सोय॥ ४५॥

बींट तूटियां फल गलै, मोह गल्यां सब कर्म।
मोह बीज है जगत कौ, जाकरि उपजै भर्म॥४६॥

बीधौ सीधौ भक्ष नां, अणगाल्यो जल निंद्य।
धर्म रीति सब तू कहै, अति प्रबुद्ध जग बंद्य॥४७॥

बुध तोकौं पांवहि प्रभू, अवुध न पांवैं नाथ।
विबुध वंद्य जगवंद्य तू, अति अनंत गुन साथ॥४८॥

बुरी भली सब ही तजी, जग करनी जग मूल।
भजी भक्ति जब रावरी, तब भागी सहु भूल॥४९॥

नहीं बुलायो आव ही, नहीं पठायो जाय।
मार्गदर्शक :- आचा
स्वगत तू ही है सर्वगत, प्रभू जगत कौ राय॥५०॥

बूझै सारी बात तू, सूझै तोकौं सर्व।
छूटै अमृत धार तू, हरै जगत कौ गर्व॥५१॥

बूढैं भवजल मैं सठा, विना तिहारी नाव।
जिन बूझ्यो तोकौं प्रभू, तिन खोये भ्रम भाव॥५२॥

गह्यो बेठि सारू मुझै, कर्म मिले बहु जोर।
पोट धरी दुरगंध की, मेरै सिरि अति घोर॥५३॥

गन्यो वेसरी सौ मुझे, लाद्यो वोझ अनंत।
निरदय टोली अति मिली, तू छुडाय भगवंत॥५४॥

बेता सर्वजु भाव कौ, कहूं कहा जु बनाय।
बेहा बीता तो बिना, अव सब भर्म मिटाय॥५५॥

न्याति तिहारी में सही, तुम राजा बलवांन।
नाथ छुडावो बेठि तैं, सुनि विनती भगवांन॥५६॥

जड जु बेठि सारू गहे, राज तिहारे मांहि।
चेतन कौं विपरीति इह, नाथ रीति इह नांहि॥५७॥

बेद नांव सिद्धांत कौ, तू है वेद प्रकास।
है निरवेद अभेद तू, बैठो सब कै पासि॥५८॥

बैवस्वत हर विश्वधर, कर्म रोग हर देव।
बैदक रीति प्रकास तू, वैद तु ही जु अछेव॥५९॥

बै निश्चय कौ नांम है, निश्चै रूप जु तू हि।
बोध निधांन सुजांन तू, बोध प्रमांन प्रभू हि॥६०॥

बोहथ भव की तू सही, प्रतिबोधक भवि जीव।
तारै तू हि जु और नां, सुखदायक जग पीव॥६१॥

— छंद मालिनी —

तुझ हि नहि पिछांनैं, शून्यबादी जु बौधा,
लहहि न विपरीता, मूढ पाखंड साधा।
करहि पर विघाता, ते न तोकौं जु पांवैं,
सकल जन दयाला भक्त तोकौं हि गांवैं॥६२॥

तव निकट जु ऋद्धि, सिद्धि कौ सिंधु तू ही,
रहित सकल बंधो, मोक्ष मूलो प्रभू ही।
चिदघन चिनमात्रो, शुद्ध भावो अनादी,
अचलित परभावो, लोक बंधू जु आदी॥६३॥

— सार्दूल विक्रीडित छंद —

वंधा वंधन तू हि काटि शिव दे, तू नासई बंकता।
पांवै नांहि जु बंचका प्रभु तुझैं, तैरै नहीं संकता।
माता दासनि की हि पुत्रवति है, औरै जु बंध्या समा।
तू ही नाथ अनाथ पार करणो, धारै अनंती रमा॥६४॥

— दोहा —

बिंध्याचल पुर सम गनैं, गिनैं गुहा घर तुल्य।
है उदास भव वास तैं, दास जपैं जु अतुल्य॥६५॥

बिंताकादिक बिंजना, तेरे दास भखैंन।
और हु वस्तु अभक्ष जे, तिनकौं कबहु चखैंन॥६६॥

बंदौं तोहि दयालजी, बंदौं तेरे दास।
बंदौं तेरे सूत्र जी, भक्ति ज्ञान परकास॥६७॥

बबा पासि दु सुन्य है, अंतिम मात्रा एह।
सब मात्रा मैं एक तू, चिनमात्रा जु विदेह॥६८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अथ द्वादस मात्रा एक कबित्त मैं।

ब्रह्म परब्रह्म तू ही, बाल वृद्ध युवा नांहि,
बिगरी सुधारै नाथ जीव की अनादि की।
बीर बुद्ध शुद्ध तू ही, छूटै बूंद आंनद की,
बेद सूत्र भासक प्रकासै रीति आदि कौं।
बैनतेय सारिखौ जु कर्म नाग नासिवे कौं,
बोध कौ निधांन रीति भाषै स्यादवाद की।
बौद्ध नांहि जांनैं भेद बंदनीक तू अबेद,
बः प्रकास है अनास धारै रीति दादि की॥६९॥

— दोहा —

तेरी नाथ जु बस्तुता, सोई सत्ता शक्ति।
संपति भूति विभूति जो, दौलति निज छति व्यक्ति॥७०॥

इतिश्री बकार संपूरणं। आगैं भकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

भव्यांभोरुह मार्त्तंडं, भानु कोटि जित प्रभं।
भिन्नं रागादिभिर्भीति, नाशनं भुक्ति मुक्तिदं॥१॥

भूतनाथं जगन्नाथं, भेदाभेद प्रकाशकं।
भैरवादि पतिं धीरं, सर्व भैरव तापहं॥२॥

भोगातीतं महाभोगं, सार्वभौमं महेश्वरं।
भंगुरैर्भव संभूतै, र्भावैर्वर्जितमीश्वरं॥३॥

भः प्रकाशं चिदाकाशं, सर्वाधारं सदोदयं।
वंदे देवेंद्र वृंदार्च्यं, योगिनं भोगिनं विभुं॥ ४॥

— दोहा —

भव्यनि कौ तारक तु ही, भव सागर की पोत।
भर्त्ता त्रिभुवन कौ प्रभू, जाकै गात न भोत (गोत)॥५॥

भयहारी भगवंत तू, श्री भगवांन सुजांन।
भद्र भद्रकृत भरित तू, ज्ञान भवन गुनवांन॥ ६॥

तु ही भवांतक भ्रम हरै, करै भलाई नाथ।
भलौ तुही भजन जु कियौ, भव तारै वडहाथ॥ ७॥

भव तेरौ हू नांम है, होय स्वभाव स्वरूप।
तू भदंत गुनवंत है, भगत बछिल शिव रूप॥ ८॥

भगति तिहारी भवि करैं, अभवि न पावैं भक्ति।
भुक्ति मुक्ति की मात जो, दै निज भक्ति सुव्यक्ति॥ ९॥

भर्म नांव कंचन तनौं, कनक कामिनी त्यागि।
भगति करैं मुनिवर महा, एक तोहि मैं पागि॥ १०॥

भद्रिक परिणांमी लहैं, कुटिल लहैं नहि तोहि।
गुन भरिता ह्वै तो भज्यां, दै सेवा प्रभु मोहि॥ ११॥

— त्रोटक छंद —

भव भंजन तू भवि रंजन है, भरतादिकतार निरंजन है।
भय कौं भयकारिज ईश तु ही, भणियों न भणायउ पंडित ही॥ १२॥

भगवांन विनां दुख कौंन हरै, भगवंत तु ही भव पार करै।
भकभूर करै अघकर्म तु ही, भरपूर तु ही सुख पिंड जु ही॥ १३॥

नहि भांनु जु और तु ही रवि है, जगभास करो जु महा कवि है।
अतिभाव तु ही मनभांवन है, वडभाग तु ही अति पांवन है॥ १४॥

अति अमृत भाव अरुचि तु ही, [illegible] अगाध [illegible]
अविभाग अखंडित शुद्ध तु ही, अतिभार धुरंधर आप सही॥ १५॥

गुन भाजन भ्राजिसनू जु तु ही, अतिभास अभास प्रकासक ही।
गुन ग्रांम सुरासुर नाग नरा, पढ ही जु भये सम भाट धुरा॥ १६॥

जग कौ प्रभु भाल दयाल तु ही, इह भाहि निवारइ तू हि सही।
गुनभाग सुभाग हकार सबै, कहही इक तोहि त (तैं) पाप दबै॥ १७॥

सब वृद्धि जु हांनि लखै इक तू, अति ही भिषको इक है त्रिक तू।
अति रोग हरै अति भिन्न तु ही, अति है जु अभिन्न स्वभाव सही॥ १८॥

भिरि है न भिस्यो तुव दासन सौं, जडधी जु विमोह अबासन सौं।
भिलि है न भिलै भिलियो कवही, तुव भावनि मांहि विभाव नही॥ १९॥

नहि भींट सकैं तुझैं जन ए, तन है दुरगंध चला मन ए।
नहि भीति विभीति सुदासन कौं, अतिभीम तु ही अघ नासन कौं॥ २०॥

— दोहा —

भी कहिये भय कौं प्रभू, तू हि अभी भयहार।
भीरु नांम कायर तनौं, दास अभीरु अपार॥ २१॥

भीनें तोमैं जोगिया, भीतरि बाहिर एक।
भीख जु मांगैं तोहि पैं, शुद्ध स्वरूप विवेक॥ २२॥

भीर परैं नहि दास कौं, तू हि सहाई नाथ।
भील हु तो जपि सदगती, पांवैं तू वड हाथ॥ २३॥

भीच्यो मोहि अपार जी, तनु यंत्र जु मैं डारि।
मोह महा निरदय मिल्यो, अव भव संकट टारि॥ २४॥

— अरिल छंद —

भुवनेश्वर जगराय छुडावै मोहि तू,
है त्रिभुवन कौ तात रह्यो अति सोहि तू।
भुक्ति मुक्ति दातार, भक्ति दै रावरी,
लगी नादि की देव भ्रांति हरि बावरी॥ २५॥

भुगतें विनु छूटैं न कर्म शुभ अशुभ जो
जग मैं, जीवनि कै जु लगि रहे सुलभ जो।
तेरी भक्ति सुवन्हि काठ ज्यौं क्षय करै,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
कर्म कलंक सबै जु भक्ति तैं अति डरै॥ २६॥

दास जु चाहैं भक्ति भुक्ति तैं काम नां,
भुक्ति कहावै इंद्र पदी सुखबासनां।
भुक्ति फणिंद पदी हु चक्रि पदई प्रभू,
तेरे दास गिनैं हि निकम्मी सहु विभू॥ २७॥

तु भुवनाधिप नाथ, भुजंगाधिप पती,
अतिगति जीभ वनाय सेस ध्यावै अती।
भुवन मांहि तुव कित्ति तु ही है अति गुना,
तोहि जपैं वडभाग मुनीसर तत चुना॥ २८॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

भुजंगी प्रयातारि छंदा सबै ही, तु ही जो वखानैं सदा दोय नैं ही।
तु ही भूत भृद्भूत भावो सुरूपा, तु ही भूति रूपो विभूति सुरूपा॥ २९॥

प्रभू तात मातू अभूतो अभूही, महाभूत भूतेश्वरो है प्रभू ही।
सदा भूपती तू हि भूरीश्वरो वा, विभू है सुभूतीश्वरो धीश्वरो वा॥ ३०॥

तजे भूलि ध्यावैं मुनीसा, तुझै ही तु ही देव भूतारथो शुद्ध है ही।
जिके नास्तिका भूतवादी अयाना, तुझै नांहि गावैं तिके नां सयानां॥ ३१॥

— सोरठा —

तजि बहिरंगा भूति, चिदघन रूपा तैं धरी।
तो मांहैं सुविभूति, भूत्यंतर तू देव है॥ ३२॥

हरै भूख अर प्यास, जग भूषण तू देव है।
अति भूषित अति भास, भूरि अनंत सुगुन तुही॥ ३३॥

भूप न दंडै जाहि, चोर न वाकै पैसई।
करै आपुनौं ताहि, तू हि प्रभू ताकौं न भै॥ ३४॥

भू प्रथ्वी कौ नांम, भू कहिये उपजै जिको।
प्रथ्वीपति तू रांम, उत्तपति मरण न रावरै॥ ३५॥

भूत सुमंगल नांम, मंगलकारी तू सदा।
भूत आतमारांम, तू परमातम जीवपति॥ ३६॥

कहैं सत्य कौं भूत, भूतारथ निश्चै करा।
तू है सत्य प्रभूत, सत्य तिहारौ धर्म है॥ ३७॥

भूत अतीत जु काल, तू त्रैकाल्य प्रधांन है।
भूत जु इंद्री लाल, इंद्री मन तोहि न गहैं॥ ३८॥

उपजै जाकौ नांम, भूत कहैं श्रुति धर नरा।
तू हि स्वयंभू रांम, उपज्यो उपजायो नही॥ ३९॥

भूत जु विंतर भेद, भूत जु भागैं नांम तैं।
भेष रहित अतिवेद, भेद अभेद अवेद तू॥ ४०॥

भेद जु डेडर नांम, भेक तुल्य मैं मूढ मति।
कैसैं पांऊं रांम, थाह सुगुन सागर तनौं॥ ४१॥

भेट चित्त करि तोहि, ध्यांवैं मुनि ममता हरा।
भेद रहै नहि कोहि, तेरै साधुनि सौं प्रभू॥ ४२॥

भेजे तैं हि अनंत, शिवपुर कौं जगनाथजी।
भेज चढै भगवंत, तेरै द्वारै जगत की॥ ४३॥

भेरि दमांमां देव तेरै, देवल अति वजैं।
सुरनर धारैं सेव, अति अछेव अवनीस तू॥ ४४॥

भैरव भाव न कोय, भैषज भव की तू सही।
तू अति भोगी होय, आनंद रस कौ भोगता॥ ४५॥

भोला लोक अयांन, तोहि त्यागि औरहि भजैं।
गनियें सोइ सयांन, तुव भजि त्यागै जगत कौं॥ ४६॥

भोगी सर्प जु नांम, भोग फणनि कौ नांम है।
सर्प हु शुभ गति रांम, पांवैं तेरै नाम तैं॥४७॥

भोग जगत के नाथ, झूठे सर्वहि सार नहि।
भोग त्यागि तुव साथ, करहि जती अतुलित व्रती॥४८॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— इंद्र बज्रा छंद —

न सुर्ग चाहैं न चहै विभूती, न नाग लोका नहि चक्रिभूती।
न ऋद्धि सिद्दी परजोग भूति, न सार्वभौमीभुज की विभूती॥४९॥

नही जु इष्टा न अनिष्टा चांहैं, निहकांम भक्ता शिव हू न चांहैं।
पगे जु तोमैं प्रभु, ह्वै अनन्या त्वत्पाद धूली प्रतिपन्न धन्या॥५०॥

— सोरठा —

भौतिक लहैं न तोहि, जे आरंभी अति सठा।
दै जगदीसुर मोहि, निहकामा भगती महा॥५१॥

भौंदू तोहि विसारि, विचरैं भवमाया विषैं।
भंगुर भूति जु डारि, तोहि न सेवैं जडमती॥५२॥

भं नक्षत्र जु नांम, नक्षत्रनि कौ पति ससी।
ध्यावै तोहि सुधाम, सव नक्षत्र हु तुव भजै॥५३॥

भंग न तूहि अभंग, भंग भाव तेरै नहीं।
भ्रांति न तू अति रंग, नांहि दुभांति जु तो विषैं॥५४॥

भव मद भंजै सोय, जो तेरौ सरन जु गहै।
भ्रंस न कवहु होय, जो तोकौं तन मन रटै॥५५॥

— छप्पय —

भः कहिये श्रुति मांहि, भ्रमर कौ नाम जु होई,
भ्रमर रुप मुनिराय, सम्यकी अति व्रत जोई।
चरन कमल प्रभु के हि ध्याय अनुभौ रस पीवैं,
करि जु स्यामता दूरि, शुद्ध ह्वै तोहि जु छीवैं॥५६॥

भजि चरन कमल जग जाल तजि,
आंवहि तुव पुरि भविजना।
अति अमल अतुल तुव गुन सुभजि,
अजर अमर ह्वैं सुखतना॥५७॥

अथ द्वादस मात्रा एक कबित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

भरम कौ नासक तू भाव अति उज्जल है,
भारती तिहारी पार करै भव जल तैं।
भिन्न पर भावनि तैं भीनौं निज भावनि मैं,
भुकति मुकति ईस तारै निज वल तैं।
भूप सव भूपनि कौ भेदभाव नांहि जाकै,
भैषज समांन देव न्यारौ भोग मल तैं।
सारभौम नाथ जाकै भंगुर न साथ कोऊ,
भः प्रकास है अभास जूवो मोह छल तैं॥५८॥

— दोहा —

तेरी नाथ जु भद्रता भवा भवांनी सोय।
कहैं भद्रकाली जिसैं, निज सत्ता है जोय॥५९॥

ऋद्धि सिद्धि गौरी रमा, मा पदमा परतच्छि।
काली काल हरा महा, संपति स्यामा लच्छि॥६०॥

भा आभा द्युति क्रांति जो, चंडी तिमर विनास।
स्वाभाविक पर्याय जो, प्रभु की अति गुन भास॥६१॥

शिवाशंकरी श्री प्रभा, लक्ष्मी चेतन शक्ति।
सो जैनी जिनभावना, दौलति अतुलित व्यक्ति॥६२॥

इतिश्री भकार संपूर्ण। आगैं मकार का व्याख्यान करै है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

महादेवं महावीरं मान माया विदूरगं।
मिथ्या मार्ग निहंतारं, मीनध्वज निपातकं॥ १॥
मुक्तिमूलं महाधीरं, मेधापारं सदोदयं।
मैत्र्यादि भावना रूपं, मोह रागादि वर्जितं॥ २॥
मौनारूढं महाज्ञानं, मंगलं विश्वपारगं।
मः प्रकाशं चिदाकाशं, वंदे वीरं शिवाधिपं॥ ३॥

— चौपई —

महाज्ञान मतिवान जु मुनी, जपैं तोहि तू है अतिगुनी।
महाराज सरणागत पाल, पतित उधारन दीन दयाल॥ ४॥
महा ऋद्धि अति सिद्धि निवास, मन बुद्धि कैं जु परैं अतिभास।
रटहि महेंद्र नरेंद्र खगेंद्र, महित महापति तू हि मुनेंद्र॥ ५॥
सदा मनोहर अति हि सुरूप, मृत्युंजय भयहर भवरूप।
मद मच्छर (मत्सर) मनमथ मलनास, महाव्रती अतिधृति अतिभास॥ ६॥
महामहेश्वर अति मरमज्ञ, महा प्रभू सुविभू अतिविज्ञ।
मरमी धरमी देव महंत, मही नीति धारी भगवंत॥ ७॥
मनुपति मुनिपति जगपति जती, करहि मनीषी सेवा अती।
नांव मनीषा बुद्धि जु कहैं, महाकांति तोकौं मुनि चहैं॥ ८॥
महामहीप मही कौ धनी, महिमा सागर नागर गुनी।
महामहेश जिनेश नरेस, जपहि सुरेश रसेस असेस॥ ९॥
मन मरकट के रोधक साध, मदनांतक अति मगन अबाध।
महामंत्र तेरौ उर धरैं, महापद्म पदमा तुहि वरैं॥ १०॥
महसां पति महतां पति गुरू, महाध्वर धरो अतिव्रत धुरू।
महामहर्षि महाशय प्रभू, महापराक्रमधारी विभू॥ ११॥

— छंद नाराच —

महातमा महा कलेसनासको महा प्रभू,
महागुणी गुणाकरो युगादि देव है विभू।
महा जु कर्म नासनो महेशता धरो हरो,
महामनोहरांग है महा गुरू रमावरो॥१२॥

मलाहरै कलाधरै मनोज दंडको महा,
न मत्सरी लहैं जु जाहि ज्ञानवंतनैं लहा।
मलीमसा मनामलीन नां लहैं अनंत जो,
मनुक्ष देव दानवा भजैं अनादि कंत जो॥१३॥

मरुस्छली दुनी मझार वारिदो अछेव सो,
सदा सुसर्वमध्य है, महोत्तमो अभेव सो।
महाकृती निराकृती महासुलच्छि दायको,
मयाकरो व दयाकरो अनामको असायको॥१४॥

— दोहा —

मठमंडप मैं मुनिवसैं, जपैं तोहि दिन राति।
मगन दसा दासांनि की, अतुलित अचल लखाति॥१५॥

मगरमछ सम मोह है, भवसागर कै मांहि।
तो विनु पार न पाइए, तू तारक सक नाहि॥१६॥

मकरध्वज मनमथ मदन, कहैं कांम कौं नांम।
काम मनोभव है सही, कामजीत तू राम॥१७॥

मलिन भाव सब ही हरै, मघवा पूजित तू ही।
मधु मांसादि निषेधकौ, मधुसूदन जग दूहि॥१८॥

मदसूदन अघसूदनो, ममता हर महिपाल।
मधुकर चरन सरोज के, मुनिवर मगन बिसाल॥१९॥

निज रस अति मकरंद जो, पीवहि स्वरस छकेह।
भिक्षा लेकरि मधुकरी, तोही मांहि पगेह॥२०॥

महिषी इंद्रतनी सदा, जपै तोहि कौं ईश।
महल न महिला रावरै, तू जोगी जगदीस॥ २१॥

मल्ल मोह हारी तु ही, मल्लनाथ जगनाथ।
अतिबल अतिदल अचल तू, गुन अनंत तुव साथ॥ २२॥

मलमूत्रादि भर्‌यो इहै, देह अपांवन निंद्य।
तोहि छुवैं कैसैं प्रभू, तू अनिंद्य जगबंद्य॥ २३॥

मदिरा सम ममता इहै, मोहमयी अघरूप।
तू हि निवारै जगगुरू, रमता रांम अनूप॥ २४॥

— छंद सालिनी —

माया काया, नांहि जाया जु तेरै, मारो कामो, नांहि तेरै जु नेरै।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी
मातंगी जे पूजि हिंसा जु धारा, ते तोकौं नां पांव ही धर्म हारा॥ २५॥

मार्गो तुही, मार्गणा तुहि गावै, मांनी जीवा, तोहि नांहि जु पावै।
मातंगा हू, तोहि ध्याय जु देवा, होवैं तेरो शक्र धारैं हि सेवा॥ २६॥

मात्रा गात्रा, नांहि छात्रा जु तेरै, माया जालो, नांहि तेरै जु नेरै।
माता ताता, नांहि भ्राता हु तेरै, मा लक्ष्मी जो, शक्ति तेरै हि नेरै॥ २७॥

मानो नांही, तो हि पावै कदापी, मारैं जीवा, ते न पांवै जु पापी।
मांसाहारा, नांहि भक्ती जु धारैं, तेरे दासा जीव हिंसादि टारैं॥ २८॥

माहे पोसे, तीर बैठा नदी कैं, तोकौं ध्यावैं साधु भ्रांती न जीकौं।
मापे लोका, लोक तैं ही सवैही, तोकौं स्वांमी, सर्व सोभा फवै ही॥ २९॥

माला फेरैं, नांम तेरौ जु लेवैं, गार्हस्था जे, दांनं चार्‌यौं हि देवैं।
साधू ध्यानारूढ ह्वै तोहि ध्यांवैं, योगारूढा, अंतरात्मा जु गांवैं॥ ३०॥

— चौपई —

मास मास उपवास जु धारि, साधु तपोधन तत्व बिचारि।
भजैं तोहि तजि जग परपंच, तो विनु सर्व गन्यों जग रंच॥ ३१॥

माहिर सब कौ तू जगराय, तेरे माहिर हैं मुनिराय।
जग जन तोहि न जांनि सकैं हि, विनु जांनें भववन भटकैं हि॥ ३२॥

माधव तूहिउ माधव भजैं, मा लक्ष्मी तोकौं नहि तजैं।
चिद्रूपा शक्ती अनुभूति, सो लक्ष्मी आनंद विभूति॥ ३३॥

अति माधुर्य बैंन तू कहैं, तोहि महामुनिवर अति चहैं।
माल न तो सौ त्रिभुवन मांहि, अविनासी तू अतिगुन मांहि॥ ३४॥

मित भासी तू अमित अपार, मिष्ट बचन तेरे अति सार।
मित्र न तो सौ जग मैं और, तू मिथ्यात हरन जगमौर॥ ३५॥

मिश्रभाव जोमैं नहि नाथ, तू केवल निज रूप अनाथ।
मिलै न मिल्यो मिलि है तुव मांहि, परपंच जु तैरै कछु नांहि॥ ३६॥

अमिल मिलापी तू हि दयाल, मिलै मुनिनि सौं तू हि कृपाल।
मिलि जु रह्यो सब ही सौं तू हि, सकल व्यापको लोक प्रभू हि॥ ३७॥

— इन्द्रवज्रा छंद —

तेरौ मिलापा कबहू न छूटै, तू ही मिलापी कबहू न तूटै।
मिटै मिटायो कबहू न स्वांमी, नाथा अखंडा अति ही सुनांमी॥ ३८॥

तू हि मिलापी मुनिवर्ग कौ है, तिष्टै जु नागौंपति सर्ग कौ है।
सर्गा जु स्त्रिष्टी तु ही स्त्रिष्टीनाथा, शुद्ध स्वरूपो पदमा जु साथा॥ ३९॥

मित्रो जु तू ही प्रमिताक्षरो है, विशुद्ध भावो परमाक्षरो है।
मिल्यो न तोसौं इह जीव पापी, तातैं रुल्यो जु अति ही संतापी॥ ४०॥

तो सौं मिले जे मुनि सिद्ध हूये, लिये न जन्मा कबहू न मूये।
कहैं जु मीनध्वज काम नांमा, निःकाम तू ही अति धाम रांमा॥ ४१॥

— कुंडलिया छंद —

मीनौ जलचर नांम है, जल विनु छांडै प्रांन,
ऐसी प्रीति जु तोहि सौं, करै मुनि मतिवांन।

करैं मुनि मतिवांन, तो विना मुकति नहि रहई,
भीग्यो तुव रस मांहि, द्वैत भावो नहि लहई।
लग्यो तोहि सौं रंग, और वस्तु जु नहि लीनो,
करै कलोल जु सोई, नाम है जलचर मीनो॥ ४२॥

पापी तोकौं नां लहैं, खगमृगमीन हतैं जु,
जीव दया पालैं प्रभू, ते जन तोहि लहैं जु।
ते जन तोहि लहैं जु, होय तेरे निज दासा,
तुव परसाद जिनिंद, पावई तुव पुरि वासा।
निद्रा भुख सु जीति, साधु ध्यांवैं हि प्रतापी,
धरमी तोहि भजैं जु, नां लहैं तोकौं पापी॥ ४३॥

आंखिनि मींट जु नां लगैं, अनिमेषा हैं देव,
तू देवनि कौ देव है, दैं स्वांमी निज सेव।
दैं स्वांमी निज सेव, हम जु तो विनु अति भरमें,
तुझहि विसारि दयाल, मूढ़ ह्वै बांधे करमें।
तू है जगत उधार, तारि अपनें अनुचर गनि,
साधु सुध्यांवहि तोहि, नां लगै मींट जु आंखिनि॥ ४४॥

मीत जु तो सम और नां, तेरी प्रीत जु साच,
चिंतामणि जगमणि तु ही, और देव सम काच।
और देव सम काच, मूढ़ जन तिनकौं सेवैं,
तेरे भगत अनन्य, तोहि भजि निजरस लेवैं।
कामजीत मनजीत, नाथ तू है जगजीत जु,
कहवे के जगमीत, औ नां तो सम मीत जु॥ ४५॥

मीठौ भजन जु रावरौ, और न कोई मिष्ट,
मुक्तो वंधन तैं तुही, भव विमुक्त जग इष्ट।
भव विमुक्त जग ईष्ट, मुकति कौ मूल जु तू ही,
मुनिवर ध्यांवैं तोहि, तू हि है जगत प्रभू ही।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी

भजहि मुमुक्ष मुनीश, ज्ञानमय तू हि जु दीठौ,
मुकट जगत कौ तू हि, रावरौ भजन जु मीठौ॥४६॥

मुद्रा शांत जु रावरी, मुसकनि मुलकनि नांहि,
मुख तेरौ अविकार है, जा सम और जु नांहि।
जा सम और जु नांहि, नाथ उनमुद्रित सोई,
मुसै मुननि कौ चित्त, जाय मुसियो नहि जोई।
भजैं जाहि वड भाग, जाहि पांवै नहि क्षुद्रा,
मार्गदर्शक :- आ
मुद्रित व्याकुलता होय, रावरी शांत जु मुद्रा॥४७॥

मूरति तेरी मनहरा, ज्ञान मूरती तू ही,
है आनंद जु मूरती, त्रिभुवन कौ जु प्रभूहि।
त्रिभुवन कौ जु प्रभूहि, मूल धरमनि कौ तूही,
देव अमूरति तू हि, मूढमति तोतैं दूही।
मूरति तेरी मूरति ....,
....॥४८॥

मूका तेहि जु नां जपैं, तोहि जु करि गुनगांन,
मूरिख तोहि जु नां लहैं, तू ज्ञानी गुनवांन।
तू ज्ञानी गुनवांन, करहि उनमूलित कर्मा,
मूलोन्मूल करे जु, तोरि डारे सव भर्मा।
मू: वंधन कौ नांम, वंध सव कीनें भूका,
मूरति तेरी पूजि, नां जपैं तेहि जु मूका॥४९॥

तिनकै मूंड मुडाइयां सिद्धि न कोई होय,
तोहि न ध्यांवैं मूढ धी, पगे जगत मैं सोय।
पगे जगत मैं सोय, वोधकर तू नहि जांन्यों,
कंद मूल फल खाय, भाव करुणामय भांन्यों।
मेधा कौ नहि लेस, लेस नहि श्रुति कौ तिनकै,
भजन विना किह कांम, मूंड मुडायां तिनकै॥५०॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— छप्पय —

मेघ श्रवै जल धार, तू हि ज्ञानामृत धारा,
ताकी रहनि न ठीक, तू हि है नित्य विहारा।
वह निपजांवै धांन, तू हि उपजावै ध्याना,
वह देहगौ कदापि, तू हि निहकपट विग्याना।
अति चपल दामिनी मेघ कैं, तेरै कमला निश्चला,
प्रभु क्षणक चाप है जलद कौ, ज्ञान चाप तुव अतिबला॥५१॥

मेर धरम कौ तू हि, मेर वांधै धरमनि कि,
मेचक भाव मलीन, मलिन परणति करमन कि।
मेचकता नहि कोइ, शुद्ध तू बुद्ध महाअति,
जगत देव अतिभेव, परम तत्व जु तू जगपति।
सकल मेदनी कौ जु नाथा, मैत्री प्रमुख जु भावना,
सव कहइ विमल अति अचल तू, भाव तिहारै पावना॥५२॥

मैथुन है अतिनिंद्य, ताहि त्यागैं तुव दासा,
मैंन कहावै काम, कामहर परम प्रकासा।
मोह मल्ल कौ जीति, मोक्ष कौ पंथ जु तू ही,
मन मोहन तू देव, सर्वगत तू हि प्रभू ही।
मोद स्वरूप अनादि अनिधन, अति प्रमोद भावो तु ही,
मोकौं जु तारि भव जलधि तैं, नाव तू हि जगदीस ही॥५३॥

— सोरठा —

मोहे जीव अपार, मोह करम नैं नाथ जी।
तू हि उतारै पार, पारंकर परतक्ष तू॥५४॥

मोसे जीव अपार, कैसैं मैं तिरिहौं प्रभू।
तू हि करै निसतार, मोसे पापनि कौ महा॥५५॥

मौलि मुकट कौ नांम, मुकट जगत कौ तू सही।
मौड सकल कौ रांम, मौज न तेरी सी कहूं॥५६॥

मौजी तो सम और, तीन लोक मैं नांहि को।
करै करम कौ चौर, मौर्वी चाप न रोपनां॥५७॥

मौनारूढ मुनीश, ध्यावैं मंगल रूप तू।
मंत्र मूरती ईश, मंत्र न तंत्र न यंत्र नां॥५८॥

मंगल कारी तूहि, मंता संता कंत तू।
मंद न तूहि प्रभूहि, मंदमती तोहि न लखैं॥५९॥

मंदिर गुन कौ ईस, सीस जगत कौ तू ही।
मंगलीक जगदीस, मंडन त्रिभुवन कौ महा॥६०॥

मंडै व्रत अनादि, खंडै अव्रत कौं तू ही।
गुन मंडित तू आदि, तो विना बादि सवै जगत॥६१॥

मुंचि न मौकौं नाथ, मंक्षु उधारौ भव थकी।
जग जीवन अतिसाथ, अंजन मंजन रहित तू॥६२॥

मंद कषाई जीव, भक्ति भाव सोई लहै।
तीव्र कषाय अतीव, धारै सो, तोहि न लहै॥६३॥

मः कहिये श्रुति मांहि, शिव कौ नांम प्रसिद्ध है।
तो विनु और जु नांहि, शिव शंकर जग गुर तुही॥६४॥

मः कहिये फुनि चंद, त्रिभुवन चंद मुनिंद तू।
सेवैं इंद नरिंद, तोहि फनिंद मुनिंद हू॥६५॥

मः वेधा कौ नांम, तू ही विधाता विधि करै।
पूरब बंध जु रांम, काटै तू औरैन को॥६६॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

महादेव महाराज, मारग प्रकास तू,
माया तैं वितीत मिथ्या भाव तैं रहित है।
मीन केतु जीति मुनि ध्यावैं, तोहि मूल तूही
मेदनी कौ नायक अनंतता सहित है।

मैत्र्यादिक भावना प्रकासै मोह जीतक तू
मोह तुल्य जीव कौ न दूसरौ अहित है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
मौलि सव लोक की जु मंगल स्वरूप नाथ
मः प्रकास है अनास ईसुर महित है॥६७॥

— कुंडलिया छंद —

माता पद्मा शक्ति जो, आतम सत्ता जोइ,
चिद्रूपा गुण व्यक्ति जो, चिनमुद्रा है सोइ।
चिनमुद्रा है सोय, वस्तुतैं एक स्वरूपा,
भेद भाव नहि काय, वस्तुता सोइ अनूपा।
प्रभु की परणति शुद्ध, शुद्धता सोय विख्याता,
शिवा आर्हंति सिद्धि, शक्ति जो पदमा माता॥६८॥

— दोहा —

सो गौरी स्यामा सही, रमा राधिका सोइ।
भवा जिनेंद्रा ऋद्धि जो, सो दौलति हू होइ॥६९॥

इति मकार संपूर्ण। इति श्री भक्त्यक्षर मालिका वावनी स्तवन अध्यातम बार खड़ी नाम ध्येय उपासना तंत्रे सहस्त्रनाम एकाक्षरी नाम मालाद्यनेक ग्रंथानुसारेण भगवद्भाजनानंदाधिकारे आनंदरांम सुत दौलति रामेन अल्प बुद्धिना उपायनी कृते पकारादि मकारांत पंचाक्षर प्ररूपको नांम चतुर्थ परिच्छेद ॥४॥ आगैं यकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

यशो रासिं महावाहुं, याञ्चा सर्वपूरकं।
यियासा रहितं नित्यं, निश्चलं लोक वत्सलं॥१॥

यी मात्रा भासकं वीरं, युक्तं गुणगणैः सदा।
यूथाधिपति मीशानं, निजवोध धरं सदा॥२॥

ये रागादि विनिर्मुक्ता, स्ते हि ध्यायंति तं परं।
यै र्ध्यातं मुनिभिः शांतै, स्तैर्प्राप्तं परमं पदं॥ ३॥

योग मार्ग प्रदातारं, यौगिकी ऋद्धि दायकं।
यं भजंति सदा सर्वे, तं वंदे परमेश्वरं॥ ४॥

यः प्रभुः सर्व लोकना, मीश्वरः जगदीश्वरः।
सुरासुरनराः सर्वे, यस्याज्ञाकारिणः सदा॥ ५॥

— दोहा —

यदा कहावै जा समैं, तोहि भजैं मुनिराय।
तदा कहावै ता समैं, भ्रांति न एक रहाय॥ १॥

यत्कहिये जातैं प्रभू, भजैं तोहि जगत्यागि।
जग असार तू सार है, तोमैं रहिये पागि॥ २॥

तत्कहिये तातैं प्रभू, देहु भक्ति निहकाम।
सर्व त्यागि तोकौं भजैं, ऐसी बुद्धि दै रांम॥ ३॥

यस्य कहावै जाहि कै, उर निवसै तू देव।
तस्य कहावै ताहि कै, ह्वै आनंद अछेव॥ ४॥

यस्मिन्कहिये जा विषै, तेरी भक्ति जु नांहि।
तस्मिन्कहिये ता विषैं, गुण गण नांहि रहांहि॥ ५॥

— कुंडलिया छंद —

यति नाथो अतिदेव तू, यति पति यति गण ध्येय,
यति नायक सुयतीश्वरो, यति पालक यति सेय।
यति पालक यति सेय, सेवही जाहि यतिंद्रा,
यति गुरगुरू दयाल, देव यतिभेस मुनिंद्रा।
यतिराजो यतिनाव, धारही यतिवर साथो,
यति वर्गनि कौ तात, देव तू यति अतिनाथो॥ ६॥

यति तारै जग देव तू, यज्य यजन यज्ञेस,
यज्ञास [illegible] यजैं तोहि देवेस।
यजैं तोहि देवेस, यज्ञ है तेरी सेवा,
यज्ञ ध्यान अगनीहि, होमिये कर्म अछेवा।
अति दानो सो यज्ञ, शील यज्ञो अघ टारै,
यज्ञ पुरुष है तू हि, देव जग तू यति तारै॥७॥

— दोहा —

याज्ञक साधु मुनीश्वरा, यज्ञ तिहारौ ध्यांन।
यश तो सम औंर न धरै, यशी न तो सम आंन॥८॥

नांम जनेऊ कौ कहैं, पंडित यज्ञुपवीत।
धारि जनेऊ गृहपती, त्यागैं सकल अनीत॥९॥

द्विज क्षत्री वणिक जु कुला, एहि जनेऊ लेंहि।
शूद्रनि कौं लेवौ नहीं, इह आज्ञा गुरु देहि॥१०॥

तोहि भज्यां त्रिकुला भला, विना भजन सव निंद्य।
निंदि कुला हू ध्याय कैं, हौंहि जगत करि बंदि॥११॥

यथाख्यात चारित्र दें, नाथ तिहारी भक्ति।
केवल दाता भक्ति है, भक्ति धरै अति शक्ति॥१२॥

— छंद मोती दांम —

तु ही यम नेम जु आदि सवैहि, प्रभू वसु जोग विधी हि कहै हि।
तु ही यम नासक मोक्ष प्रकास, महायत नागर यत्र विभास॥१३॥

लखैं मुनि यत्र जु यत्र जु नाथ, सु तत्र जु तत्र जु तू हि अनाथ।
यव प्रमिता प्रतिमा हु तिहारि, कहैं अति पूजित सूत्र मझारि॥१४॥

जपैं जु यमी नियमी मुनिराय, भजैं हि शमी जु दमी जतिराय।
रटैं नहि तोहि सु ते हिय अंध, मिथ्यात हि राचि करै अघबंध॥१५॥

यथा प्रभु अंध अधार सुयष्टि, तथा भवि कै तुव भक्ति हि इष्टि।
न नारक यातन दास लहैं हि, न चाहन सुर्गहु कौ जु कौं हि॥१६॥

चहैं तुव भक्ति न चांहहि भोग, अयाचक रूप गहैं निज जोग।
न याति न पांति न न्याति निकोय, सबै तजि लोक भजैं मुनि होय॥१७॥

— दोहा —

या कहिये जु विधात कौं, तू हि विधाता देव।
या तेरी परणति सही, चिद्रूपा अतिभेव॥१८॥

यावत तोहि न पांवहीं, तावत भव भ्रम होय।
यावत कहिये जो लगैं, जीवन उधरै सोय॥१९॥

याभ्यां कहिये दोयकरि, रुलै जीव संसार।
राग दोष दोऊ अरी, जीतैं मुनि अविकार॥२०॥

कहै यियासा श्रुति विषै, गमनेछा कौ नांम।
गमनागमन वितीत तू, निश्चल निरमल रांम॥२१॥

यी इह चउथी मात्रिका, तू हि प्रकासै देव।
धरै अव्ययी भाव तू, अक्षय रूप अछेव॥२२॥

युक्ति प्रकासक वस्तु तू, युगाधार युगधार।
युग कहिये द्वै कौं सही, तू द्वय रूप अपार॥२३॥

निराकार साकार तू, दरसन ज्ञान अभेव।
युगल रूप अतिरूप तू, युगमभाव अतिभेव॥२४॥

तू सामान्य विशेष है, अस्ति नास्ति परकास।
नित्यानित्य अनेक तू, एक रूप अतिभास॥२५॥

युग युग तेरौ आंसिरौ, नाथ युगादि अनंत।
युक्तायुक्त विभेद सहु, तू हि विभासै संत॥२६॥

युष्माकं कौ अर्थ इह, तुम्हरै नांहि विकार।
अस्माकं कौ अर्थ इह, हमकौं करि भवपार॥२७॥

युषमत असमत शब्द सहु, तू ही प्रगट करेय।
शब्दातीत अजीत तू, चेतन भाव धरेय॥ २८॥

युक्ति न तेरी सी कहूं, युक्ति न तौ पास।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
निरवांणी निरदुंद तू, अति आनंद प्रकास॥ २९॥

युवा बाल वृद्ध जु नहीं, प्रभू युगंधर तू हि।
युगल रीति भासक तु ही, तू युगबाहु प्रभू हि॥ ३०॥

युग जुडे कौ नांम है, युगसम लंबी वाहु।
महाबाहु तू देव है, परम स्वरूप अथाह॥ ३१॥

युग प्रमांण धरती लखैं, लखि लखि भूमि सुसाध।
द्रिष्टिपूत पाव जु धरैं, धारैं भगति अगाध॥ ३२॥

यूथ समूह जु नांम है, सर्व समूह प्रकास।
कर्म यूथ टारै तू ही, यूथ गुननि के पास॥ ३३॥

— बसंत तिलका छंद —

यूनां तु ही जु अतिवीर सुधीर स्वामी,
तू ही जु धर्ममय यूप धरै सुनांमी।
ये तोहि चित्त करि भव्य जना जु ध्यावैं,
ते शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध स्वरूप पावैं॥ ३४॥

ये तोहि भूलि विषयारस मांहि राचे,
ते लोक मांहि बहु रूप धरे जु नाचे।
ये है अनन्य अति धन्य जु तोहि सेवैं,
ते त्यागि राग अर दोष सुसिद्धि लेवैं॥ ३५॥

— सोरठा —

येन शब्द कौ अर्थ, जा करि भासैं पंडिता।
जा करि त्यागि अनर्थ, लहिये शिव सो तू सही:॥ ३६॥

येन अर्थ फुनि और, जानैं तू ध्यायो सही।
सो हूवो जगमौर, भव भरमण तानैं हर्यौ॥ ३७॥

येन कहैं जा साथ, ज्ञान विराग विवेक है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
ताकै भक्ति सुनाथ, उपजै तेरी अद्भुतो॥ ३८॥

— दोहा —

येषां कहिये नाथजी, जिनकै भक्ति जु होय।
तेषां कहिये तिनहि कै, तत्व बोध है जोय॥ ३९॥

यैः कहिये जिनकरि तुझैं, पांवैं दीन दयाल।
ते रतन त्रय दे हमैं, सरणागत प्रतिपाल॥ ४०॥

यैः कहिये फुनि जिनि मुनिनि, तोहि जु ध्यायो देव।
तैः कहिये तिन ही सही, पायो पद जु अछेव॥ ४१॥

यैः कहिये जिन सहित प्रभुः, तो सौं भेटैं नाथ।
सो ज्ञानादि प्रबंध दै, बंध हरन जगनाथ॥ ४२॥

योगी योग प्रकास तु, योगीश्वर अवनीस।
योज्ञ तु ही अति शुद्ध है, योगारूढ मुनीस॥ ४३॥

योग शास्त्र भासी तु ही, योग तंत्र योगीश।
जाहि भजैं योगी महा, सो तू ही भोगीस॥ ४४॥

तजि संयोग सबंध जे, योग धरैं मुनीराय।
संसलेष संबंध हू, तिनकै नांहि रहाय॥ ४५॥

समुवायो जु सवंध है, सो प्रगटै तिनकै हि।
तेरी भक्ति प्रशाद तैं, कर्म कलंक दवै हि॥ ४६॥

योद्धा तेरे दास हैं, जीतैं कर्म अनादि।
युद्ध करन समरथ नही, तिनसौं खल रागादि॥ ४७॥

योग गम्य तोकौं कहैं, योगिनि तैं हु अगम्य।
योनि लक्ष चौरासि तैं, टारै तू हि जु रम्य॥ ४८॥

ब्रह्मयोनि निरयोनि तू, प्रभू अयोनी शंभु।
अति योजन दूरा तुही, अति नीरै विनु दंभ॥४९॥

यौं कहिये द्वौ दोष हैं, राग द्वेष अनादि।
तू सब दोष वितीत है, निरदोषी प्रभु आदि॥५०॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

नही यौवनारूढ नांही जु वृद्धो, तु ही नित्य रूपो प्रभू है समृद्धो।
तु ही यौगि की देव देवै जु दिक्षा, गहैं सर्व जोगीश्वर तेरि (हि) सिक्षा॥५१॥

इहै धर्म ध्याना सुयंत्र स्वरूपा, तू हि देव यंत्री नियंत्री अनूपा।
प्रभू है स्वतंत्रा अमंत्रा अनादी, सबै सिद्धि यंत्रा तु ही स्यादवादी॥५२॥

नही यंत्र मंत्रा नही कोय तंत्रा, तु ही यंत्र मंत्रा स्वतंत्रा अमंत्रा।
विना नाम तैरे नही और मंत्रा, विना ग्रंथ तेरे नहीं और तंत्रा॥५३॥

— छंद त्रिभंगी —

प्रभू तू हि अयंत्रा परम सुमंत्रा, प्रगट सुतंत्रा अविकारी।
सव यंत्र सुमंत्रा, सकल जु तंत्रा, तू हि निमंत्रा अधिकारी।
इह देह हु यंत्रा, जगत हु यंत्रा, लिखित हु यंत्रा तू भासै।
फुनि सकट हु यंत्रा, वजइ सुयंत्रा, तू हि नियंत्रा अघनासै॥५४॥

अति तू हि जु यंत्री, अतुल जु मंत्री, यंत्र नियंत्री, विनु यंत्रा।
है सिद्ध जु यंत्रा, अजपा मंत्रा, योग जु तंत्रा, अति तंत्रा।
सव भेद बतावै, विधि जु सुनावै, तत्व जतावै जिनराया।
अघ यंत्र नसावै, यंत्रि कहावै, तंत्र जु भावै, सुखदाया॥५५॥

— दोहा —

यं कहिये जिह नैं तु ही, करै आपुनौं दास।
तं कहिये तिह नैं प्रभू, देय आपुनौं वास॥५६॥

यः कहिये जो जीव भवि, तोहि भजै भगवंत।
सः कहिये सो सीघ्र ही, पावै ज्ञान अनंत॥५७॥

य: कहिये यमराड़ु कौं, तू यमहर भवतार।
य: कहिये फुनि यान कौं, ज्ञान यान अविकार॥५८॥

यान पात्र भव सिंधु की, तू हि उतारै पार।
य: कहिये फुनि यत्न कौं, तू अयत्न गुन धार॥५९॥

य: कहिये फुनि त्याग कौं, तू त्यागी अति देव।
अति भागी अविकार तू, दै दयाल निज सेव॥६०॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया —

यतिनि कौ नायक तू यतन करैया देव,
यान पात्र लोक कौ तु ही हि भवतार है।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
यियासा न तैं कोऊ, यी प्रकास तू हि होऊ,
युक्ति कौ निवास यूथ दायक अपार है।
तोहि ये भजैं न मूढ़, ते न पावैं तत्व गूढ़,
यैंन सुन्यौ नाथ जस ते न पावैं पार है।
योग कौ प्रकास देव यौगि की जु दिक्षा देय,
यंत्र मंत्र नांहि कोऊ, य: प्रभास सार है॥६१॥

— कुंडलिया छंद —

या अनुभूती रावरी, हरै यामिनी भ्रांति,
सो शुद्धा तुव भानु की, किरण जु परम प्रशांति।
किरण जु परम प्रशांति, मोह तिमर जु कौं नासै,
भोग भावना मेटि, बोध दिवसैं जु विभासैं।
कर्मासुर क्षयकार योग मूला जु विभूती,
भाषै दौलति ताहि, रावरी या अनुभूती॥६२॥

इति यकार संपूर्ण। आगैं रकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

रजोहरं रमानाथं, राज राजेंद्र सेवितं।
रिक्तता रहितं पूर्ण, धर्म रीति प्रकासकं ॥ १ ॥

रुक्माभं रुप लावण्य, भूषितं लोक भूषणं।
रेत स्पर्शादिक रहितं, वंदनीयं मुनीश्वरैः ॥ २ ॥

रोगादि रहितं शुद्धं, रौरवादि निवारकं।
रंगरागादि निर्मुक्तं, रः प्रकाशं नमाम्यहं ॥ ३ ॥

— उपेंद्र वज्रा छंद —

भाष्यो रकारो धन कौ जु नांमा, नांही रकारो विनु नांम रामा।
रकार भाष्यो फुनि वैश्रवो हू, सोऊ रटै जु अर वासवो हू ॥ ४ ॥

रम्यो रमानाथ रमाधवो तू, मृत्यु हरै नाथ रसायनो तू।
रमा न वाह्या चित शक्ति तेरी, सोई रमा है प्रभु तोहि नेरी ॥ ५ ॥

दोसा रसा नां रस वाक्य तू ही, रत्नादि दाता जग कौ प्रभू ही।
न रत्न कोई विनु आत्म भावा, रत्नत्रया तू हि धरै स्वभावा ॥ ६ ॥

पृथ्वी रसा है तु हि भूपती है, भूमी समाधी तुहि दे यती है।
रसातलैं जांहि सु तेहि मूढा, जे तोहि त्यागे कुविधी हि रूढा ॥ ७ ॥

रक्षा वतावै सव जीव की तू, प्रीति छुडावै जु अजीव की तू।
रती हु मात्रा नहि भ्रांति जाकै, तोमैं रच्यो जू भवि जीव ताकै ॥ ८ ॥

तोकौं रच्यो नांकि नही कदापी, तू ही अनादी प्रभु है उदापी।
रचै न तूही भव भ्रांति मांही, तोसौं रचैं जे अभव्या सु नांही ॥ ९ ॥

— दोहा —

रत्नपती पूजैं चरन, रत्नगर्भ भगवांन।
रतनेश्वर अति रत्न धर, रत्न न ता सम आंन ॥ १० ॥

रमण रमा कौ जो प्रभू, रति अरति न एकोहि।
अति सुशील जगदीस जो, अविचल सुविवेकोहि ॥ ११ ॥

रमणीकौ रस मूल तू, रमि जु रह्यो सब मांहि।
रमैं आप मांहें तु ही, रज रहितो सक नांहि॥ १२॥

रती न जाकी सी धरै, तीन लोक मैं और।
रतिपति जीत्यो जाहि नैं, सो त्रिभुवन को मौर॥ १३॥

— सवैया - ३१ —

रघुवंस आदि केई वंस को उधारक तू,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
रघुनाथ नाथ तू ही तीन लोक नाथ है।
रणधीर रणवीर रद भांजे के जु ज्ञान
चाप धारक करै हि तुव साथ है।
रटैं तोहि इंद चंद रटैं जु मुनिदं सव
रटैं अहमिदं तू, जिनिंद वड हाथ है।
तारै भवसागर तें, नागर निरंजन तू,
भव दुख पावक वुझायवे कौं पाथ है॥ १४॥

— दोहा —

रव कहिये उच्चार कौं, नांम उच्चारैं तेहि।
रहसि लहैं निज रूपकौ, भव जल कौं जल देहि॥ १५॥

रा कहिये धन कौं सही, निज धन तू हि जु आदि।
राग रहित अविकार तू, रांम सुनांम अनादि॥ १६॥

रामा तेरै नांहि को, रमा न रामा होय।
रमा रावरी शक्ति है, राधा कहिये सोइ॥ १७॥

राधा दूजि नांहि को, निज सत्ता है जोई।
शिवा आर्हती शक्ति जो, सो गोपी हू होय॥ १८॥

राका पूरणमासि है, राका कौ है चंद।
तैसौ सीतल चित्त करि, तोहि भजैं जु मुनिदं॥ १९॥

राजा सब कौ तू सही, राव जगत कौ तू हि।
राय न तो सम दूसरौ, रावर एक प्रभू हि॥ २०॥

राचै तो मैं जोगिया, रारि भारि सब त्यागि।
रासि गुननि की तू सही, रहिये तोमैं पागि॥ २१॥

— कुंडलिया छंद —

राख समाना भूति जो, राखी है न सोय।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
राग करैं यां सौं जिकै, ते मति हीन जु होय।
ते मति हीन जु होय, राति दिव यामैं पागे,
धंध भाव मैं राचि, तोहि ध्यावैं न अभोगे।
चाहैं तोहि सुभव्य, तेहि पावैं निजग्याना,
चाहैं मूरख लोक भूति जो राख समाना॥ २२॥

— दोहा —

राजस तामस सात्विका, तू धारै नहि एक।
निज स्वभाव राजिंद तू, धारै अतुल विवेक॥ २३॥

राष्टर देस जु नांम है, देस असंखित होय।
तेरै लोक प्रमांण तू, ज्ञान मात्र है सोय॥ २४॥

— छप्पय —

त्रिभुवन चंद जिनंद, राहु सम मोह न गहई,
क्षयी भाव कबहू न, तोहि नहि कलमष लहई।
तू निकलंक दयाल, तिमरहर भ्रांति निसाहर,
जपैं निसाकर तोहि, जडत हर तू प्रभाकर।
अस्त भाव कबहू न होई, उदयरूप निति देखिये,
नहि रक्त पीत सित स्याम तू, हरित न अवरण लेखिये॥ २५॥

रिद्धैं कर्म अति भर्म, नाथ तुव दास जु देखें,
रिपु नहि इनसे और, रीति इनकी हि जु पेखैं।
रस रीसि जु द्वै भाव, इनहि उपजाये मोमैं,
नादि काल तै देव, मोहि डार्यो इनि दो मैं।
विषयकषाय लगाय मो कौं, दाबे अति गुन निज मई,
जडमय पंजर मांहि मूंदिवि, भटकायो चहुगति दई॥ २६॥

विषय स्वाद कौं लागि मैं, जु रीरी अतिभाषी,
　　लखियो नांहि जु मोहि, रीति-जड़मत की रुची।
अब दै भगति दयाल, टारि सवही अघकर्मा,
　　रीझि खीजि मुनि त्यागि, तोहि ध्यांवैं तु हि पर्मा।
रीझे तेरे रस जु मांहैं, छके रावरी क्रांति मैं,
　　रीझे कर्म सवै हि तिन पैं, जे आये तुव पांति मैं॥ २७॥

— सोरठा —

रीता रहैं न दास, भरितावस्थ स्वरूप हैं।
तू पूरण गुन रास, तो सौ तू हि जु और नां॥ २८॥

— सवैया - ३१ —

रुकमाभ उज्जल तू, रुकम नहीं जु तुल्य,
　　तेरी सी विमलता जू तू ही एक धार ही।
तेरी रुख साच और झुठी सव दिसि नाथ,
　　रुज हर रुग हर करै भव पार ही।
रुकै नांहि रोक्यो कभी व्यापि रह्यो सवमांहि,
　　रूपे मुनि तोहि मांहि, लख्यो तू हि सार ही।
रुपाक झुणक करि नांचैं इंद चंद तेरै,
　　रुचि कौ समूह तू हि तारक अपार ही॥ २९॥

रुचै तू जु भव्यनिकौं, अभविनि कौं रुचै नांहि,
　　तेरी रुचि सरधा प्रतीति देहु मोहिजी।
रूप ही अरूप तेरै, तू अरूप है स्वरूप,
　　तोसौं रूपवांन कोऊ दूसरौ न होहि जी।
चेतना स्वरूप तू हि आनंद स्वरूप नाथ,
　　अटल अवाधित रह्यौ जु अति सोहि जी।
रूढ परसिद्ध नांम तू हि परसिद्ध रांम
　　गूढ अति तू हि देव वनैं सव तोहि जी॥ ३०॥

— सोरठा —

रूढि अविद्या रूप, तेरे दास न आदरै।
ह्वै तौं सौं इक रूप ध्यांवैं अहनिसि निज बिषै॥ ३१॥

रूढ कूढ इह जीव, भयो अविद्या वाय तैं।
करै जु शुद्ध अतीव, तू हि मिथ्यावाय हरि॥ ३२॥

— छंद त्रिभंगी —

प्रभू कवहु न रूठै, कवहू न तूठै, अमृत वूठै, उर मांहैं।
अतिकरत निहाला, अति हि विसाला, जगत प्रपाला, जग चाहैं।
सव तेरे दासा, तू हि प्रकासा, परम विलासा, रस रूपा।
अति वैरागी तू, वडभागी तू, अनुरागी तू, करि भूपा॥ ३३॥

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नहि रूसि जु जांनैं, रीसि न आंनै जड वुधि भानैं तू गिप्ता।
चीकन नहि रूखा, ह्वै नहि लूखा, त्रिषित न भूखा तू त्रिप्ता।
रेचक विषयनिकी, जीवनि मुनि की, हित भविजन की, तुव वानी।
सव रीति प्रकासै, कुमति विनासै, तत्व विभासै भय भांनी॥ ३४॥

— सोरठा —

रेचक पूरक और, कुंभक तू हि प्रकासई।
सव योगिनि कौ मौर, योगसिद्ध परसिद्ध तू॥ ३५॥

रेत समांन विभूति, जग की तजि योगीश्वरा।
पांवैं निज अनुभूति, तेरी भक्ति प्रसाद तैं॥ ३६॥

जैसैं रेसम कीट, वंधै अपनी लाल तैं।
तैसैं जिय धरि कीट, वंधै जगवासी जना॥ ३७॥

— सवैया - ३१ —

रेवरा समान इहै जग, भर्‌यो कूरे सौंहि,
तामैं जीव लेटियो सुमोह मदिरा पियें।

रम्य रमणीक तूही, नांहि भव रूप तू ही,
धारैं मुनिराय नांम, तेरौ आपुनैं हियें।
क्रूरे तैं निकासै तू ही, मोहमद्य दूर करै,
मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
ज्ञान कौ प्रवोधक तू शक्ति अंत ही लियें।
रेत करि डारैं कर्म भूधर कौं दास तेई
भक्ति भाव वज्ररूप, जेहि कर मैं कियें॥ ३८॥

— सोरठा —

रे रे चित्त अयांन, भजऊ भजऊ जगदीस कौं।
धारहु क्यौं न सयांन, जाकरि भव भरमण मिटै॥ ३९॥
रै रै लंपट जीव, विषयनि मैं लपट्यौ कहा।
क्यौं न भजै जग पीव, जाकरि निज रस पाइए॥ ४०॥
रोर दरिद्र जु नांम, रो भय कौ नाम जु कहैं।
तू दरिद्र हर रांम, भय कौं तू हि भयंकरा॥ ४१॥
रोग महा रागादि, हरै तू हि अति बैद्य तू।
रोप न चाप अनादि, धनुरद्धर तू अदभुता॥ ४२॥
रोकि रहे भव मांहि, मोहादिक राक्षस महा।
ते ही तुव पुरि जांहि, जे इनकौं नांसैं मुनी॥ ४३॥
रोष न दोष न राग, तैरै तू अविकार है।
वीतराग वडभाग, तेहि जेहि तोकौं भजैं॥ ४४॥
रोचिक होय मुनिंद, जपैं तोहि तजि रोस रस।
तो सौ तू हि जिनिंद, रोम रोम व्यापि जु रह्यौ॥ ४५॥
रोहणि आदि नक्षत्र, सेवैं सब तोकौं प्रभू।
नक्षत्री जु पवित्र, तो सौ तू ही और नां॥ ४६॥
रोहिणी ब्रत्त जु आदि, ब्रत अनेक कहै तू ही।
तू भगवंत अनादि, रौरवादि टारक तू ही॥ ४७॥
रौरव नर्क जु नांम, तू नरकांतक देव है।
सर्व कष्ट हर रांम, धांम ऋद्धि कौ तू सही॥ ४८॥

रौढिक सार्थिक सर्व, शब्द प्रकासै नाथ तू।
करै मोह कौ गर्द, रंगनाथ तू रंगधर॥४९॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रंकनि तैं प्रभु राव, करै तू हि दे पूजि पद।
रंक ते हि भव भाव, धारैं मिथ्या द्रिष्टि जन॥५०॥

सम्यगदृष्टि राव, और न राव त्रिलोक मैं।
तू रावनि कौ राव, रंजित नहि रागादि मैं॥५१॥

रंग विरंग जु नांहि, तेरै रंग स्वभाव कौ।
आतम अनुभव मांहि, मगन रहैं तेरे जना॥५२॥

रुधैं कर्म सवै हि, धर्म शुकल परगट करैं।
तोतैं भर्म दवैहि, रंध्र न तेरै एक है॥५३॥

रंध्र कहावै छिद्र, छलछिद्री तोहि न लखैं।
तू निरद्वंद अछिद्र, क्षुद्र न पावैं भेद तुव॥५४॥

रंच न भाव विकार, धारै अविकारी तु ही।
रंग महल ततसार, तहां विराजै धीर तू॥५५॥

रंभा थंभ समांन, भव तन भोग असार ए।
इनतैं प्रीति अयांन, करैं तोहि ध्यांवैं नही॥५६॥

रंग समाधि स्वभाव, और कुरंग सवै कहे।
चंचल कायर भाव, इनमैं निश्चलता नहीं॥५७॥

रः कहिये श्रुति मांहि, नांम कांम कौ प्रगट है।
कांम क्रोध कछु नांहि, तिनतैं भक्ति न पाइए॥५८॥

रः कहिये फुनि नाथ, अगनि नांम सिद्धांत मैं।
तपति हरण तू पाथ, कर्म दहन अगनि हु तुही॥५९॥

कहैं वज्र कौ नांम, रः ग्रंथनि मैं पंडिता।
वज्री पूजैं रांम, तो कौं तन मन लायकरि॥६०॥

शब्द नांम बुद्धिवांन, रः भाषैं ग्रंथनि विषै।
शब्दातीत सुजांन, शब्द अर्थ भासै तु ही॥६१॥

र: भाष्यौ फुनि रूप, रूपी तू न अरूप है।
रूप अरूप अनूप, तू चिद्रूप अमूरती ॥६२॥

र: रक्षण कौ नांम, रक्षक थिर चर कौ तूही।
अति विश्रांम सुधांम, गुन अनंत भगवंत तू ॥६३॥

अथ बारा मात्रा एक कबित्त मैं।

— सवैया —

रतिपति जीतैं तेरे दास, राग दोष हर,
रिपु नांहि इनसे कदापि तीन काल मैं।
रीति सर्व धर्मनि की, तु ही जो प्रकासै,
देव रुलैं नांहि, तेरे जन राजैं गुन माल मैं।
रूप कौ निवास तू ही, रेचकादि भासै विधि,
रैंनि सम भ्रांति हरै, तू न जग जाल मैं।
रोर हर रौरवादि टारै तू हि रंग नाथ,
र: प्रकास तू हि नांहि शुभाशुभ चाल मैं॥६४॥

— कुर्डलिया छंद —

स्वांमी तेरी रम्यता, रमा जु कहिये सोइ,
रति अरति जु दोऊ नही, जो चिन्मुद्रा होय।
जो चिन्मुद्रा होय, वस्तु कैवल्य स्वभावा,
भेदभाव नहि कोइ, शुद्धता शक्ति प्रभावा।
भवा भवांनी भूति, ऋद्धि सिद्धि जु अतिनांमी,
भाषैं दौलति ताहि, रम्यता तेरी स्वांमी॥६५॥

इति रकार संपूर्ण। आगैं लकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

ललितं लालसातीतं, लिखितं गणनायकैः।
नीलं लीलाधरं धीरं, नहि लुप्तं च कर्मणा॥ १॥

लूनिता शत्रवो येन, कर्म रूपा दुराशया।
शुक्ल ध्यानासिना सर्वे, सो हि जानाति तं परं॥ २॥

निर्लेपं निर्मलं वीरं, वर्जितं सकलै र्मलै।
मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
लोकनाथं महाशांतं, लौल्यता रहितं सदा॥ ३॥

लंपटै र्न क्वचिलभ्यं, लिंग रूपादि वर्जितं।
लः प्रकाशं चिदाकाशं, वंदे देवं सदोदयं॥ ४॥

— उपेंद्र वज्रा छंद —

भाष्यो लकारो श्रुति मैं जु इंद्रा, इंद्रा रटैं जु तुझ कौं मुनिंद्रा।
लकार भाषै लवणो हु जोई, तू ही स्वलावण्य मयो जु होई॥ १॥

भाषैं लकारो फुनि व्याज कौ भी, भासैं लकारो फुनि दांन सौं भी।
अव्याज तू ही परपंच न्यारा, दांनी महाभुक्ति विमुक्ति द्वारा॥ २॥

आनंद लक्ष्मी पति लोक नाथा, लक्ष्मी स्वरूपो लक्ष्मी हि साथा।
लक्षो अलक्षो अति लक्षणाढ्यो, लक्ष्मी निवासो अति ही धनाढ्यो॥ ३॥

तत्वानुभूती लक्ष्मी हि सोई, बाह्या विभूती न विभूति कोई।
स्वुर्गापवर्गा सव देय तू हि, भक्तान चाहैं जु चहैं प्रभू ही॥ ४॥

— मंदाक्रांता छंद —

लक्ष्मी नाथो, ललित अति ही, है ललामो त्रिलोकी,
चौरासी जे, लख दुखमई, जोनि तैं भिन्न लोकी।
चौरासीतैं, वह हि जु प्रभु, काढई भव्य जीवैं,
जाकौं नांमा, निज रसमई, साधु लोका जु पीवैं॥ ५॥

लज्या आदी, अति गुन धरैं, दास तेरे सुशीला,
तेरे दासा, लसहि जु अती, भक्ति मैं नांहि ढीला।

राग दोषा, तजि लव धरैं, तोहि सौं है अनन्या,
तोकौं जानैं, निज रस छकैं, साधवा ते हि धन्या॥६॥

— दोहा —

लगनि त्यागि परपंच की, लगनि लगावैं जेहि।
तो औंवलैं निज रुचि लहैं, धन्य धन्य हैं ते हि॥७॥

लहलहाट अति ज्योति तू, झलझलाट तू देव।
लसैं महा दैंदीप अति, दै दयाल निज सेव॥८॥

चित्त लगाय मुनी भजैं, तू हि लगावै रंग।
लटकनि तेरी घां करै, ते हि लहैं तुव संग॥९॥

लट्यो फट्यो इह जीव अति, लुट्यो जु भववन मांहि।
लूट्यो मोह निसाचरैं, गुन हरिया सक नांहि॥१०॥

आयो तेरै द्वार अब, स्वामी करि जु निहाल।
गुन अनंत सब द्याय तू, सरनागत प्रतिपाल॥११॥

लखै तु हि सब कौं सदा, विरला तोहि लखंत।
जे केवल निज ज्ञांन मय, तोहि लहैं ते संत॥१२॥

— चौपई —

लगे रहैं तेरै दरबार, तेई तत्त्व लहैं अविकार।
लघु दीरघ को भेद न कोइ, जपै तोहि सो तेरा होइ॥१३॥

लखिवो भिखिवौ जगसौं त्यागि, क्षमा रूप ह्वै समरस पागि।
तेरे होय लहैं निज वस्तु, लब्धि मूल तू गेर विधुस्त॥१४॥

लपिवौ रटिवौ तेरौ नांम, केवल लभ्य तु ही अति धांम।
लसित महा सोभा कौ पूंज, दीसै तू हि सघन गुन कुंज॥१५॥

लता भाव पुष्पनि की तू हि, लहरि विषै की हरइ समूहि।
लहरि स्वभाव तरंग स्वरूप, लहरी तो सम और न भूप॥१६॥

लकरी अंधे कै आधार, भक्ति अधार भविनि कै सार।
लखैं आप सम सकल जु जीव, सोई भक्ति लहै जगपीव॥ १७॥

— सवैया २३ —

लाभ अनंत अनंत सुभोग, अनंतुपभोग अनंत सुदाना,
वीरज नाथ अनंत धरै तु हि, आनंद रूप अनंत सुज्ञाना।
लालच लोभ तजे तुवदास, लहै तुव पास महामतिवाना,
लांगलि आदि भजैं सव तोहि, जपैं जतिराय तु ही भगवाना॥ १८॥

लाघवता न लहैं तुव सेय लहैं अति ही सुगुरुत्व महंता,
तू न लघू न गुरू भगवांन, तु ही प्रभु लोक गुरू भगवंत।
लाडिल तू हि जु लाल विसाल, सुलाज तुझै हमरी गुनवंत,
लाडिलि तेरी हि आनंद शक्ति जु और न लाडिलि लाल महंता॥ १९॥

लापर लोग लहैं नहि तोहि, लहैं सुप्रवांनिक वांनि लपंता,
लाधउ तू हि मुनीनि मनोहर, लाय जु लौ तुझ कौं हि जपंता।
लागि जु लागि सुइंद्रि सवादनि मूरिख लोग, तुझे न रटंता,
लाग लगाव करे जग सौं सठ जीव फिरैं जग मांहि नटंता॥ २०॥

लांक जु ऊपरि बांधि ऊषग्गा, न पाय उमग्ग सुवीरपनां कौ,
लात जु खाइय मोहतनी अति, भाव न भायउ धीरपनां कौ।
मोह हि जीति सकैं सुइ सूर न और धरैं पथ सूर पनां कौ,
लिप्त रहैं तन भावनि मांहि विरद्द धरैं वड़ क्रूर पनां कौ॥ २१॥

लिन्न भये भव भावनि मांहि, लिख्यौ श्रुति कौ न लख्यौ जग जीवनि,
लीनउ नांहि स्वभाव चिदातम लीन भये अति मांहि अजीवनि।
लीक गही नहि नाथ तिहारि हि धारिय लीक जिका भवि जीवनि,
राचि अलीकहि लीढ भये परपंचनि मांहि गनी निज जीवनि॥ २२॥

— सोरठा —

लीजे तेरौ नांम, दीजे दांन अनेक विधि।
जइए तीरथ धांम, गृहवासिनि कौं ए उचित॥ २३॥

लीन होय तुव मांहि, तज नौंमाया जाल सहु।
साधुनि कौं निज पांहि, लखनौं तू ही अद्वितीय॥ २४॥

लीला और न कोई, लीला निज परणति सही।
भेदभाव नहि होइ, द्रव्यभाव परणति विषै॥ २५॥

लीला मात्रैं तू हि, तारै भवसागर थकी।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तो सौ तूहि प्रभूहि, लीलाधर धरणीधरा॥ २६॥

लीये मुनि निज मांहि, दीयो वास जु सासतौ।
लुप्त कदाचित नांहि, गुप्त सदा परगट तू ही॥ २७॥

लुब्ध भाव नहि कोइ, लुब्धक तोहि न पांव ही।
लुपै न कबहु सोइ, लिपै नही करमनि थकी॥ २८॥

— दोहा —

लुकै भाजि भव वन विषै, तुव दासनि पैं मोहि।
लरि न सकैं दासांनि तैं, इह पापी अति द्रोहि॥ २९॥

लुटे न कबहू नां लुटैं, लुटि हैं नांहि कदापि।
कर्मनि पैं तुव सेवका, अतिबल तू हि उदापि॥ ३०॥

लूटि लियौ भव वन विषै, कर्म मिले अति चोर।
अब उपगार करौ प्रभू, तुम नरपति अति जोर॥ ३१॥

लूखौ जग सौं होयकरि, करि एकाग्र जु चित्त।
तोहि भजैं सोई लहै, चेतन रूप सुवित्त॥ ३२॥

लू कहिये ताती पवन, लू सम इह भव वाय।
तू हि हरै झर लायकैं, अमृत रूप सुराय॥ ३३॥

लूलौ अंध सुकंध चढि, दवतैं निकसै जेम।
ज्ञान चरनकै कंध चढि, भवतैं निकसै तेम॥ ३४॥

लूला पांवैं चरन कौं, अंधा आंखि लहैं हि।
तेरेई परसाद तैं, इह गुरु देव कहैंहि॥ ३५॥

लेखनि मैं आवैं नहीं, लिख्यो न कबहू जाय।
तेरौ जस अत्यंत है, लेखक नांहि लिखाय॥ ३६॥

लेनहार भवि रासि कौं, तू अलेख अति लेख।
लेस्या रहित अलेस तू, धारै गुन जु असेष॥ ३७॥

लेज रावरी वांनि है, भव कूपनि तैं काढि।
जीवनि कौं निरवांन दे, तू है अतुल गुनाढि॥ ३८॥

लेप रहित निरलेप तू, लेहु लेहु निज मांहि।
ले इह आलय नांम है, तेरै आलय नांहि॥ ३९॥

तेरौ आलय ज्ञान है, ताकौ आलय तूहि।
सर्व ज्ञेय कौ गृह तुही, सब तै भिन्न प्रभूहि॥ ४०॥

फुनि जु सलेषम नांम है, ले इह सूत्र मझार।
वाय पित्त सल्लेषमा, तेरै नांहि विकार॥ ४१॥

लेन योगि निजरूप है, तजि देनां परभाव।
इह तेरौ उपदेश है, तू चैतन्य स्वभाव॥ ४२॥

लेस मात्र रागादिका, तेरै नांहि विभाव।
लै लै आपुन मांहि तू, दै आनंद स्वभाव॥ ४३॥

लोक विलोकी नाथ तू, लोक नाथ जगनाथ।
लोकनि कौ आधार तू, सर्व लोक तुव साथ॥ ४४॥

लोलपता सब त्यागि कैं, हैं निरलोभ महंत।
तोहि भजैं तू लोकमणि, लोभी नांहि लहंत॥ ४५॥

— सवैया २३ —

लोभ समान न औंगुन आन, नही चुगली सम पाप जु गाया,
सत्य समान न आन महातम शुचि मन तुल्य न तीरथ न्हाया।
सज्जनता सम और कहा गुन कीरति तुल्य न भूषन भाया,
सद विद्यासम और कहा धन औजस तुल्य न मृत्यु वताया॥ ४६॥

— दोहा —

लोकालोक सुज्ञायको, लोक शिखर अतिभास।
लोक प्रमांण सुजांण सो, दे दासनि कौं वास॥४७॥

लोल नांव चंचल तनौं, चंचल लहैं न जाहि।
नही लोलता दास कै, दासहि पावै ताहि॥४८॥

लोच नही भव भाव मैं, लोच रूप है नाथ।
लोकपाल पूजैं चरन, असरन सरन अनाथ॥४९॥

लोह निगड सम पाप है, कनक निगड सम पुन्य।
दोऊ बंधन रूप ए, तू दोऊनि तैं शुन्य॥५०॥

— चौपई —

लोद फटकरी हरैं बिना, जैसै रंग मजीठ न गिना।
तेरी रुचि सरधा परतीत, विनु गलता नमता नहि लीत॥५१॥

लोष्ट समान जगत की भूति, या सम और न पाप प्रसूति।
अविनासी आनंद बिभूति, सो तेरी संपति अनुभूति॥५२॥

लोप होय नहि जाकौ कदा, सो संपति दै रहइ जु सदा।
नही लौल्यता तेरै मांहि, लौकिक तोहि जु पावैं नांहि॥५३॥

अति अलौकिकी तेरी रीति, लौकांतिक धारैं परतीति।
अति ही सलौंनी तेरी भक्ति, भक्ति थकी पइए निज शक्ति॥५४॥

लंपट तोहि न ध्यावैं प्रभू, लिंग विवर्जित तू ही विभू।
लंघे भव सागर कौं तेहि, अहनिसि ध्यावैं तोकौं जेहि॥५५॥

लंघ्यो जाय न तू गुन सिंधु, लंछिन सर्व हरै जग वंधु।
लंव हाथ तू अति हि समर्थ, द्रव्य लिंग पावैं नहि अर्थ॥५६॥

भाव लिंगि योगीश्वर तोहि, ध्यावैं तोसौं तनमय होहि।
दसा अलिंग धरै तू देव, नांहि कुलिंगि धरैं तुव सेव॥५७॥

— दोहा —

लं पृथ्वी कौ बीज है, वं जल कौ है बीज।
रं अगनी का बीज है, यं मारुत कौ बीज॥ ५८॥

हं आकाश कौ बीज है, सब बीजनि कौ बीज।
काज बीज तू देव है, अदभुत सुर अवनीज॥ ५९॥

लः कहिये प्रभु दांन कौं, दांन प्रकासै तू हि।
दाता तो सम और नहि, दीन दयाल प्रभूहि॥ ६०॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

लक्षन अनंत तोमैं, लायक तू ज्ञायक है,
लिपै नांहि काहू सौंहि लीन निज रूप मैं।
लुपै नांहि लुखौ नांहि, लुखौ भव भोगिनी सैं,
लेप नांहि जाके कोऊ आनंद स्वरूप मैं।
लै लै आप मांहि मोहि लोभी नांहि लहै तोहि,
लौल्यता न दासनि कै ते न भव कूप मैं।
लंपट लहैं न सेव लः प्रकास तू अछेव,
अकथ स्वरूप नाथ आवैं नां प्ररूप मैं॥ ६१॥

— कुडंलिया छंद —

लाल तिहारी लक्ष्मी ता सम और न कोय,
निज स्वरूप लावण्यता सो अनुभूती होय।
सो अनुभूती होय, शंकरी सोइ विभूती,
जगत ललमा होइ, लाडिली आंनंद भूती।
प्रभा जिनेंद्रा ऋद्धि, मोह रागादि प्रहारी,
भाषै दौलति ताहि, लक्ष्मी लाल तिहारी॥ ६२॥

इति लकार संपूर्ण। आगैं वकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

वश्येंद्रियं वृषाधीशं, वाक वादिनि भासकं।
विशालाक्षं च विश्वेशं वीतरागं गत क्लमं॥ १॥
वंदे वेदांग वक्तारं, निर्वेद निरदूषणं।
वैवस्वत हरं धीरं, व्योम तुल्यं च निर्मलं॥ छ॥
सर्व मात्रा मयं धीरं वंदे वं शरणं विभुं॥ २॥

— उपेंद्र बज्रा छंद —

भाष्यो वकारो वरणो जु देवा, धारै दिगाधीश जु तेरि सेवा।
कह्यो वकारो फुनि वायु व नामा, तोकौं जगद्वायु लगै न रामा॥ १॥

तु ही जु वक्ता वदतांवरो है, वश्येंद्रियो देव दिगंवरो है।
वृषो वृषांको वृषभोहि तू ही, देवा जु तू ही वृषभध्वजो ही॥ २॥

धर्मो पवित्रो जु वृषो कहावै, धर्मो जु तू ही अति धर्म गावै।
अवर्णवर्णो वृषभांक स्वामी, वर्णौ तुझैं कौंन सुभांति नामी॥ ३॥

तू ही जु देवा सुवरिष्ट धी है, तू ही वृहद्भाव धरो यती है।
वृहस्पती की हु न वुद्धि ऐसी, गावै जु कीर्ती कछु है जु जैसी॥ ४॥

वृद्धो प्रवृद्धो वर्दायको तू, शुद्ध स्वभावो जग नायको तू।
आनंदमूर्ती अति ही विलासा, ध्यांवैं न तोकौं जु अभव्य रासा॥ ५॥

— छंद वेसरी —

व्यक्त वशी जु वरेण्य तु ही है, वर्षीयान जु नाथ सही है।
वसै जिनौं कै घटि तू देवा, हरै तिनौं का पाप अछेवा॥ ६॥

वज्रागनि सम त्रिष्ना एही, सीत करै तू निजरस देही।
वही तू ही जाकौं ऋषि ध्यांवैं, वही तू हि नारद जस गांवैं॥ ७॥

वही तूहि वज्री अति सेवैं, वही तू हि जातैं शिव लेवैं।
वही तू हि चक्री सिर नांवैं, वही तू हि फणपति अति गांवैं॥ ८॥

वन्यो ठन्यो अति सुंदर रूपा, वनि आवै तोकौं वड भूपा।
तेरौ सौ वानिक तोही पैं, वाचस्पति नहि परद्रोही पैं॥ ९॥

वातरसन निर्वात जु तू ही, वागीश्वर धीश्वर जु प्रभूही।
वायु मूरती है जु असंगा, वारि मूरती शांत अभंगा॥ १०॥

वह्नि मूर्ती कर्म दहि जरौं, धरमूर्ती क्षांति जु धरौं।
नभ मूर्ती तु है जु अलिप्ता, सर्वस्वरूप तू हि अति गिप्ता॥ ११॥

महाशक्ति :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वायुरोध उपदेश करै तू, मन रोधन कै हैतु कहै तू।
वायु न तेरै काय हु नांही, व्यापक ब्रह्म तू हि निज मांहीं॥ १२॥

वात्सल्यादि प्रकासै तू ही, वाच्य वितीत अवाच्य प्रभू ही।
वलि जाऊं तेरी जगनाथा, वारिज चरन भजैं मुनि नाथा॥ १३॥

वाधा रहित विशाल जु तू ही, विद्यानिधि विद्वांन प्रभू ही।
विपुल ज्योति धारक तू देवा, विश्वंभर दे अपुनी सेवा॥ १४॥

तू हि विविक्त विवेद सुवेदा, जपहि यतीश्वर होय अभेवा।
सुविधि विधाता अविधि विनासी, विनय मूल अति धर्म प्रकासी॥ १५॥

सुहृद विनेय जनौं का तू ही, अविहीत अवितथ तू हि प्रभूहि।
तू अविलीन विलीन विभावा, तू हि विकल्मष परम स्वभावा॥ १६॥

विगतराग अविकार विशाला, विगत विहार अहार दयाला।
नित्य विहारी अढलं विहारी, रंगविहारी तू हि उधीरी॥ १७॥

प्रभू विदांवर परम सुरूपा, विश्वेश्वर भूतेश्वर भूपा।
विभवो भावो तू हि अभावो, विश्रुत विश्वातम विनु दावो॥ १८॥

विश्वशीर्ष अविनासी स्वांमी, विद्या विश्व देय अभिरांमी।
विश्वकरण विश्वेशो ईशा, विष्टरश्रव तू श्री जगदीसा॥ १९॥

विश्वरूप विस्वास सुरूपा, तू विशिष्ट अतिशिष्ट अनूपा।
महाविक्रमी विश्वमुखा तू, विश्वासी सवकौ हि सखा तू॥ २०॥

नायक विश्वतनौं तू एका, विजितांतक विरती सुविवेका।
तू हि विश्ववित विश्वजिती तू, विभयो विरजो जगतपती तू॥ २१॥

तू हि विरागी है जु विशेषा, विघ्न विनाशक है जु अशेषा।
देव विनायक नायक तू ही, विशेषज्ञ अति विज्ञ प्रभू ही॥ २२॥

तू विकलंक विमुक्तात्मा है, विश्वभूति अति ज्ञानात्मा है।
विश्व चक्षु तू विश्वजनेता, तू हि विश्वभूतित्व प्रणेता॥ २३॥

विश्नु तू हि अति जिश्नु जिनेशा, सर्वग सरवज्ञो सुमहेशा।
ब्रह्म सुविद्यादायक तू ही, विश्व विलोचन जगत प्रभू ही॥ २४॥

विश्वयोनि निरयोनि गुसांई, विश्व विलोकी अतुल असांई।
परम विवेकी ध्यांवहि तोही, देहु विधीश्वर सुविधि जु मोही॥ २५॥

विधि प्रेरक तू अविधि विडारै, विधि अविधी तोकौं न निहारै।
वियदाकार अपार जु तू ही, शुद्ध विहाय समो जु अदूही॥ २६॥

विभू दूसरौ और न तो सौ, भोंदू जन दूजौ नहि मोसौं।
तोहि विहाय लग्यौ भ्रम जारा, ध्यायो नांही जगत अधारा॥ २७॥

तो हि विहावै नित्य जु यों हि, भाव विभाव गहै नहि क्यौं ही।
विश्व कर्म तैं न्यारा तू ही, विश्वमूरती तू हि प्रभू ही॥ २८॥

विश्व जु कर्मा तू हि कहावै, करम करम की रीति वतावै।
वसै विभा जा मांहि अनंता, तू हि विभाधर विश्व लखंता॥ २९॥

विविध प्रकार करैं सुर पूजा, विबुध प्रपूजित तू जग दूजा।
विधुताशेष निबंधन तू ही, संसारार्णव तार प्रभू ही॥ ३०॥

तू वितिरिक्त परम सुख भाया, नित्य विमुक्त विमुक्ति प्रदाया।
विसतीरण तू विश्व प्रमाणा, पुरुष प्रमांण पुरांण सुजांणा॥ ३१॥

वितरण दांन तनौं है नामा, तू दानी दानेश्वर रामा।
विरज करे रजरहित विमोही, अरज सुने भय हरि निरमोही॥ ३२॥

विषहर अमृतधर तू देवा, विषधर पति धारैं तुव सेवा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
विग्रह हरन करन आनंदा, चिद्घन चेतन ज्ञानानंदा॥ ३३॥

असरीरी जु अविग्रह आपा, सुनि विनती मेटौ भवतापा।
सर्व वितीत विराग विकासा, महा विपुल मति विमल विलासा॥ ३४॥

विश्वनाथ अति है जु विरक्ता, परम विरांम विकांम अरक्ता।
विद्याधर भूधर अविथारा, विषयातीत अतीत अपारा॥ ३५॥

विरह वितीत वियोग वितीता, सदा सयोगी योग अतीता।
सर्व विराटपती महाराजा, सर्व विकासी सर्व समाजा॥ ३६॥

विदुष विबुध ए पंडित नामा, पंडित तेहि भजैं गुण धांमा।
तू हि विराजै सर्व जु पासे, ज्ञान स्वरूप अनंद प्रकासे॥ ३७॥

— अनुष्टुप छंद —

विना तेरी कृपा नाथा, नांहि पांवैं विशुद्धता।
विना शुद्धि न सिद्धि है, सिद्धि स्वात्मोपलब्धिता॥ ३८॥

विपक्षी नां लहैं सिद्धि, पक्षी तेरे लहैं शिवा।
विक्रहिये पक्षी नामा, द्विपक्षी तू सदा शिवा॥ ३९॥

पक्षी तारे पशु तारे, तारे तैं सुर मानवा।
नर तारा तु ही देवा, तारे तैं हि जु दानवा॥ ४०॥

— गाथा छंद —

तद्भव तारे मनुजा, जन्मांतर देव नारका पसवा।
तू हि उधारै दनुजा, भवतारा तू हि व्रत धारा॥ ४१॥

नांव विराट जु गरुडा, काल अही नासने तु ही गरुडा।
ध्यांवैं तो हि जु अजडा, गरड ध्वज पूजनीको तू॥ ४२॥

वि क्रहिये आकासा, तू हि चिदाकास तत्त्व प्रतिभासा।
वीतराग सुविलासा, बीत विमोहा सु देवा तू॥ ४३॥

वीत विकारा वीरा, वीराधिप वीर बीतसंगा तू।
वीत प्रचारा धीरा, वीनधरा नारदा ध्यांवैं॥ ४४॥

ब्रीडा आदि गुना जे, धारैं दासा सुने हि तुव देसा।
पांवहि ज्ञान धना जे, ब्रीडा तोकौं हि दासनि की॥ ४५॥

व्युतपन्ना जे साधु, व्युतपत्ती ज्ञान ध्यान की जिनकैं।
तेरी करहि अराधू, व्यूढा प्रौढा मुनी शुद्धा॥ ४६॥

व्यूहादिक अति भेदा, युद्ध विषै होइ सूरवीरनिकैं।
युद्ध विना विनु खेदा, जीतैं तेरे जना मोहैं॥ ४७॥

वेद विधाता तू ही, वेद तिहारी हि वांनी सिद्धांता।
वेत्ता सर्व समूही, निरवेदा तू हि अतिवेदा॥ ४८॥

स्वरस स्व संवेदन जो, तू हि प्रकासै जु तत्व विज्ञाना।
वेधा भव भेदन जो, तू ही वेगें जु भव तारै॥ ४९॥

वेपथु कहिये कंपा, तू हि अकंपा अनश्वरा स्वांमी।
निरमल तू हि अलिंपा, वेस्यादिक विसन निंदैं तू॥ ५०॥

वेषहु धारि विमूढा, तोकौं ध्यांवैं न लागिया धंधै।
ते पद लहैं न गूढा, रूढा भवसागरैं बूडैं॥ ५१॥

वैवस्वत है कालो, कालहरा तू हि कर्महारी है।
वैद्यो तू हि विसाला, वैश्वानर रोग इंधन कौं॥ ५२॥

वैनतेय सौ तू ही, काम भुयंगो नसै जु तुव नामैं।
धारै भाव समूही, रति कौं वैधव्य दे तू ही॥ ५३॥

वै इति निश्चै नामा, निश्चै तू ही कहै जु व्यवहारा।
द्वयनय भासक रामा, वैराग्यालंकृता तू ही॥ ५४॥

वैदेही दुखहारा, वैस्य उधारा सुविप्र तारा तू।
क्षत्रि उधारा भारा, भव्य उधारा जु तु ही है॥ ५५॥

तु ही विदेहो स्वांमी, वैदेही रीति भासई सकला।
व्योम समान विरामी, व्योम जडो तू हि चिद्रूपा॥ ५६॥

वोट न तेरै कोई, तू हि निरावर्ण है जु निरलेपा।
केवल चिनमय होई, वोट हरै तू हि दे दरसा॥ ५७॥

— सवैया - २३ —

वोर तिहारिहि इंद निहारहि, नागपती फुनि तेरिहि वोरा,
चक्रि हली मुनिराय निहारहि, तेरिहि वोर तजे भव घोरा।
वोप चढै अति तोहि जु सेयहि, तू अतिज्ञान अनंत सजोरा,
वोस जु विंदु समांन विषै सुख, तोहि विसारि गहै सुइ भोरा॥५८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

— दोहा —

वस्त्र व्यौंत कौ सोहई, जैसें जन कौ जोर।
तैसें जग की साहबी, तोहि फवै अति जोर॥५९॥

व्यौहारी निश्चैनय, पांवैं तोहि जु सेव।
तू निश्चै व्यौहार मय, नय भाषै अति भेव॥६०॥

वंस अनेक उधारिया, तेरै वंस न कोय।
वंसनि मैं मोती यथा, त्यौं तू जग मैं होय॥६१॥

वंचक तोहि न पांवहीं, वंचकता अति निंदि।
तू हि अवंचक देव है, विंगि रहित अतिवंदि॥६२॥

विंगि अर्थ अर शब्द सहु, तू हि विभासै देव।
ए तोकौं लहि नहि सकैं, तू अनंत अतिभेव॥६३॥

वर्ण पंच रस पंच अर गंध दोय वसु फास।
ए विंसति तेरै नही, तू चेतन अतिभास॥६४॥

विंतादिको अशुद्ध फल, श्रुति वर्जित तजि देहि।
तेरे दास प्रवीन अति, शुद्ध अन्न जल लेंहि॥६५॥

वः युष्माकं रावरै, राग न दोष न मोह।
वः कहिये फुनि नैत्र कौं, तू जग नेत्र अमोह॥६६॥

वः कहिये फुनि गमन कौं, विना गमन सहु गम्य।
तोकौं घट घट की सदा, तू अगम्य अतिरम्य॥६७॥

वः श्रेष्ठ जु कौ नांव है, तू अति श्रेष्ठ अपार।
वः विकार हू कौ कहैं, तू स्वांमी अविकार॥६८॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

वरदाय ऋद्धिदाय, वासना रहित राय,
विश्वंभर वीतराग, वीतमोह है तु ही।
व्युतपन्न व्युतपत्ति रूप तू अनंत महा व्यूढ,
अतिगूढ नाथ वेद मूल है सही।
वैवस्वत हारी देव, व्योम तुल्य है अछेव,
व्यौहार सुनिश्चय कौ भासक रहै वही।
गुनवंत ज्ञानवंत, वंस अतितारक तू,
वः प्रकास है विभास रागादिक है नहीं॥६९॥

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— कुंडलिया छंद —

तेरी नाथ सुपरणती, वीतरागता जोहु,
सोई विगत विकारता ज्ञान चेतना सोहु।
ज्ञान चेतना सोहु ताहि कहिये निज कमला,
अति हि विज्ञता भूति, वस्तुता क्रांति जु विमला।
वह तेरी अनुभूति संपदा शक्ति घणेरी,
भाषैं दौलति ताहि, परणती नाथ जु तेरी॥७०॥

इति वकार संपूर्ण। आगैं तालबी शवर्ण का वर्णन करै है।

— श्लोक —

शक्ति मूलं च शक्तीशं, धर्मशास्त्र प्रकासकं।
शिवंभवं सदाशीलं, शुद्धं शुक्लं प्रभाधरं॥१॥

शूरं वीराधिपं वीरं, शेमुषी शै प्रपूजितं।
शैलराज निभं धीरं, शोक संताप हारकं॥२॥

शौचाचार प्रणेतारं, प्राणिरक्षा प्ररूपकं।
शंकरं शंभवं वंदे, शः प्रकाशं विभास्वरं॥३॥

— इंद्र बज्रा छंद —

भाष्यो श वर्णो जु परोक्ष नामा, तू ही परोक्षो परतक्ष रामा।
शक्ति स्वरूपो अतिशक्त तू ही, शस्त प्रशस्तो अति है प्रभूही॥१॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शर्मो जु वर्मा जग को शशी है, शक्नु स्वरूपो अति ही वशी है।
सुखो हि शर्मो सुख रूप तू ही, शक्राभजै तो हि तु ही प्रभू ही॥२॥

तू ही शरण्यो शरण प्रदाई, तू ही शमी है शमभाव दाई।
हितू न तो सौ जग मांहि कोई, शत्रुघ्न तू ही परसिद्ध होई॥३॥

शत्रू हि रागादिक और नांही, शत्रुंजयो तू हि सुलोक मांहि।
नही जु शस्त्रा न हि अस्त्र वस्त्रा, वीराधिवीरो तु हि ज्ञानशस्त्रा॥४॥

शब्दा न रूपा नहि गंध फासा, तैरे रसा कोई न तू विभासा।
रसी महा तूहि प्रभू रसीला, पांवैं न तोकौं सठ जे कुसीला॥५॥

— दोहा —

शमित सकल दुख दोष तू, शमी दमी ध्यांवैंहि।
शव जु मृतग तेई प्रभू, जे तुहि नहि गांवैंहि॥६॥

तेरी वांनी शर्करा, और शर्करा नांहि।
महा मिष्ट भवताप हर, रस अनंत जा मांहि॥७॥

गुन शमुद्र गंभीर तू, अति नय नायक नाथ।
शल्य रहित अविभाव तू, शक्ति अनंता शाथ॥८॥

शनैः शनैः भवपार ह्वैं, ले पपीलिका पंथ।
तुरत विहंगम पंथ तैं, उधरैं मुनि निरग्रंथ॥९॥

— अनुष्टुप छंद —

शांत रूपी विशुद्धात्मा, शास्ताशासन नायक।
शांतिकारी सदा शुद्धो, शांति नाथो सुज्ञायक॥१०॥

शांतो दांतो प्रकाशात्मा, शास्वतो शाम्य भावक।
शा सोभा कहिये स्वांमी, तू हि सोभा प्रभावक॥११॥

शास्वती संपदा तेरी, शातकुंभ समांन तू।
शातकुंभो सुवर्णो है, है सुवर्णो अमान तू॥ १२॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कर्म काई लगै नांही, ज्ञान रूपी विशाल तू।
शाखा गोत्रा ना गात्रा है, शास्त्रज्ञो शास्त्र पार तू॥ १३॥

शापानुग्रह सामर्था, तेरे दासा दयाल हैं, तेरे नांमैं सबै नसै।
शाकिनी भ्रांति भावा जो, दास पिंडैं नही धसै॥ १४॥

शाक पत्रा न पुष्पा जे, कंद मूला तथा फला।
तेरे दासा तजैं सर्वे, लेंहि अन्ना तथा जला॥ १५॥

— चौपड़ी —

शिव निर्वांन तनौं है नांम, तू निर्वांन रूप अभिरांम।
शिव कल्यांण नांम हू होय, तो विनु और न शिव पथ कोइ॥ १६॥

शिव तू ही शंकर है तू हि, वुद्ध विशुद्ध प्रवुद्ध प्रभूहि।
शिव कहिये रुद्रहु कौ नांम, महारुद्र ध्यांवैं तुव धांम॥ १७॥

शिवपुर दायक नायक लोक, लोक शिखर राजै गुन थोक।
शिक्ष न काहू कौ तु हि गुरू, शिव मंदिर जगजीवन धुरू॥ १८॥

शिष्ट विशिष्ट महा वरवीर, शिष्टाचार प्रकाशक धीर।
शिष्ट पुरष धारैं तुव सेव, दुष्ट न पांवैं तेरो भेव॥ १९॥

शिखा सूत्र रहिता निरग्रंथ, ध्यांवैं तोहि धारि तुव पंथ।
शिखरी पति सम निश्चल ध्यान, धारहि तेरे दास सुज्ञांन॥ २०॥

घन गर्जित सम तेरी वांनि, सुनि हरषैं भवि अतिगुन खांनि।
भव्यन से न शिखंडी और, तो सम मेघ न तू जगमौर॥ २१॥

शिखी अगनि भव तुल्य न शिखी, तू हि वुझावै अतिरस ऋषी।
शिवा गवरी शक्ति जु होय, शक्ति अनंत धरै तू सोय॥ २२॥

शिला सिद्ध परसिद्ध प्रभाव, तहां तू हि राजै जिनराव।
स्वगत सर्वगत तू सुखदाय, चरन कमल सेवैं मुनिराय॥ २३॥

तिनसम औरि शिलीमुख कौंन, अनुभव रस पीवैं धरि मौंन।
शी शयन जु कौ नांम अनादि, तैं शयन न तू प्रभु आदि॥ २४॥

शी इह निंदा हू कौं कहैं, पर निंदा करि तोहि नु गहैं।
शी हिंसा सोई अति पाप, दया भक्ति कौ मूल निपाप॥ २५॥

हिंसा करि नारक पद लहैं, दया धारि तोकौं भवि गहैं।
तू आनंद सिंधु गंभीर, शीकर शक्ति धरै अति धीर॥ २६॥

शील निरूपक शील स्वरूप, शीत न उष्न न तू अतिरूप।
शीर्ष लोक कै तू ही रहै, मुनिवर तोहि जु पास हि लहै॥ २७॥

— छंद मोती दांम —

कहैं बुध शीघ्र उधारक तू हि, तु ही जिन शुद्ध स्वरूप प्रभू हि।
तू ही शुचि रूप दयाल अनंत, तू ही अति शुद्ध प्रवुद्ध सुसंत॥ २८॥

शुभाशुभ रूप नही निज रूप, प्रभू अति शुद्ध स्वरूप प्ररूप।
तु ही अति शुक्ल सुध्यान प्रकास, तु ही प्रभु शुद्ध नयोनय भास॥ २९॥

जिके शुभ लक्षण हैं मतिवांन, जिके अशुभा तजि कैं शुभवांन।
हुये तुव भक्ति थकी पद शुद्ध, लहैं जु अध्यातम रूप प्रवुद्ध॥ ३०॥

हुवै जु हरित्त सुशुष्क हु वृक्ष, लखे तुव दासह कौं परतक्ष।
हुवै जु तडाग हु शुष्क भरित्त, लखे तुव दास जु शुद्ध चरित्त॥ ३१॥

यथा नर शुक्ति लखे मतिमूढ, गनैं जु रजत्त समांन प्ररूढ।
तथा सठ देहहि आतम जांनि, पगे जड मांहि ममत्त जु आंनि॥ ३२॥

जवै तुव शब्द सुनैं धरि भाव, तवै निज रूप लखै हि स्वभाव।
गहैं तुव भक्ति जु सम्यक दिष्टि, लहैं नहि भक्ति सुमूढ कुदिष्टि॥ ३३॥

— दोहा —

घट सागर उर शुक्ति मैं, काल लवधि परवांन।
तेरे बैन जु वारिदा, वरसै अमृत ज्ञान॥ ३४॥

सम्यक मुक्ता फल तवै, उपजै अदभूत रूप।
ताकरि भूषित मुनिगना, वरैं स्वसिद्धि अनूप॥ ३५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शूर वीर तेरे जना, जीतैं मोह विकार।
त्यागि शून्यता चित्त की, पावैं ज्ञांन अपार॥ ३६॥

नहि शूरत्त स्वभाव है, मिथ्यादृष्टिनि मांहि।
डरैं काल तैं मूढ ए, धीर वीरता नांहि॥ ३७॥

शूली कहिये रुद्र कौं, धारैं हाथ त्रिशूल।
रुद्र जपैं तोकौं प्रभू, तू दयाल शिव मूल॥ ३८॥

शूलारोहण आदि दे, नरक वेदनां नाथ।
पावैं जे तोहि न भजैं, करैं विषय कौ साथ॥ ३९॥

शूकर कूकर आदि वहु, निंदि जौंनि सठ जीव।
पावैं तेरी भक्ति विनु, भव भव कष्ट अतीव॥ ४०॥

शून्यवादि आदिक जड़ा, जे तुहि गावैं नांहि।
जनम मरन अति ही करैं, भवसागर कैं मांहि॥ ४१॥

शूची सूत्र विना नसै, तुव सूत्रैं विनु जीव।
भव वन मैं भरमण करे, दुख पावै जु अतीव॥ ४२॥

शेखर जग कौ तू सही, भजैं शेमुषी धार।
नाम शेमुषी बुद्धि कौ, तू है वुद्धि हु पार॥ ४३॥

शेष अलप कौ नांम है, नाम अशेष समस्त।
अलपकाल मैं भव तिरैं, तेरे दास प्रसस्त॥ ४४॥

लहैं अशेष स्वभाव कौं, भक्ति भाव परभाव।
शेश सुरेश तुझै रटैं, तू त्रिभुवन कौ राव॥ ४५॥

शेक सींचवे कौं कहैं, तू सींचैं तरु धर्म।
करुणा रस परकास तू, करुणाकर अतिपर्म॥ ४६॥

शैल नांम गिर कौ कहैं, गिरपति से थिर भाव।
तेरे दास महामती, धारैं नांहि विभाव॥४७॥

शैल सुता शिव की तिया, जपै तोहि चित लाय।
सकल ध्येय आदेय तू, जगनीवन जिनराय॥४८॥

शिशु बालक कौ नांम है, जो बालक कौ भाव।
सो शैशव कहिये प्रभू, तू नहि बाल स्वभाव॥४९॥

शिव कल्याण स्वरूप तू, तेरे दासा सैव।
और न शैवा गुर कहैं, तो बिनु और न दैव॥५०॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महा

शोक न तेरे जन धरैं, आनंद रूप सदीव।
शोभनीक तू ही प्रभू, है अशोक धर पीव॥५१॥

सोणित लोही कौं कहैं, रेत नांम है धात।
रेत रक्त कौं पिण्ड इह, तोहि छुवै किम तात॥५२॥

शूरवीर कौ भाव जो, शौर्य कहावै नाथ।
सो तेरे दासनि विषै, कायर जग जन साथ॥५३॥

शौच प्रकासी शुद्ध तू, करुणा विनु नहि शौच।
तू ही एक शुचिश्रवा, जगजन सर्व अशोच॥५४॥

अंतर शौच सुग्यान है, व्रत तप वाहिर शौच।
लौकिक शौच जु कुश जला, लंपट भाव अशौच॥५५॥

शं कहिये सुख कौं प्रभू, तू शंकर जगदेव।
शंभव शंभु अदंभ तू, दै दयाल निज सेव॥५६॥

शंखादिक वहु वाजई, वादित्रा अतिभेद।
शंका तेरे नांहि है, तू निशंक विनु खेद॥५७॥

निःशंकित आदिक गुणा, धारैं तेरे दास।
तेरी शरणौं लेयकैं, पांवैं अतुल विलास॥५८॥

शः कहिये मात्रांतिकी, तू सब मात्रा मांहि।
चिनमात्रो जगदीस तू, राग दोष भ्रम नांहि॥५९॥

अथ बारा मात्रा एक कवित्त मैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविहितसागर जी महाराज

— सवैया - ३१ —

शक्तिनि कौ पुंज तूहि, शांत दांत है प्रभूहि,
शिव रूप तू अनूप, शील कौ निवास है।
शुद्ध बुद्ध शूरवीर ध्यांवैं, तोहि साधु धीर,
शेमुषी प्रदायक तू आनंद विलास है।
निश्चल स्वभाव शैलनाथ से अडिग्ग भाव
जपैं मुनि राव तू हि शोक कौ विनाश है।
शौच कौ विकासक तू, शंकर जिनिंद देव
शः प्रकाश ज्ञानभास नायक सुपास है॥६०॥

— कुंडलिया छंद —

तेरी नाथ जु शांतता, सत्ता अतुलित शक्ति,
श्री संपति लक्ष्मी रमा शिवा वस्तुता व्यक्ति।
शिवा वस्तुता व्यक्ति, भिन्न नहि तोतैं नाथा,
एक स्वभाव स्वरूप कवहु छांडै नहि साथा।
भवा भवांनी भूति, शुद्धता ऋद्धि घणेरी,
भाषैं दौलति ताहि, शांतता नाथ जु तेरी॥६१॥

आगैं सवर्गी षकार का व्याख्यान करै है।

(ष को कहीं 'प' रूप में रखा गया है, जैसे षोड्स कारण में; कहीं 'ख' रूप में, जैसे षोट = खोट। - संपादक)

— श्लोक —

षकाराक्षर कर्त्तारं, भेत्तारं कर्मभूभृतां।
सर्वमात्रामयं धीरं, वीरं वंदे सदोदयं॥१॥

— सोरठा —

ष कहिये श्रुति मांहि, नांम इहै जु परोक्ष कौ।
यामैं भ्रांति जु नांहि, तू परोक्ष परतक्ष है॥२॥

तू षटकारक रूप, षट करम जु तेरै नहीं।
तू षट द्रव्य निरूप, षट कायनि कौ पीहरा॥३॥

षटदस भांवन भाय, पांवैं तेरौ पद मुनी।
षटदस सुर्ग कहाय, सो चांहैं नहि मुनिवरा॥४॥

षट बिंशति प्रकृती हि, मोहतनी मुनिवर हतैं।
तिनतैं कर्म जु वीहि, भागैं अपनी सौंज ले॥५॥

षट त्रिंशत गुन धार, आइरिया तोकौं भजैं।
षट चालीस जु सार, गुन पांवैं तुव भजनतैं॥६॥

— दोहा —

षट पंचास कुमारिका, देवी रुचिक निवास।
चरन कमल ध्यांवैं प्रभू, तेरे आंनंद रासि॥७॥

षष्टि सहंसर सुत पिता, चक्री सगर सुग्यांन।
तेरे चरन सरोज भजि, पहुच्यो पुर निरवांन॥८॥

गहैं निगोद सरीर कौं, लहि कारण षटतीस।
पांवैं तेरे भजन विनु, जनम मरन अति ईस॥९॥

षट षष्टी सहसर उपरि, त्रय सत अर षट तीस।
अंत महुरत एक मैं, भासैं मुनि अवनीस॥१०॥

मन वच तन की चपलता, वसु मद विषया पंच।
चउ विकहा, विसना सपत, चउकषाय दुख संच॥११॥

पंच मिथ्यात समेत ए, कारण हैं षट तीस।
इन करि जीव निगोद, लहि सुख देखैं कुमतीस॥१२॥

मार्गदर्शक :-

षट सप्तति लक्षा प्रभुके, तेरे चैत्य निवास।
दीप तडित अगनी उदधि, मेघ दिसिनि कै भास॥ १३॥

षट असी तिके अर्द्ध ए, तीयालीसा होय।
एती प्रकृति न बंधई, चौथौ ठांण जु सोइ॥ १४॥

षणवती लक्षा प्रभू, तेरे सौध विसाल।
पौंन कुमारनिकै घरां, रतनमई अघटाल॥ १५॥

षणवती सहसा त्रिया, नारी तजि चक्रीस।
षट्वा (खटवा) शयन हु त्यागि कैं, ह्वै निरग्रंथ मुनीस॥ १६॥

वनवासी ह्वै तुवं जपैं, भवतन भोग विरक्त।
अनुभौ रस पीवैं महा, धर्म शुक्ल अनुरक्त॥ १७॥

षपै (खपै) चित्त भव भोग कौं, भववासिनिकौ नाथ।
षपैं (खपैं) न तातैं कर्म अघ, लहैं न तेरौ साथ॥ १८॥

षवरि (खवरि) नही निज रूप की, पगे प्रपंचनि मांहि।
लगे धांम धन मांहि ए, तातैं भ्रमण करांहि॥ १९॥

षडसम कर्म समूह हैं, अगनि तुल्य तुव ध्यांन।
भस्म करै क्षण मांहि सहु, ध्यांन समान न आन॥ २०॥

— छंद —

षा कहिये लक्ष्मी कौ नामा, तू लक्ष्मी धर देवा।
तो विनु लक्ष्मी नहि औरनिकै, दै लक्ष्मीवर सेवा॥ २१॥

षांन (खांन) न पांन न गांन न ताना, अस्त्र न वस्त्र न तैरं।
नादि काल तैं कबहु न लाधौ, लागी भ्रांति जु मैरं॥ २२॥

षाड (खाड) समान जगत मैं प्रांनी, पर्यौ नादि तैं मूढा।
तू हि निकासि देय पद ऊरध, अविनश्वर अति गूढा॥ २३॥

हरि करि निज धन षाली (खाली) हाथा, कियो कर्म दुष्टनि नैं।
भरमायो चहुंगति मैं अति गति, रागादिक पुष्टनिमैं॥ २४॥

पांडौ (खांडौ) ज्ञान भाव कौ जिनकै, तेई कर्म प्रहारैं।
लेकरि चेतनभाव अतुल धन, तेरौ नग्र निहारैं॥ २५॥

षाई (खाई) कोट न पौरि न कोई, गृह पंकति हू नांही।
वापी कूप न सरवर सरिता, तू है जा पुर मांही॥ २६॥

ता पुर पहुंचैं तेरे दासा, जे निरविषया होवैं।
विषै समान न और जु वैरी, ए जीवनि कौं बोवैं॥ २७॥

खाजि खुजावत हि भल लागैं, फुनि अधिकौ दुख होई।
विषय सेवता ही भल लागैं, दुष दैं भव भव सोई॥ २८॥

खांहि अभक्ष अपेय जु पीवैं, ते नहि तेरे दासा।
खादि अखादि विचार विना पसु, अविवेकी अघरासा॥ २९॥

कुवनिज करि तुव भक्ति न पावैं, पावैं नर्क निवासा।
खांड लवन धांनादिक वनिजा, करहि न तेरे दासा॥ ३०॥

खाख समांन जगत की माया तामैं, राचैं नांही।
संसय विभ्रम मोह रहित नर मगन रहैं तो मांही॥ ३१॥

खाय जु रूखा टुका साधू, ध्यांवै तोहि नचिंता।
तेई भव जल कौं जल देकरि, पांवैं तुव पुर संता॥ ३२॥

खास सास आदिक अति रोगा, दासनि कौं लखि भागैं।
रागादिक रोगा जव नासैं, तब कछु व्याधि न जागैं॥ ३३॥

खिसैं न ग्यान क्रिया तैं कवही, तेरे दास निकंपा।
परे खिसानैं जिन पैं कर्मा, पद पावैं जु अलिंपा॥ ३४॥

खिरक समांन इहै भव स्वांमी, पसु सम ए भववासी।
विषयरूप त्रिण के अभिलाषी, अविवेकी दुष रासी॥ ३५॥

नर तेई जे तेरे दासा, कण मैं चित्त लगावैं।
विषय रूप त्रिण कवहू न चांहैं, ज्ञान स्वरूप हि भांवैं॥ ३६॥

खिजहि न कवहु खिजाये धीरा, क्षमा रूप अति शांता।
खिलहि फूल ज्यौं चित्त जिनौं का, गहहि सुवास प्रशांता॥ ३७॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

खिनायो न जावै वुलायो न आवै, तु ही सर्व रूपो सवौ मैं रहावै।
न खीजैं न रीझैं मुनि शांत भावा, तुझी कौं रटैं त्यागि सर्वे विभावा॥ ३८॥

जु खीला समाना त्रिशल्या हमारैं, चुभी हैं हिये मैं तुही नाथ टारैं।
खुभी है जिनौं कै तिहारी सवांनी, तिनौं कै न माया न मिथ्या निदांनी॥ ३९॥

खुसै नांहि दासांनि कौ ज्ञान बित्ता, नही कर्म चौरांनि पैं जांहि जित्ता।
खुसी हि रहैं नित्य तोकौ हि ध्यांयें, सवै सोक चिंता नसैं तोहि गांवैं॥ ४०॥

खुलै भ्रांति ग्रंथी तिहारे प्रभावैं, लहै तत्त्व विज्ञान भ्रांती अभावैं।
विषै पंक मैं जीव खूंतौ अनादी, निकासे तुही देव दे ज्ञान आदी॥ ४१॥

न खेस्या खिसैं ध्यांन तैं धीर चित्ता, जिनौं नैं लख्यौ एक तू शुद्ध वित्ता।
सही खेह तुल्या इहै भौ विभूती, इहै मोहमाया जु भ्रांति प्रसूती॥ ४२॥

करैं खेद यावैं लिये मूढ भावा, जपैं नांहि तोकौं गहैं ए विभावा।
मुनी चित्त कौं खैंचि ल्यांवैं हि तोमैं, भज्यौ नांहि तोकौं लगी भ्रांति मोमैं॥ ४३॥

— सोरठा —

सर्व जीव षैकार, काल महा परवल सदा।
षै करि ताकौ पार, पांवैं भव कौ तुव जना॥ ४४॥

षोडश कारण भाय, तुव पद पांवैं मुनि जना।
सव कारण कौ राय, कारण एक तु ही सदा॥ ४५॥

खोट रहै नहि नाथ, सुनिकैं तेरी दिव्य ध्वनि।
खोटे जीव न साथ, पांवैं तेरौ कवहू भी॥ ४६॥

खोले धरे अनंत, छेह न आयौ भवतनौं।
भक्ति देहु भगवंत, जा करि भव भरमण मिटैं॥ ४७॥

खोज न पायौ नाथ, तुव मारग कौ मैं कभी।
लडे कर्म जड साथ, उन मारग भरमाईयौ॥४८॥

— सवैया - ३१ —

खोहरै पहार कै निवास करि रटैं साधु
खौरि मैं इकंत बैठि तोही कौं चितारहीं।
खौरि काटि चंदन की वंदन करै गृहस्थ
जति जन न्हवन न खौरि कभी धारही।
साधुनि की खौरक तैं भागैं काम क्रोध छल
तोहि लषि साधवा जु हौं हि भवपार ही।
षंढ नर तेहि जेहि ध्यांवैं नांहि तो कौं कभी,
तेरैई प्रसाद भव्य राग दोष टारहीं॥४९॥

— दोहा —

खंजन की मिटि खंजता, पद पावैं अविकार।
अंध आंखि पावैं प्रभू, ज्ञान रूप अतिसार॥५०॥

खंध न बंध न रावरै, खंध देस नहि कोइ।
खंध प्रदेस न है प्रभू, परमाणव हु न होय॥५१॥

तू केवल चिद्रूप है, गुन अनंत तो मांहि।
ज्ञानानंद स्वरूप तू, परपंचनि मैं नांहि॥५२॥

षष्या पासि दु शुन्य जो, वारम मात्रा सोय।
सव मात्रा मैं एक तू, चिन्मात्रो प्रभु होय॥५३॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित मैं।

— सवैया —

तू हि षटकारक स्वरूप गुन षांनि (खांनि) भूप,
षिसैं (खिसैं) नांहि ध्यांन तैं कदापि रावरे जना।

षीजि (खींजि) रीझि त्यागिकैं लगे हि भक्ति भावनि मैं,
षुसैं (खुसैं) नांहि मोह पैं धर्यो स्वरूप मैं मना।
षूतौ (खुतौं) नां विभावनि मैं षेद (खेद) विनु नायक तू,
षै (खैं) करै जु षोट (खोट) रूप, अंधकार कौ दिना।
षौरक (खौरक) ना भांनैं तेरे दास काल कंटिक कौ,
षंध (खंध) विनु वंध विनु षः प्रकास तू गिना॥ ५४॥

सागर जी महाराज

— कुंडलिया छंद —

तेरी देव सुकांतता, हरै सोक संताप,
ताहि कहैं वुध लक्ष्मी रमा परणती आप।
रमा परणती आप, ज्ञान मात्रा जु विभूती,
ख्याति रावरी सोइ, अतुल आनंद प्रसूती।
अनुभूती द्युति कांति, संपदा सिद्धि घणेरी,
भाषैं दौलति ताहि, कांतता देव सु तेरी॥ ५५॥

इति षकार संपूरणं। आगैं दंती सकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

सनातनं सदानंदं, सारासार निरूपकं।
सिद्धं शुद्धं वुद्धं, पूजितं सीरपाणिना॥ १॥
सुश्रुतं सुप्रियं धीरं, सूत्र सिद्धांत दीपकं।
मुनिसेनापतिं वीरं, भाव सैन्यान्वितं विभुं॥ २॥
सोम दृष्टिं धरा धीशं, सौम्यं शांतं सदोदयं।
संपदा संचयं ध्याये, द्यः स याति परंपदं॥ ३॥

— अरिल छंद —

स कहिये श्रुति मांहि श्रेष्ट कां नांम है,
तो विनु श्रेष्ट न कोय, श्रेष्ट तू रांम है।

स्त्रष्टा धर्म स्वरूप स्त्रिष्टि कौ तू हि है,
सर्वलोक कौ ईस अधीस प्रभूहि है॥ ४॥

सरवारथ सिद्धि दाय सकल लोकातिगो,
सरव लोक कौ सारथी हि करमातिगो।
सदानंद सद्रूप समरसी भाव तू,
समरस धर मुनिराय जपै जगराव तू॥ ५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सरवग सरवज्ञो हि तू हि सरवत्र है,
सर्वरूप सर्वालयो हि जग छत्र है।
सकल देव सव सम्यकी हि तोकौं भजैं,
मुनि समंत जु भद्र तोहि लखि भव तजैं॥ ६॥

प्रभू सहस्र सुमूर्ति सद्य भवतार तू,
तूहि सहश्र जु शीर्ष सर्वदा सार तू।
तू हि सहश्र जु पात तात सव लोक कौ,
सहश्राक्ष जगदीस ईस गुन थोक कौ॥ ७॥

रटै सहश्र फणाधिपोहि तोकौं प्रभू,
सहस किरणि ध्यावैहि कीर्ति गावै विभू।
सहश्राक्ष जो इंद रूप तुव निरषतौ,
मगन होय करि नृत्य करै अति हरषतौ॥ ८॥

समता धर मुनिराय धीर तोकौं सदा,
अहनिसि ध्यांवैं तोहि नांहि विसरैं कदा।
सक नांही जिनकौं कदापि कोऊ तनी,
सखा जिनौं कै तोहि सारिखौ जगधनी॥ ९॥

सलिल समाना तेहि दाह भव कौं हरै,
निर्मल रूप मुनीश ध्यांन तेरौ करैं।
सलिल निधी इह जगत याहि, तिरि साधवा,
आंवै तैरै लोक यतीश अबाधवा॥ १०॥

सव जन तोहि विसारि रूलैं भाव जार मैं,
तुव मत प्रोहण विगरि सु डूवैं धार मैं।
सत्य स्वरूप निरूप अनूप अधीस तू,
सफल होय नर देह तो भज्यां ईस तू॥ ११॥

सत्ता रूप अरूप शुद्ध चैतन्य तू,
भव सागर तैं पार करै प्रभु धन्य तू।
सपरस रस अर गंध वर्ण शब्दा नहीं,
ज्ञानानंद स्वरूप तू हि निज गुन महीं॥ १२॥

— कुंडलिया छंद —

सदा सनातन ईस तू, सदा त्रिप्त जोगीस,
सदा जोग जगदीस तू, सदा भोग भोगीस।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
सदा भोग भोगीस, धीस तू धीर सदागति,
सदानंद सद्रूप, सकल समयज्ञ प्रजापति।
सर्व व्यापको तू हि, स्वस्थ अति स्वच्छ सदा धन,
सदा स्वभावी भाव, ईस तू सदा सनातन॥ १३॥

सदा समाहित नाथ तू, परम समाधि स्वरूप,
सरवाधिक्य सहाय तू, सर्वेश्वर जगभूप।
सर्वेश्वर जगभूप, वीर तू सर्व समूही,
स्पष्टाक्षर प्रतिभास, है स्वयंवुद्ध प्रभू ही।
सत्य स्वयंभू देव, सेव दै धीर अवाधित,
स्वभू अभू सवरूप, नाथ तू सदा समाहित॥ १४॥

सर्व कलेसा तू हरै, सर्वदोष हर ईस,
सर्व वित्त सर्वात्तमा, सर्वजीव अवनीस।
सर्वजीव अवनीस, सर्वदरसी सवभावा,
सत्य परायण नाथ, सत्य सरधान प्रभावा।

गुन समग्र अति उग्र, तू स्थवीयान अलेसा,
सदाचार परवीन, तू हरै सर्व कलेसा॥ १५॥

समय प्रकासक सार तू, स्वसंवेद्य रस लीन,
कृतकृत्यो सतकृत्य तू, तोमैं भाव न दीन।
तोमैं भाव न दीन, तू हि है दीन दयाला,
सतवन तेरौ देव, करहि सुरनर मुनि पाला।
स्व समय रूप अनूप, नाथ तू सर्व विभासक,
तू स्वतंत्र जगदीस, सार तू समय प्रकासक॥ १६॥

समभावा तोहि जु भजैं, ते निज समय लभंत,
स्वयं सिद्ध सव पूजि तू, सरल स्वभाव अनंत।
सरल स्वभाव अनंत, तू हि है ब्रह्म सनातन,
सर्व विभाव वितीत, मीत तू सर्व सदाधन।
सकल प्रपंच निवार, तोहि ध्यावैं मुनिरावा,
सकल जीव रक्षिपाल, भजैं तोहि जु समभावा॥ १७॥

— छंद —

सप्त नरक नहि पावैं दासा, सुर्गादिक हु न चाहैं।
सतरा संजम धारि अनासा, तुव पुर कौं हि उमाहैं॥ १८॥

सप्तवीस विषया तजि मुनिवर, हौंहि उदासी भव तैं।
ते तेरौ अध्यातम लहि करि, निकसैं या भव दव तैं॥ १९॥

सप्त तीस सहसर गनि लीजे, वहुरि पंच सै गनियैं।
एते भेद प्रमाद सवै ही, तो भजियां सव हनियें॥ २०॥

विकथा पचवीसा अर पचवीसा हि कषाया गुनियें।
पच्ची पच्ची गुनियां एई, छस्सै पच्ची भनियें॥ २१॥

फिरि एई इंद्री अर मन सौं, गुन्यां थकी भव मूला।
साढा सैंतीसाहि सैकरा, हौं हि महा अघ थूला॥ २२॥

ए फुनि पंच नींद सौं गुनियां, सहसर पौंन गुनीसा।
द्विविधि मोह सौं गुनिया एई, सहसर साढ संतीसा॥ २३॥

सप्त अधिक चालीसा प्रकती, घाति कर्म की कहिये।
तुव मारग तैं घाति कर्म हरि, केवल बोध जु लहिये॥ २४॥

सत्तांवन आश्रव तू टारै, सतसठि सम्यक भाषै।
सम्यक दरसन ज्ञान चरन मय, तो करि निज रस चाषै॥ २५॥

सत्तरि कोडाकोडि पयोधी थिति है दरसन मोहा।
तेरे दास हनैं प्रभु मोहा, जिनकै राग न द्रोहा॥ २६॥

सतहत्तरि कौ वंध वतावै, चौथे ठांणि जु स्वांमी।
सत्यासी तेरौ ही नामा, सत्य स्वरूप सुनांमी॥ २७॥

सत्याणव सहसर चौरासी, लक्षा तेरे देवल।
सुर्ग लोक मैं नादि अकर्तृम, इह भासैं श्रुति केवल॥ २८॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चौथी पंचम छट्ठी ग्रीवां, सप्ताधिक सौ देवल।
तेरे अहमिंद्रनिकरि पूजि, इह भासैं धर केवल॥ २९॥

सप्त दसाधिक अर सौ प्रकृती, वंधै पहलैं ठांणैं।
पहलौ ठाण उलंघि लहै बुद्धि, तव तुव भक्ति जु जांणै॥ ३०॥

सहसर नाम तिहारे जपिकरि, भवि पावैं निज वस्तू।
अमित अनंत नांम हैं तेरे, तू प्रभू परम प्रशस्तू॥ ३१॥

— छंद वेसरी —

साषा (सखा) जीव मात्रनिकौ तू ही, सरव भूत कौ हितू प्रभूही।
सरसुति तेरी वांनी कैयै, सरसुति करि आतम गुन लैये॥ ३२॥

सपदि सद्य ए शीघ्र जु नामां, तुरत देय तू केवल धामा।
सकटैं कर्म सवै ले साजा, जव तोकौं ध्यांवैं मुनि राजा॥ ३३॥

सठ मोसौ दूजौ नहि औरा, तोहि विसारि कियो निज चौरा।
सन्यौं विषै सौं मैं अतिमूढा, तोहि न ध्यायो है आरूढा॥ ३४॥

सड्यो पड्यो इह देह जु पापा, सो मैं कुवुधी जांन्यौं आपा।
सत्य स्वरूप न जांन्यों तू ही, सदा धरे परपंच समूही॥ ३५॥

परम समाधि देहु जगराया, मेटि भरमना मूल जु माया।
सधन तुही आतम धन धारै, निधन हरै जम तैं जु उबारै॥ ३६॥

निरधन सव ही निधन निवासा, लक्ष्मीधर तू अतुल प्रकासा।
सहित अनंत गुननि तैं तू हीं, रहित विभाव सुशक्ति समूही॥ ३७॥

सहजानंद सहजगति तूही, सहज विभास प्रकास समूही।
सहनशील मुनिराय जु ध्यांवैं, सदा सरवदा तोहि जु गांवैं॥ ३८॥

सरवर आतम भाव निमग्ना, रटैं तोहि मुनिवर संविग्ना।
कहा सारदी चंदर क्रांती, तुव वांनी सादर अतिक्रांती॥ ३९॥

— मंदाक्रांता छंद —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सान्निध्यो तू, निकटहि रहै, सर्व साक्षात देवा,
सामीप्यो तू, मुनिजननि कै, सार सरवस्व वेवा।
साधू पूजैं, अतिशय धरा, सातिशै तू मुनिंदा,
साध्यो तू ही, जितपति अती, स्वामि है मोक्ष कंदा॥ ४०॥

स्वाधीनात्मा, अति गुण युतो, साधना सर्व गावै,
स्वात्मारामो, परम पुरुषो, सार्वभौमा जु ध्यावै।
साचौ देवा, समरथ्र सदा, साधका होय पावै,
तोकौं सांई, मुनिजन लहैं, वाधका नांहि भावैं॥ ४१॥

साक्षी भूतो, सव घट लखै, स्वास्थि रूपो तुहि जो,
सार्वः सर्वो, सकलपति अती, साहिवो है सही जो।
साखा गोत्रा, प्रवरन प्रभू, तू असाधारणो है,
सारी भ्रांती, हरइ मनकी, सारभूतो जिनो है॥ ४२॥

— छंद नाराच —

नहीं कदापी स्वापतेय तो समान लोक मैं,
तु ही अनंत स्वापतेय है स्वभाव थोक मैं।

कहैं जु स्वापतेय द्रव्य, द्रव्य तू चिदातमा,
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
सुतत्व सार है अपार ईस तू गुणातमा॥ ४३॥

तजेहि स्वाद सर्व ही सु पंच इंद्रियोद्धवा,
करे सुधीर चित्त जे विनासई मनोद्धवा।
जपैं हि सानुकूल होय तोहि सौं जतिंद्रिया,
भजैंहि तोहि सात्विका तिके हि है अतिंद्रिया॥ ४४॥

नही कदापि सात्विका न राजसा न तामसा,
तु ही अनादि शुद्ध रूप देव है महारसा।
मुनिंद सांहसीक हैं अरण्य के निवासिया,
अहोनिसा रटैं जु तोहि भक्ति भाव भासिया॥ ४५॥

तु ही जु सारथी प्रभू चलावई स्वयंत्र कौं,
स्वभाव रूप यंत्र है, तु ही धरै स्वतंत्र कौं।
न रावरे सुदास कौं कदापि साप काटई,
न रावरे जनांनि कौं भूपाल क्वापि दाटई॥ ४६॥

न रावरे सुदास कै कदापि चौर पैसई,
न रावरे जनांनिकै सुचित्त भ्रांति बैसई।
न रावरे जनांनि कौं कदापि कोई पीडई,
तु ही अनादि औ अनंत एक रूप है दई॥ ४७॥

तजे हि साम दांम दंड भेद च्यारि भूपती,
सुग्यांन रूप साध है रटैं तुझै महा धृती।
इहै हि सारदा सदा सुबांनि रावरी महा,
प्रभाव याहि के मुनीश शुद्ध तत्व कौं लहा॥ ४८॥

— दोहा —

सार समुच्चै तू कहै, तत्व सार तू देव।
साधु समाधि प्रदायका, दै दयाल निज सेव॥ ४९॥

सायं प्रात भजैं तुझैं, भजैं दुपहरि मांहि।
अर्द्ध रात्रि हू भवि भजैं, यामैं संसै नांहि॥५०॥

नित्य भजैं अहनिसि भजैं, लग्यौ तोहि सों चित्त।
तो सौ और न देखिये, तीन लोक मैं बित्त॥५१॥

साधर्मी तेई महा, जे तोसौं लवलीन।
तो सौं जे विमुखा नरा, ते हि विधर्मी हीन॥५२॥

तू साकार स्वरूप है, निराकार हू तू हि।
नराकार सव रूप तू, लोक प्रमांण प्रभू हि॥५३॥

साकृति औैर निराकृती, स्वामी तू श्रुतिसार।
साची चरचा रावरी, तो विनु सर्व असार॥५४॥

सानंदी सद्रूप तू, सालोको अतिलोक।
सामीप्यो अति निकट तू, गुन अनंत कौ थोक॥५५॥

सारूपो निजरूप तू, ज्ञानरूप अतिरूप।
तू सायोज्य सुमिलित है, गुन अभिन्न चिद्रूप॥५६॥

सारिष्टो अति ऋद्धि तू, स्व रस रसीलौ देव।
अति साम्राज्य धुरंधरो, है साम्राट अछेव॥५७॥

सात नरक अति दुख मई, तो भजियां नहि पाय।
नरकांतक तू देव है, सकल त्रिलोकी राय॥५८॥

नरकनि के दुख अकथ हैं, कहत न आवै थाह।
देह जनित मन जनित औ, क्षेत्रोतपन्न अथाह॥५९॥

असुरोदीरित अति दुखा, वहुरि परसपर कष्ट।
इनहि आदि अगणित दुखा, नारक मांहि सपष्ट॥६०॥

भूख अतुल तिरषा अतुल, मिलै न कण इक अन्न।
वूंद मात्र वारि न मिलै, है नारक अति खिन्न॥६१॥

छेदन भेदन मार अति, रोग अनंत अपार।
अति चिंता बहु वेदना, कहत न आवै पार॥६२॥

असुर जनित तीजा लगैं, आगैं वढतौ दुख्य।
नारकभूमि कूभूमि मैं, दीखै नांहि सुख्य॥६३॥

हिंसा मृषा अदत्त धन, अर परदारा संग।
अति त्रिश्ना, आरंभ अति, सपत विसन परसंग॥६४॥

द्युत मांस मदिरा वहुरि, वेस्या अर आखेट।
चोरी नारी पार की, इन करि दुरगति भेट॥६५॥

— छंद वेसरी —

अभख अहारी, पर धनहारी, करहि अगम्या गम्य विकारी।
स्वामि द्रोही मित्र द्रोही, वहुरि कृतघ्नी धरमद्रोही॥६६॥

जे विस्वास घातका दुष्टा, नरक परैं पापिष्ट सपष्टा।
विषदाता दवदाता पापी, पित्र निहंता परम सतापी॥६७॥

वालघातका वृद्ध निपाती, अघ परिणांमी निरदय छाती।
सप्तम नरक लगैं ए जांवैं, अगणित काल अतुल दुख पांवैं॥६८॥

पशुघाती दुरवल नरघाती, नरक परैं सठ धर्म निपाती।
निहकारण वैरी दुखदाई, पिशुन कुजन नरकांपुर जाई॥६९॥

नर्क न पांवैं तेरे दासा, सुर्ग हु चांहैं नांहि उदासा।
चाहैं केवल तेरी भक्ती, सुर्ग मुक्ति की मात प्रव्यक्ती॥७०॥

— छप्पय —

सिद्धारथ तू सिद्ध, सिद्ध सासन तू देवा,
तू सिद्धांत निबंध, देहु स्वामी निज सेवा।
सिद्धि ऋद्धि दातार, सिद्ध ही जांनैं तोकौं,
अतिसित भक्ति प्रभाव, देहु तू जिनवर मोकौं।

सिद्धकल्प तू जगतनाथा, तू हि सिद्धि संकल्प है,
तू प्रसिद्ध अविरुद्ध सिद्धा, सिद्धिमूल अविकल्प है॥ ७१॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिद्धि सिला कौ नाथ, नाथ तू है त्रिभुवन कौ,
देहु देहु निज सेव, अंत दै प्रभु भव वन कौ।
सिक्ता सम भवभूति, सो न चाहैं निज दासा,
चाहैं केवल भक्ति, रावरी अचल प्रकासा।
सित तैं सित अति अमल भावा, स्त्रिष्टि सकल तुव ज्ञान मैं,
स्त्रिष्टि नाथ तू, स्त्रिष्टि भासक, प्रतिभासै निज ध्यांन मैं॥ ७२॥

स्त्रिष्टि अनंत स्वभाव, शुद्ध पर्याय अनंता,
स्त्रिष्टि अनंत सुज्ञांन, आदि गुन अतुल धरंता।
स्त्रिष्टि न इनसी और, एक रूपा अविनासी,
स्त्रष्टा तू जगदीस, ईस तू सर्वविभासी।
स्वपर स्त्रिष्टि कौ तू अधीसा, भिन्न अभिन्न सुव्यापको,
सिषी भव्य अति हरष पावैं, तू सुमेघ धुनि लाप कौ॥ ७३॥

गयो सिटाय जु मोह, धाक सुनि तेरी देवा,
दासनि सौं लरतैं हि, सिट पटावत अति भेवा।
तैं हि सिखाये दास, ज्ञान किरियामय निपुना,
अति हि सिहांवैं धीर, तोहि तैं लखि तत अपुना।
नांहि सिहांवैं जगत छति लखि, गनैं लोक माया असति,
तो ही कौं सिर ऊपरैं धरि, निश्चिंता मुनिवर लसति॥ ७४॥

— दोहा —

सिर परि सबकै तू रहै, विरला तोहि लखंत।
तेहि सिधारैं सिव पुरैं, ज्ञानामृत चखंत॥ ७५॥

— कुंडलिया छंद —

तैं स्वीकारे मुनि गना, लोक रीति तैं भिन्न,
तू स्वीकारयो मुनिगननि, तत्व स्वरूप अभिन्न।

तत्व स्वरूप अभिन्न, सीरपांणिनि कौ तारक,
इहै नांम बलिभद्र, तू हि बलिभद्र उधारक।
चक्रि उधारै तू हि, तैंहि स्वीकृत अति तारे,
सींचै करुणा वृक्ष, मुनिगना तैं स्वीकारे॥ ७६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सीधौ वीधौ निंद्य है, मांस समान सदोष।
मांस समान सदोष तेल जल चरम निपतिता,
हींग महा हि अभक्ष, तू हि वरजै अघरतता।
हाट मिठाई निंद्य, तजहि तुव मत द्रिढ कीधौ,
भषैं कदापि न दास निंद्य है सीधौ वीधौ॥ ७७॥

सीता नाम जु भूमि कौ, तू हि भूमि कौ नाथ,
धरणीधर वरवीर तू, धीर महागुण साथ।
धीर महागुण साथ, तू ही दुखहर सीता कौ,
सीता परम सतीहि, सील है सरवस जाकौ।
नारी तैरै नांहि, तू हि एकाकी मीता,
भूमी भुज तू सत्य, भूमि कौ नाम जु सीता॥ ७८॥

— सोरठा —

सीमंधर तू देव, सीम धरम की तू सही।
दै दयाल निज सेव, जाकरि भव भरमण मिटै॥ ७९॥

सीझैं तेरे होइ, सीझे तोमैं आंवही।
सत्य स्वयंभू सोय, ज्ञानानंद स्वरूप तू॥ ८०॥

सींचै जल सौं कोय, तव तरवर फल कौं फलै।
व्रत तरवर सम होय, तुव रस सींच्यो शिव फलै॥ ८१॥

सीष गहै जो कोय, तेरी त्रिभुवन सांइयां।
सो स्वतत्वमय होय, भवभरमण कौं वारि दे॥ ८२॥

सीस नाय सुरराय, तोहि जु बंदै नरवरा।
मुनिवर पूजें पाय, तेरे सब करि पूजि तू॥ ८३॥

सीह नृसीह अनादि, कर्म द्विरद मदहर तु ही।
तू सब मांहि आदि, आदि पुरिष परवीन तू॥ ८४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सीलौं वास्यौ अन्न, खांहि ते हि बोध न लहैं।
जे तोसौं प्रतिपन्न, ते अजोग्य सब ही तजैं॥ ८५॥

सीसो वनिज न जोगि, सीसा तैं हिंसा अती।
तू वरजै हि अजोगि, दया धर्म कौ मूल तू॥ ८६॥

सुश्रुति भासै तू हि सुगुणी सुगुण विभास तू।
सुष्टहि लहैं प्रभूहि, दुष्ट न दरसन कौं लहैं॥ ८७॥

— मालिनी छंद —

सुगत सुगति दाता, सुश्रुतो विश्रुतो तू,
सुभग सुमुख देवा, सुष्ट है सुव्रतो तू।
सुमति सुहितकारी, है सुरूपो सुगुप्तो,
सुखमय सुलभो तू, पुल्लभो तू अलुप्तो॥ ८८॥

सुहृद सुख सुरूपा, साधवा तोहि ध्यांवैं,
सुनहि सुश्रुति तेरी, है सुघोषा सुगांवैं।
सुमुख सुभग जीवा, तोहि सौं लौं लगावैं,
सुविधि धरि सुधी ही, सुस्थिता होय भांवैं॥ ८९॥

सुरग मुकतिदाता, तूहि हैं सुष्टवाचा,
अतुलित सुखिया तू, देव है नाथ साचा।
सुरपति अति पूजैं, तोहि पूज्यां सुश्रेया,
लहहि सुमति नाथा, तोहि तैं तू हि ध्येया॥ ९०॥

— छंद चालि —

सुत्रामा सुरपति नामा, सुरपति कौ पति तू रामा।
सुर असुर नरा मुनि पूजैं, तिनतैं अघ कर्म न पूजैं॥ ९१॥

सुरगुर को गुर तू देवा, है सुतनु सुमुख अतिभेवा।
सुमनां ह्वै मुनिवर ध्यांवैं, सुजना तो सौं मन लावैं॥९२॥

तो सौं जे सुरति लगांवैं, करि सुरुचि महागुन गांवैं।
तेई पांवैं शिव सुगती, जे भव्य सुदर्शन सुमती॥९३॥

तू सुनय द्विनय परकासै, तू सुगी सुष्टगी भासै।
गी है वांनी कौ नांमा, तेरी वांनी सुखधामा॥९४॥

जे सुवुधी तोहि निहारैं, तेई सुजीव शिव धारैं।
सुत परिजन त्यागि मुनीसा, ध्यांवैं एकाग्र जतीसा॥९५॥

सुकृत कौ मूल जु तूही, सुकृती ध्यांवैं हि प्रभू ही।
सुकृत हू लखि न सकै ही, अकृत कैसैं जु धुकै ही॥९६॥

ह्वै सुप्रसन्न जे ध्यांवैं, तेई निज आतम पांवैं।
सुभ अशुभ त्यागि वरवीरा, तुवपुर पहुंचैं जगधीरा॥९७॥

सुपथी जे सुपथ प्रकासा, तोही तैं लहहि विलासा।
सुमरन तेरौ जे धारैं, कुमरन कौं तेहि विडारैं॥९८॥

— दोहा —

जे सुशील जन ध्यांवही, तोहि सुचित्त लगाय।
ते सुख पिंड अखंड ह्वै, आवैं तुव पुरि राय॥९९॥

— वसंत तिलका छंद —

तेरी प्रभू सुधि लहैं मुनि वीतरागा,
होवै सुकार्थ नर देह महा सभागा।
तेरे ही वैंन सुनता सहु भ्रांति नासै,
तेरी सुचाल लखतां निज तत्व भासै॥१००॥

तेरी सु स्वच्छ गतिता गति तैं अतीता,
तो सौ सुजांन जग मैं नहि और लीता।
मेरौ सुधार नहि तोहि विना जु होई,
तू ही करै हि सुरझार उधार सोई॥१०१॥

तू ही सुठाकुर प्रभू जगदीश राया,
लोकेश लोक परिपूरण रूप भाया।
औरै कुठाकुर सवै नर देव सर्वे,
झूठी विभूति लखि मूढ वृथा जु गर्वे॥ १०२॥

तू ही सुढार सुभ रूप कुढार औरा,
तो कौं सवै सधि प्रभु जग कौ हि मौरा।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तू ही सुदारण महादुखहार देवा,
तू ही सुधारण हमैं प्रभू दै स्व सेवा॥ १०३॥

तू ही सुतारक भवोदधि पोत स्वामी,
तू ही सुमारग निरूपण रूप नांमी।
तू ही सुदर्शन विभासक दृश्य रूपा,
तू ही सुग्यान घन शुद्ध स्वरूप भूपा॥ १०४॥

— छंद भुजंगी प्रयात —

सुनासीर भाष्यो जु इंद्रो सुरेंद्रो, तुझी कौं रटैं देव तू है मुनिंद्रो।
चहैं नांहि दासा सुनासीर लोका, विरक्ता जगद्भोग थी ग्यान थोका॥ १०५॥

सुपर्णा समाना तिहारे सुदासा, जिनौं कौं लखैं काल नागा जु नासा।
ग्रसै काल लोकैं न दासैं प्रभूजी, सही काल जीता सुदासा विभूजी॥ १०६॥

सुवर्णा नही है सुवर्णा गुसांई, तु ही है सुवर्णा सुरूपा असांई।
सुतो नांहि काहू हि कौं तू अनादि, सुता सर्व तेरे तु ही तात आदी॥ १०७॥

तु ही सूर चंदा हतै अंधकारा, प्रकासी सदा तत्व रूपी अपारा।
जपै सूर चंदा भजैं जू फनिंदा, तु ही कोटि सूर्याधितेजो मुनिंदा॥ १०८॥

तु ही सूक्षमो जाहि कोऊ न जांनैं, तु ही थूल थूलो अनंतत्व मांनैं।
नही सूक्षमो तू हि थूलो हु नांही, अमूर्त्त स्वरूपो तुही सर्व मांही॥ १०९॥

तु ही सूनृतो सत्य रूपो अरूपो, प्रभू तूही सूरीश्वरो है अनूपो।
जपैं सूरि तोकौं उपाध्याय धोकैं, रटैं साध तोकौं हि जे चित्त रोकैं॥ ११०॥

तू ही सर्व सूचै सदानंद सांई, प्रभू तू हि चिद्रूप रूपो गुसांइ।
हरै पंच सूना दयापाल तू ही, तु ही शुद्ध अध्यात्म रूपो प्रभू ही॥ १११॥

महासूत्र भासी महातंत्र स्वांमी, तू ही सूतबंधो असूत्रो अनांमी।
तु ही देव सूधौ तुझै सर्व सूझै, सदा सूधि धारै तु ही सर्व ठूझै (बूझै)॥ ११२॥

इहै जीव सूतौ महानीद मांही, जगावै तु ही देव संदेह नांही।
स्वतत्व प्रसूती तिहारी सुभाषा, महा ज्ञान वैराग्य रूपी सुसाषा॥ ११३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

— सोरठा —

मधु मांसादि भखैं हि, ते सठ सूतिग रूप निति।
करुणाभाव लखैं हि, भक्ति पंथ तेई लहै॥ ११४॥

— छंद त्रिभंगी —

प्रभू तू हि यथेष्टो, विभु अति प्रेष्टो है जु स्थेष्टो, थिर देवा।
गुन सेना कौ पति, अति हि महाछति, एकाकी अति, चर देवा।
कवहू नहि स्वेदा, तू हि अखेदा, परम अभेदा, अति सेना।
मुनि धारहि सेवा, हौं हि अछेवा, तू जगदेवा, अति देना॥ ११५॥

नहि स्वेत जु कृष्णा, तू अति विश्रा, जिनवर जिश्रा, अति नामा।
इक सेवित तू ही, सर्व समूही, अतुल प्रभू ही, अतिरामा।
तू ही भव सेता, ज्ञान जनेता, तत्व प्रणेता, जगराया।
तू विप्र सुधारै, क्षत्रिय तारै, सेठ उधारै, शिव दाया॥ ११६॥

— दोहा —

तुझै सेय भवि जन तिरैं, जगतारक तू देव।
सेस सुरेस नरेस सहु, धरहि तिहारी सेव॥ ११७॥

सेरी भव वन मैं इहै, अध्यातम सैली हि।
इह सैली पांयें प्रभू, रहै न वुद्धि मैली हि॥ ११८॥

या सैली करि शिव लहैं, भव वन कौं जल देय।
सैंण तिकेहि जु इह धरैं, लखिकैं सव जग हेय॥ ११९॥

तजि सैथल्य स्वभाव जे, द्रिढ चित्ता है धीर।
ते ईह सैली लहैं, स्वरस रसीले वीर॥१२०॥

— छंद मोती दांम —

तु ही जिन सोम सुद्रिष्टि प्रशांत, महा अति सोभित है अतिकांत।
सु सोलहवांन कहा जु सुवर्ण, तु ही अतिवांन अनंत अवर्ण॥१२१॥

नही कछु सोच न सोक न रोक, तु ही सुप्रसन्न महागुन थोक।
तु ही इक सोधउ साधनि सत्य, लख्यौ परपंच सवै हि अनित्य॥१२२॥

— दोहा —

सोहं सोहं धुनि सुनैं, जग धंधा छिटकाय।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तेई तेरौ पंथ लहिं, पावें चेतनराय॥१२३॥

सौरा शैवा सौगता, तो विन शिव न लभंत।
सौख्य मई गुन निधि तु ही, तो कौं साध चहंत॥१२४॥

सौम्य तु ही अति सौम्यता, तेरी दीन दयाल।
अति सौंदर्य अपार तू, अति सौजन्य रसाल॥१२५॥

तेरे सौंज अपार है, अति सौहार्द सुरूप।
अति सौरभ्य अलभ्य तू, ज्ञान लभ्य चिद्रूप॥१२६॥

सौध तिहारौ लोक सिरि, निज स्वभाव है सौध।
सौध तिहारे ज्ञेय सव, सव कौं सौध असौध॥१२७॥

अति सौभाग्यमई तु ही, कहिये कौं लग नाथ।
सौदामिनी सि जगत छति, तजि मुनि लें तुव साथ॥१२८॥

सौदामिनी विजुरी हि सो, भवमाया भकभूर।
तेरी भूति अनश्वरा, अति अनंत भरपूर॥१२९॥

— सवैया - तेइसा ॥ २३ ॥ —

संवर रूप अरूप अनूपम संयम धारक तू अति भारी।
संवर निर्जर मोख तु ही इक आश्रव वंध न तू अविकारी।

जीव अजीव सबै प्रतिभासई तू हि जु और न कोइ अपारी।
सुंदर रूप सुसुंदरता धर, तू जगसुंदर संत उधारी॥१३०॥

संग तजे सहु संचय त्यागि, तजे धन संपति संत महंता।
संसय मोह तजे सहु विभ्रम, तोहि रटैं मुनि तत्व लहंता।
संगति लोकनिकी तजि साध भजैं हि अवाध महा विलसंता।
संक न चित्त मझार धरैं मुनि ध्यान सुधारस रूप चखंता॥१३१॥

— कुंडलिया छंद —

चउविधि संघा जाहि कौं, भजैं सुचित्त लगाय,
मार्गदर्शी संचय तिनकें गुननि धर्यौ सकल त्रिलोकी राय।
सकल त्रिलोकी राय, संधि बंध न कछु जाकै,
संधि विभक्ति समास कारका नांहि जु ताकै।
सर्व विभास अनास, भासई लिंग जु त्रय विधि,
ध्यावैं तत्व स्वरूप जाहि कौं संघा चउ विधि॥१३२॥

क्रियमाणा अर संचिता, प्रारब्धा विनसंत,
संसय छांडि तुझैं भजैं, आनंदा विकसंत।
आनंदा विकसंत, संत ही पावैं भेदा,
संघ उधारक तू हि, नाथ है अति निरखेदा।
तू संवित्ति स्वरूप, संपदा रूप सुजाणा,
तुम नांमैं विनसंत, संचिता अर क्रियमाणा॥१३३॥

— दोहा —

सं कहिये सम्यक सदा, तू सम्यक निज रूप।
तेरै संबंध जु नही, परपंचनि कौ भूप॥१३४॥

संग्या संख्या लक्षणा वहुरि प्रयोजन नाथ।
सर्व विभासै शुद्ध तू, भेदाभेद सुसाथ॥१३५॥

संकट हरन सुपास तू, दूरि नही जग सार।
तू संदेह वितीत है, संसारार्णव तार॥१३६॥

संसारी तैं सिद्ध है, तौरई परसाद।
संभव तू ही असंभवो, धरइ जु नांहि बिषाद॥१३७॥

जे संसार सरीर तैं, अर भोगनि तै नाथ।
विरकत ह्वैं सुमुनीश्वरा, ते हि लहैं तुव साथ॥१३८॥

संप्रदाय तेरी सही, जा करि शिव सुख होय।
भव संतान अनंत तैं, तारक तू प्रभु सोय॥१३९॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संपा विजुरी कौं कहैं, तदवत चंचल देह।
संपादक निज ज्ञान कौ, चेतन तत्व विदेह॥१४०॥

संप्रदान अधिकर्ण अर, अपादान अर कर्ण।
करता करम जु षट विधि, कारक रूप अवर्ण॥१४१॥

संध्या अभ्र समांन है, भव तन भोग विभूति।
इनसौं जे ममता धरैं, भव मैं धरैं प्रसूति॥१४२॥

संध्या तीन मझार जे, तोहि भजैं चित लाय।
अहनिसि ध्यांन समाधि की, सिद्धि लहैं ते राय॥१४३॥

संवेगादिक गुणधरा, ध्यांवैं तोहि मुनिंद।
तू असंग सरबंग है, केवल रूप जिनिंद॥१४४॥

सत संगति तैं पाईए, तेरी भक्ति दयाल।
शिव संगम कौ मूल है, तेरी सेव कृपाल॥१४५॥

— सोरठा —

सः कहिये सो जीव, धन्य धन्य है जगत मैं।
तोहि रटैं जु अतीव, तेरौ ह्वै निज रस लहै॥१४६॥

सः शूली कौ नांम, शूली रुद्र त्रिशूल धर।
सो ध्यावै तुव धांम, तू सब करि पूजित प्रभू॥१४७॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

समरस पूरित तू, सागर गुननि कौ हि,
सिद्धि ऋद्धि वृद्धि कौ सुआगर अनंत है।
सीमंधर सीमंकर सुष्टता प्रकाशक तू,
सुनासीर ध्यावैं जाहि देव भगवंत है।
सूत्र कौ विभासक जो, सेत भव सिंधु की हि,
सैली कौ महंत महा, सोमद्रिष्टि संत है।
सौध नांहि देह नांहि व्यापि रह्यो लोक मांहि,
संतनि कौ नायक जो सः प्रकास तंत है॥ १४८॥

— छंद कुंडलिया —

तेरी नाथ सुसंपदा, महासुसंपति जोय,
संकट हरनी सिद्धि जो, लक्ष्मी कहिये सोय।
लक्ष्मी कहिये सोय, होय जो अतुल अनंता,
अनुभूती सुविभूती, स्वच्छता तेरी संता।
साकृति नाकृति रूप, तो समा क्रांति घणेरी,
भाषैं दौलति ताहि, संपदा नाथ सु तेरी॥ १४९॥

इति सकार संपूर्ण। आगैं हकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

हरि हरं महावीरं, हार निहार सन्निभं।
हितं हिरण्य गर्भं च, हीन दीनादि पालकं॥ १॥

हुताष्टकर्म संघातं, दीप्तं हुतभुजोपमं।
पुरहूत पतिं देवं, हूं मंत्राक्षर भासकं॥ २॥

हेम रूपं महाशुद्धं, हैमाद्या भरणातिगं।
कर्म होमकरं धीरं, देवं ध्यानाग्नि दीपकं॥ ३॥

हौंत्रिकं पाप हंतारं, हंस वर्गै निषेवितं।
हः मंत्राक्षर रूपं च, वंदे देवं सदोदयं॥४॥

— दोहा —

हर्ष रूप आनंद घन, हर्ष विषाद वितीत।
हर हरि जिनवर देव तू, हरि हर पूजि अजीत॥५॥

— छप्पय —

हर स्वामी हर नाथ, तोहि हल धर अति सेवैं,
हृदय कमल मैं तोहि, साधु धरि शिव सुख लेवैं।
हत विरोध तू देव, तू हि हतराग विमोहा,
हृषीकेश जगतेस, नांहि तेरै परद्रोहा।
हरित न पीत न सेत रक्त, स्याम न तू घनस्याम है,
हरित काय न हि भक्ष भाषै, तू हृदयस्थ सु राम है॥६॥

हवि सुरूप सहु कर्म, तू हि होता जु अनादी,
ध्यानानल परगास, देव तू सब महि आदी।
हद बेहद तू देव, हद्द बांधै सहु तू ही,
रहै हद्द कै अंत, ज्ञान घन तूहि समूही।
नहि हसइ न तूसइ रूसई, नित्य प्रसन्न अनंत तू,
हम कौं हु देहु निज भक्ति प्रभु, हृष्ट तुष्ट भगवंत तू॥७॥

हठ योगी हठ योग, तू हि हठकरि अघ खंडै,
हणै कर्म सब भर्म, कांम क्रोधादि विहंडै।
हच्छपकरि वडहच्छ, तारि तू हमहि गुसांई,
हति पातिग हरि देव, लोभ मोहादि असांई।
हटकि चित्त जे तोहि ध्यावैं, अटकि रहैं नहि जगत मैं,
हटैं राग मोहादि तिनतैं, ते गनियें तुव भगति मैं॥८॥

हड षोडे कौ नांम, एहि हड सम भवकूपा,
यातैं काढि दयाल, देहु निरवांन अनूपा।

हस्ति न घोटक भृत्य, नांहि स्यंदन शिवकादी,
चाहैं केवल भक्ति, रावरी सव महि आदी।
तू चैतन्य अमूरतातम, ज्ञान स्वरूप अनूप है,
लोकेस लोक परमाण तू, पुरषाकार स्वरूप है॥ ९॥

हस्त मांहि सहु वस्तु, अस्त विनु उदय स्वरूपा,
हसत वदन जगनाथ, धीर तू वीर अरूपा।
हसिवौ खिजिवौ नांहि, तू हि विनु राग द्वेषा,
अलख अमूरति देव, सेव दै शुद्ध अलेषा।
करि स्व हजूरी मोहि नाथा, दे समीपता आपंनी,
हरि भ्रांति देहु सम्यक्त तू, टारि मूरछा पापंनी॥ १०॥

हारद तू हि दयाल, और नहि हारद कोऊ,
तेरी हाक सुनैंहि मोह मिलक सम होऊ।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
हानि न वृद्धि न कोय, तू हि है नित्य अखंडित,
हानि वृद्धि परकास, तू सदा अतिगुन मंडित।
हास्यादिक तैं रहित देवा, निरमोही निरवांन तू,
हाव न भाव विलास विभ्रम, योग युगति परवांन तू॥ ११॥

हांतौ पारयौ नाथ, कर्म नैं मेरौ तोतैं,
छांडैं नांही संग नादि तैं ए जड मोतैं।
हाथ पकरि अव देव, खैंचि लैं अपनैं पुर मैं,
हार समान जु होय, तू हि वसि हरि मुझ उर मैं।
हाटक तैं अति विमल तू ही, है विराट कौ नाथ तू,
हारद योगीश्वरनि कौ है, रहै निरंतर साथ तू॥ १२॥

हार न मुकट न कटक, नांहि को अंगद तेरै,
तू निरग्रंथ दयाल, मोह माया नहि नेरै।
तू ही हिरण्य सुनाभि, नाभि कौ पुत्र कहावै,
प्रभू हिरण्य सु गर्भ, अर्भ को तू न लखावै।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अर्भक बालक नाम कहिये, तू बालक नहि कोय कौ,
अजर अजोनी शंभु स्वामी, तू हि तात सब लोय कौ॥ १३॥

तु ही हिरण्य सुवर्ण, तो समो नांहि सुवर्णा,
हितमित बैंन दयाल, तू हि है हितु अवर्णा।
हिमकर पति जग जोति, तू हि हिमगिरि सौ देवा,
हिमता हर हर देव, देहु चरननिकी सेवा।
वसहु हिये मैं ज्ञान रूपा, हिरदै की चक्षु खोलि तू,
हि कहिये निश्चै स्वरूपा, हरि हरि हमरी भोलि तू॥ १४॥

हिवडै तिष्टि सुदेव, तारि लै जगत प्रपाला,
हिम ऋतु सम जड भाव, टारि मोतैं सुकृपाला।
हींकार मय रूप, तू हि है ऊँकारा,
तू श्रीं बीज स्वरूप, सर्व बीजाक्षर पारा।
ह्रीदायक तू ह्री प्रपूजित, श्री ह्री धृति कीरति सवै,
बुद्धि जु कमला तोहि सेवैं, राग दोष तोतैं दवैं॥ १५॥

हीरा मांनिका लाल, अवर पुखराज जु पन्नां,
मूंगा मोती बहुरि फुनि सुलीलम गनि लिन्नां।
रतन लसनियां होय, नव जु ए रतन सुप्रगटा,
तीन रतन विनु सर्व, रतन दीसैं अति विघटा।
सम्यग दरसन ज्ञान चरनां, रतनत्रय एई सही,
परमराग पुखराग प्रमुखा संध्याराग जु समल ही॥ १६॥

हींसैं अति सुतुरंग, बार बारन बहुगज्जहि,
सेवहि अति सुनरिंद, द्वार वादित्र सुवज्जहि।
सज्जहि अति भट शूर, जिनहु कौं सेवहि सब जन,
ऐसे चक्रीनाथ, तोहि सौं लावैं निजमन।
तुव कारणि सब जगत तजि कैं, भजहि नरोतम दास हैं,
तव पावैं तुव पंथ देव, राग दोष द्वय नास हैं॥ १७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

हीये [illegible] माँहैं,
  लहैं हीन परजाय, पापिया संसैं नाँहैं।
अतिहि हीनता रूप, भूप इह भव की माया,
  याते पार उतारि, देहु अविनश्वर काया।
तेरे दास उदास भव तैं, ज्ञान क्रिया मैं निपुण हैं,
  व्रत्त प्रवत्तक भक्ति रूपा, तिन सम और जु कवण हैं॥ १८॥

हींग जु होय अभक्ष, हाट कौ सीधौ निंद्यं,
  चरम चालनी छाज, चर्म घृत तेल हु निंद्यं।
चंदोवा है जोग्य गृही कौं भोजन पाने,
  पूजा दांन सुज्ञान तूहि भासेइ प्रमाने।
हुतकर्मा हुतभर्म तू ही, तू होता भव भाव कौ,
  हुलसै हि चित्त तो देखतां, तू खेवट गुन नांव कौ॥ १९॥

हु कहिये प्राक्रत्त मांहि है परगट नामा,
  तू हि प्रगट जगदीस, ईश है अतुलित धांमा।
हूं अति रुलिउ अनंत, काल भव व्रन महि तो विन,
  अव निसतारि दयाल, तू हि प्रभु तमहर कर दिन।
हेत अहेत जु त्यागि जग सौं, हेत करैं तो सौं मुनी,
  हेम रूप तू रहित काई, तो विनु हेय सवै दुनी॥ २०॥

हेय कहावै त्याग, जोग जे वस्तु पराई,
  परद्रव्य जु नहि लीन, एक निजरस सुखदाई।
आतम विनुसव हेय, एक आदेय स्वरूपा,
  हेयाहेय सवै हि, तू हि भासइ जग भूपा।
तैंरै हेय न एक दीसै, तू हि उपादे वस्तु है,
  हे नाथ तारि भव सिंधु तैं, तू तारक परसस्त है॥ २१॥

हेकड मल्ल अवीह, हेतु शिव कौ इक तू ही,
  हेत अहेत न लेत, एक निज भाव समूहि।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महा

हेला मात्रैं तू हि, जीव कौं करइ उधारा,
हेठलि तैंरै सर्व, गर्व हर तू हि अपारा।
हेला शीघ्र जु नाम कहिये, तू हि शीघ्र भवतार है,
हेला लीला नाम कहिये, लीला धर तू सार है॥ २२॥

लीला ज्ञान विभूति, और को लीला नांही,
हेर्यो तोहि मुनीनि, राचिया तो ही मांही।
हेम सुकामिनि त्यागि, त्यागि सहु रागर दोषा,
तेरे होय सुदास, मानमद करहि जु सोषा।
माया काया सौं न नेहा, एक नेह करि तोहि सौं,
भव्य अनंता पार पहुंता, रहित हुवा जे मोह सौं॥ २३॥

— दोहा —

पार न पहुंचै ज्ञान विनु, ज्ञान भगति विनु नांहि।
भगति दया विनु नांहि कहुं, दया मोम चित्त मांहि॥ २४॥

जे अभक्ष भोजन करैं, पीवैं जेहि अपेय।
करहि अगम्यागम्य जे, ते करणा नहि लेय॥ २५॥

चित राखैं कोमल सदा, बोलहि हित मित वैंन।
तन मन करि दुख देंहि नहि, तेदयाल बुधि नैंन॥ २६॥

— छप्पय —

हेडा कहिये मांस, मांस सहु होय अभक्षं।
वे ते चउ पंचिंदि जीव जंगम नहि भक्षं।
थावर होय सुभक्ष, मांस रक्तादि न जामैं।
अन्न वीण जल छाण, भेद भासइ तू तामैं।
अन्न वारि लघु अशन करिकैं, त्यागि अभक्षा सब जिके।
तोहि भजैं मन शुद्ध होई पार होई भवतैं तिके॥ २७॥

भरत हैमवत हरि जु, क्षेत्र फुनि महा विदेहा।
रम्यक अर हैरण्य, वत सु अैरावत जेहा।
सप्त क्षेत्र ए नाथ, दीप जंबू मैं भासैं।
सर्व दीप कौ देव, एक तू अतुल प्रकासैं।
है तू ही जु उधार ईसा, और न तोसौ दूसरौ।
तू हि ज्ञान आनंद रूपा, तो विनु सव जग धूसरौ॥ २८॥

ह्वै तोतैं सव सिद्धि, ऋद्धि कौ सागर तू ही।
हौता पापनि कौ हि, होमई कर्म समूही।
मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
होइ तिहारी और, करइ कौ सुरनर नागा।
तू थिर चर कौ नाथ, भासइ ज्ञान विरागा।
होत सवै सुख तोहि सेयें, तू सुख दुखतैं रहित है।
तू आनंद सुकंद स्वामी, गुन अनंत तैं सहित है॥ २९॥

होनहार अर भूत, वर्तमान जु सव जांनैं।
तोतैं कछु न परोखि, तू हि रागादिक भांनैं।
होय सकल कल्यांण, तोहि तैं अंतर जामी।
होहु होहु भवतार, नाथ तू हमरौ स्वामी।
हो हो जिनवर देव देवा, सुनि विनती जगनाथ जी।
साथ देहु अपनौं निरंतर, भवदुख पावक पाथ जी॥ ३०॥

होवै ध्यांन मझार लीन चित्त जु मुनि जन कौ।
तोतैं भेद रहै न, भव्य जीवनि के मन कौ।
अभवि न पांवैं तोहि, ज्ञानघन अमृतघन तू।
चिदघन अतन अमांन, देव जगजीवन जिन तू।
होठ न हालै कर न फिरई, वयण उचारो नां हुवै।
सोहं सोहं अतुल मंत्रा, जपि अजपा तोहि जु छुवै॥ ३१॥

हौ तू ही जगनाथ, होयगौ तू हि निरंतर।
है तू ही परतक्ष, लक्ष अत्यक्ष अनंतर।

हीं सठ जगत मझार, हौस करि विषयनि केरी।
रुलिउ अनंतउ काल, भक्ति भाई नहि तेरी।
हिंसादिक अपराध करि कैं, नर्क निगोदादिक लही।
विनु भजन रावैं कुमति लहि, कुगति अनंती मैं गही॥ ३२॥

— सोरठा —

अव दै भगति दयाल, भव संकट हरि नाथ जी।
भगत वछिल तू लाल, भगत करै भगवंत जी॥ ३३॥

हंस नाव है भानु, भानु ससि तेरे दासा।
हंस पति तू देव, मोह मद तिमर विनासा।
परम हंस मुनिराज, तू हि हंसनि कौ सरवर।
हंस पखेरू जाति, तिन समा उज्जल मुनिवर।
क्षीर नीर ज्यौं जीव जड कौ, भेद करैं यतिवर प्रभू।
हंस जीव सवही कहांवैं, तू जीवनि कौ गुर विभू॥ ३४॥

हं मंत्राक्षर तू हि, मंत्रमय मूरति तेरी।
परम समाधि सु तंत्र, भूति सहु तेरी चेरी।
हां हीं हूं हौं हः जु, परम तू मंत्र स्वरूपा।
हिंसा ध्वांत उछेदा करण तू भांनु अनूपा।
कहा हंस की चाल अैसी, जैसी चाल सुरावरी।
हंस अनंत उद्योत धर प्रभु हरहु जु भ्रांति विभावरी॥ ३५॥

हंत कहावै खेद, खेद नहि तैरै कोई।
तू निस्वेद अभेद, देव निरवेद सु होई।
दुखहर तू हि मुनिंद, दोषहर तू हि अनंदा।
तू हि काल हर देव, कंट हर तू हि जिनिंदा।
सकल कुविद्या हरणहारा, है दारिद्र हरो तुही।
हः मंत्राक्षर रूप भूपा, सर्वाक्षर तू ही सही॥ ३६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

हरिकै तु ही जु हारि हारल की लाकरी है,
हित मित वायक तू, नायक सु ज्ञायका।
हीरा मनि मानक जे हीन सहु कंकर ए,
हुलसैं न इनैं पाय, तेरे निज पायका।
हूं तौ सठ भूलौ तोहि, हे प्रभु सुधारि मोहि,
है त्रिलोकनाथ देव ऋद्धि सिद्धि दायका।
होता सव कर्मनि कौ, हौस नांहि तैं कोऊ,
हंस देव हः स्वरूप, सर्व वात लायका॥ ३७॥

— कुंडलिया छंद —

तेरी नाथ स्व हर्षता, धरै न हर्ष विषाद,
गुन अनंत रूपा महा, सो लछिमी अविवाद।
सो लाछमी अविवाद, ऋद्धि सिद्धि परसिद्धि,
नही हीनता होइ, स्वानुभूति परिवृद्धि।
सत्ता ज्ञान विभूति, संपदा संपति ढेरी,
भाषैं दौलति ताहि, हर्षता नाथ सु तेरी॥ ३८॥

इति हकार संपूर्ण। आगै क्षकार का व्याख्यान करै है।

— श्लोक —

क्षमाधारं रमानाथं, क्षांति रूपं महाबलं।
क्षिप्त रागादि संतानं, क्षीण मोहं जगद्गुरुं॥ १॥

क्षुद्रैरलभ्यमीशानं, क्षूं मंत्राक्षर भासकं।
क्षेत्राधिपं त्रिलोकेशं, क्षैमं धर्म प्रकाशकं॥ २॥

क्षोणीधरं महाधीरं, क्षौमालंकारवर्जितं।
क्षंताधिपं सदाशांतं, क्षः प्रकाशं नमाम्यहं॥ ३॥

— गाथा —

क्ष क्कहिये क्षम नामा, क्षम समरत्था तुही प्रभू सवला।
अवला लखहि न धामा, तैंरे अवला न पुत्राद्या॥१॥

क्षत्कहिये क्षय नामा, क्षय हर तू ही सु अक्षयो स्वामी।
क्षत्क्षांती फुनि रामा, तू हि क्षमा मूल क्षम देवा॥२॥

तू क्षय कौ क्षयकारा, क्षति तल मध्ये सुपूजनीको तू।
तू हि क्षमा धन धारा, रोग क्षयी नासका तू ही॥३॥

क्षमी क्षमाधन धामा, समरथ तो सौ न दूसरौ कोई।
भ्रांति क्षपाहर रामा, क्षपा निसा नाम वुध भाषैं॥४॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तोहि क्षपाकर सेवैं, दिनकर सेवैं सुरिंद अति सेवैं।
तुव भजि मुनि शिव लेवैं, क्षमा धरा तू हि धरणीशा॥५॥

तू क्षरिवे तैं रहिता, अक्षर तू ही अक्षरातीता (तू)।
अति क्षपणक गण सहिता, क्षपक श्रेणी हि दाता तू॥६॥

क्षत पीरा कौ नामा, क्षत हर तू ही जु क्षत्रियाधीशा।
क्षति नहि तेरै रामा, क्षति नाथा तू हि जगनाथा॥७॥

क्षणिकमती नहि पांवैं, गांवैं तोकौं मुनी क्षमावंता।
भव्य जना अति भांवैं, वीरा तू क्षत्रवटि पूरा॥८॥

क्षपित कलंका तू ही, क्षण क्षण ध्यांवैं यतीश्वरा संता।
सुद्ध सुवुद्ध प्रभू ही, क्षपाकरा कोटि नख मांहैं॥९॥

ज्ञान छतैं हैं मौंना, शक्ति छतां है क्षमा महा जिन कैं।
ते दासा नहि गौना, दांन करैं कित्ति नहि चांहैं॥१०॥

क्षति सम क्षमा जिनौं कैं, जल सम शांती सुवह्नि सी क्रांती।
पवन समांन तिनौं कै निसंगतता हि ते भक्ता॥११॥

निर्मल नभ सा दासा, ध्यांवैं तोकौं प्रसन्न चित्ता जे।
ते केवल परकासा, पावै तेरे हि परभावैं॥१२॥

— सवैया —

क्षांत प्रशांत सुदांत तुही प्रभु, कांत अपार सुक्षायक दाता।
क्षांति प्रकाशक भासक ज्ञान सुक्षायक सम्यक रूप उदाता।
क्षांम नही तु हि क्षाम कहैं कृश, तू अति पुष्ट प्रवीन प्रमाता।
क्षार समुद्र सुआदि अनेक, पयोनिधि भासइ तूहि विख्याता॥१३॥

क्षालन हार सवै अघकौ तु हि, तोहि प्रक्षालन हार न कोई।
क्षार पयोधि समांन इहै भव, तू गुन सागर अमृत सोई।
क्षिष्ट परे सहु कर्म कलंक तिहारहि दासनि पैं वल खोई।
क्षिप्त किये परभाव विभाव सुदासनि कैं परपंच न होई॥१४॥

— छप्पय —

क्षिषु हिंसायां नाथ, भासई पंडित लोका।
हिंसासम नहि पाप, ए हि सव अघ कौ थोका।
हिंसक लहइ न भक्ति, जीव रक्षक तुव दासा।
दया समान न धर्म, भाषई केवलि भासा।
क्षीण कलंक प्रक्षीण वंधा, क्षीर समुद्र प्रसिद्ध कर।
क्षीर श्राविणी ऋद्धि धारा, ध्यांवैं तोहि मुनिंद वर॥१५॥

क्षीयमाण नहि तू हि, वीर तू वर्द्ध जु माना।
क्षीण शरीर न होय, पुष्ट तू सुख तन ज्ञाना।
क्षीरादिक रस त्याग, तपधरा तपसी ध्यांवैं।
क्षीरोपम तू विमल, विमल ह्वै मुनि जन पांवैं।
क्षीर नीर ज्यौं जीव जड कौं भेद भाव लखि योगिया।
लहि व्रह्म ज्ञान तोकौं लखैं, अनुभव रस के भोगिया॥१६॥

— दोहा —

ज्ञान क्रिया करुणानिकौ, तेरी भक्ति निदान।
तेरे भक्त न आदरैं, वस्तु अखांन अपांन॥१७॥

— छप्पय —

क्षुद्र पात्र कौ क्षीर, नीर हू तिन के घर कौ।
कवहु न लेवौ जोग्य, कांम नहि उत्तम नर कौ।
काचौ दूध अजोगि, कवहु अचवैं नहि भक्ता।
द्वै घटिका पहलीहि, उश्न करनौं हि प्रयुक्ता।
भेड उष्टरी कौ न क्षीर, श्रुति वर्जित दास न ग्रहैं।
मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
तजि क्षुद्र भाव शुभ भाव धरि, दास दरस तेरा चहैं॥ १८॥

— कुंडलिया छंद —

तो मैं नांहि विभिन्नता, क्षुद्र न पांवैं तोहि,
क्षुद्र कर्म क्षुण जु किये, दै अनुभव रस मोहि।
दै अनुभव रस मोहि, तू हि है देव अवस्त्रा,
क्षुरिकादिक नहि कोइ, रावरै शस्त्र जु अस्त्रा।
तोहि भज्यो नहि नाथ, ज्ञान वैराग्य न मोमैं,
अव दै केवल भक्ति, भिन्नता नांहि वि तोमैं॥ १९॥

— छंद —

क्षुधा त्रिषाधिक दोषा नांही, क्षुल्लक भाव न तेरै।
क्षुत्रिट हरै मुनिनि की तू ही, समता भाव जु प्रेरै॥ २०॥

क्षुल्लक एलि उभै विधि भासै, एकादस पडिमा मैं।
तू नहि क्षुल्लक एलि न मुनिवर, केवल सिद्ध दसा मैं॥ २१॥

क्षुत न जंभाई खास न सासा, देवनि कै वुध भाषैं।
तू देवनि कौ देव जगत गुर, मुनि हिरदा मैं राखैं॥ २२॥

क्षूं मंत्राक्षर भासक तू ही, मंत्र मूरती देवा।
क्षेत्रपती क्षेत्राधिप सांई, क्षेत्री क्षेत्र अछेवा॥ २३॥

क्षेत्रपाल क्षेत्रज्ञ गुसांई, सव क्षेत्रनि की जानैं।
क्षेमंकर क्षेमंधर स्वांमी, तत्वातत्व वखांनै॥ २४॥

क्ष्वेड कहावे विष कौं नांमा, विषधर तोहि जु ध्यावैं।
विषधर शंभू अर पारवती, तेरौ ही गुन गांवैं॥ २५॥

विषधर नाग नागपति तेरा, गुन गावै अति रसना।
क्ष्वेड सुधा ह्वै तुव परसादैं, तू अति अमृत विसना॥ २६॥

तू हि अभिन्न व्यापकौ स्वामी, निजगुन पर्यय मांही।
भिन्न व्यापको सकल ज्ञेय मैं, राग दोष मैं नांही॥ २७॥

तातै विश्नु सदाशिव तू ही, ब्रह्म गणेश महेशा।
सुगत बुद्ध दिनकर तमहर है, शक्ति स्वरूप जिनेशा॥ २८॥

क्षेप विक्षेप न तेरै कोई, करै कर्म विक्षेपा।
तत्वबोध कै अर्थ प्रकासै, नय परमाण निक्षेपा॥ २९॥

— छंद पद्धडी —

क्षेत्र देह क्षेत्री जु जीव, तू जीवनाथ है जगत पीव।
क्षेत्र लोक क्षेत्री हि तू हि, तू सर्वक्षेत्र व्यापी प्रभू हि॥ ३०॥

तू देव क्षेम शासन सुमूल, तू क्षेम रूप त्रैलोक्य चूल।
क्षोणीधर भूधर तू दयाल, पृथ्वी अनंत तेरै विशाल॥ ३१॥

क्षोहणिदल सेना गुन अनंत, अक्षोभ तू हि राजै प्रसंत।
तू सर्व क्षोभ हर बोध धार, देवाधिदेव स्वामी अपार॥ ३२॥

तू क्षौम रहित भूषन वितीत, है देव दिगंबर अखिल जीत।
मुनि क्षौर विवर्जित लुंच केश, ध्यांवैं जु तोहि धरि नगन भेस॥ ३३॥

क्षंतउ दंतउ क्षांती स्वरूप, तू क्षाति (क्षति) विवर्जित लोकभूप।
है क्षाँ क्षीं क्षूं क्षौं क्षः विभास, तू मंत्री मंत्र स्वरूप भास॥ ३४॥

धर्मनि मैं आदि क्षमा जु नाथ, तू उत्तम क्षम भासक अनाथ।
तेरै न नाथ तातैं अनाथ, त्रैलोक नाथ अतिभाव साथ॥ ३५॥

अथ द्वादश मात्रा एक कवित्त मैं।

— सवैया - ३१ —

क्षमा कौ स्वरूप तू हि क्षायक स्वरूप नाथ,
क्षिष्ट परैं रागादिक तेरे ही सु ध्यांन तैं।

क्षीण मोह तू अक्षुण क्षुद्रभाव तैं विभिन्न,
क्षूँ प्रकाश मंत्र भास पूरण विग्यान तैं।
क्षेमंकर क्षेत्रनाथ क्षैम रूप क्षोणी नाथ,
क्षौमनांहि भूषन न तेज अति भान तैं।
क्षंतउ तू क्षांति रूप क्षः प्रकास है अनूप
भूप सव लोकनि कौ भिन्न छल मान तैं॥ ३६॥

क्षायक सम्यक भासिनी, पारिणामिका शक्ति,
मिथ्यारूप क्षपा हरै, अक्षुणा अव्यक्ति।
अक्षुणा अव्यक्ति, क्षुण कीये सव कर्मा,
क्षीर समाना विमल, चेतना भूति सुधर्मा।
क्षमा अंविका देवि, लछिमी रमा अमायक,
भासैं दौलति ताहि, भासिनी सम्यक क्षायक॥ ३७॥

स्वामी तेरी कांति जो, क्षांति रूप अति शांति,
सोई गौरी शुद्धता, नित्य प्रसन्न प्रशांति।
नित्य प्रसन्न प्रशांति, परम ज्योति द्युति आभा,
प्रभा प्रभावति सोइ, तत्वता वस्तु महाभा।
सत्ता सिद्धि विशुद्धि, ऋद्धि राधा अभिरामी,
स्यामा दौलति रूप, कांति जो तेरी स्वामी॥ ३८॥

— दोहा —

चेतन देव सुचेतना, देवी एक स्वरूप।
वह सुद्रव्य वह परणती, गुन रूपा चिद्रूप॥ ३९॥

नाम अनंत सुदेव के, देवी नांम अनंत।
आपुन मांहैं पाइए, भगवति अर भगवंत॥ ४०॥

सव अक्षर मात्रानि मैं, सकल ज्ञेय मैं देव।
देवी हू सव मैं लसै, विरला वुझै भेव॥ ४१॥

मणि सुवर्ण मैं क्रांति जो, तिन तैं भिन्न न जोय।
त्यौं वह दौलति द्रव्य तैं, है अभिन्न रस सोय॥ ४२॥

इति क्षकार संपूरणं। इति श्री भक्तयक्षर मालिका अध्यातम बार षडी नाम ध्येय उपासना तंत्रे सहश्रनाम एकाक्षरी नाम मालाद्यनेक ग्रंथानुसारेण भगवद्भजनानंदाधिकारे आनंदराम सुत दौलति रामेन अल्प बुद्धिना उपायनिकृते यकारादि क्षकारांत नवाक्षर प्ररूपको नांम पंचम परिछेद ॥ ५॥ इति ग्रंथ संपूरणं॥

— दोहा —

अक्षर मात्रा नादि की, करता सरवगि देव।
प्रतिकरता गनधर मुनी, परंपराय अछेव॥ १॥

सर्व ग्रंथ अक्षरमई, मात्रा रूप वखांन।
अक्षर मात्रा जे लखैं, ते पांवैं निरवांन॥ २॥

नांम अनंत अनादि के, अक्षर मात्रा रूप।
संसकृत प्राकृत्त मैं, गांवैं मुनिजन भूप॥ ३॥

या युग मैं बुधि घटि गई, नहि ग्रंथनि कौ ग्यान।
संसकृत प्राकृत कौ, विरला करै बखांन॥ ४॥

उदियापुर मैं रुचि धरा, कैयक जीव सुजीव।
प्रथीराज चतुर्भुजा, श्रद्धा धरहि अतीव॥ ५॥

दास मनोहर अर हरि, द्वै वखता अर कर्ण।
केवल केवल रूप कौ, राखैं एक हि सर्ण॥ ६॥

चीमां पंडित आदि ले, मन मैं धरिउ विचार।
बारषडी ह्वै भक्तिमय, ज्ञान रूप अविकार॥ ७॥

भाषा छंदनि मांहि जो, अक्षर मात्रा लेय।
प्रभु के नांम वषांनियें, समुझैं वहुत सुनेय॥ ८॥

इह विचार करि सव जना, उर धरि प्रभु की भक्ति।
वोलै दौलति रांम सौं, करि सनेह रस व्यक्ति॥ ९॥

बारषडी करिये भया, भक्ति प्ररूप अनूप।
अध्यातम रस की भरी, चरचा रूप सुरूप॥ १०॥

साधर्मिनि की देसना, लहि करि दौलति राम।
अविनासी आनंदमय, गायो आतम राम॥ ११॥

वसुवा कौ वासी इहै, अनुचर जय कौ जांनि।
मंत्री जय सुत कौ सही, जाति महाजन मांन॥ १२॥

न्याति खंडेल जु वाल है, गोत कासिलीवाल।
सुत है आनंदरांम कौ, जाकौ इष्ट दयाल॥ १३॥

गुरू दिगंबर साध हैं, वीतराग है देव।
दया धर्म कौ आंसिरौ, साधर्मिनि की सेव॥ १४॥

अध्यातम रौचीनि कौ, दासा मन वच काय।
भजन करै भगवंत कौ, भगति भाव चित लाय॥ १५॥

जय को राख्यो रांण पैं, रहै उदैपुर मांहि।
जगत सिंह किरपा करैं, राखैं अपुनैं पांहि॥ १६॥

छंद भेद जांनैं नहि, समुझि न ग्रंथनि मांहि।
अलंकार विज्ञान कौ, अलंकार हू नांहि॥ १७॥

कोसनि मैं लेस न धरै, परिचय काव्य न ज्ञान।
शब्द युक्ति परमागमा, ए त्रय धरे न कांन॥ १८॥

श्रुति सिद्धांत सुनें नहीं, देखे नांहि पुरांन।
पेखे नांहि कदापि हू, सिंगारादिक आंन॥ १९॥

स्व पर न समय लखाव कछु, लौकिक कला न कोय।
नहि पाई अनुभव कला, केवल चिनमय सोय॥ २०॥

योगाभ्यास अभ्यास नहि, यम नियमादिक आठ।
बूझि न तत्वातत्व की, सूत्र न शास्त्र न पाठ॥ २१॥

बुद्धिवल हू अैसौ नहीं, तपवल श्रुति वल नांहि।
दानादिक कौ बल नहीं, छल बल नांहि जु पांहि॥ २२॥

केवल अध्यातम धरा, रुचिधर प्रभु के दास।
दासनि के दासांनि की, क्रम रज शुभ मति भास॥ २३॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ताकी भक्ति प्रशाद तैं, पूरन कीनौं ग्रंथ।
वीतराग प्रभु गाइया, गायो भक्ति सुपंथ॥ २४॥

मंगल रूप अनूप प्रभू, मगंल करौ सदैव।
चउविधि संगनि कौं महा, तत्व प्रकासक देव॥ २५॥

धर्म प्रवरतौ वर्द्धतौ, जीव दयामय शुद्ध।
विघन टरौ संसार कौ, होहु दशा प्रतिबुद्ध॥ २६॥

— छंद —

दौलति करौ देहुरा वालौ, निरभय रूप अनूपा।
जिनदासनि के दास करौ प्रभु, अजित सुधर्म सुरूपा॥ २७॥

शंभु अदंभ अखंड धरापति, करौ नाथ अविनासी।
जादौं पति नियमादि सुनाथा, करौ राय सुखरासी॥ २८॥

जंबू दीप क्षेत्र है भरत जु, आरज खंड निवासा।
देस नांम मेवाड उदैपुर, रची तहां इह भासा॥ २९॥

संवत सत्रह सै अठ्याणव, फागुन मास प्रसिद्धा।
शुक्ल पक्ष दुतिया गुरवारा, भायो जगपति सिद्धा॥ ३०॥

जवै उत्तरा भाद्र नक्षत्रा, शुक्ल जोग शुभकारी।
वालव नामकरण तव वरतै, गायो ज्ञान विहारी॥ ३१॥

एक महूरत दिन जव चढियो, मीन लगन तव सिद्धा।
भगति माल त्रिभुवन राजा, कौं भेट करि परसिद्धा॥ ३२॥

अमल अचल अविनासी संपति, दौलति कमला पति तैं।
चांहहि ज्ञान चेतना परणति, थिरचर पति अति छति तैं॥ ३३॥

इति श्री भक्त्यक्षर मालिका अध्यातम बारषडी संपूर्ण। शुभं भवतु ॥श्री॥ संवत १८०० का भाद्रमासे कृश्नपक्षे तृतीय तिथौ गुरुवारे इदं अध्यात्म बारषडी दौलरांम कृत पं. महात्मा स्वेताबंर मया रांम महैपालाणी लिषतमस्ति ॥श्री:॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परिशिष्ट

ग्रन्थ में आये शुद्ध आत्मा के कतिपय नाम केवल राम, अनाम, हर (बंधन हरने वाला), हरी (पराक्रम रूप), दिनकर देव (अज्ञान अन्धकार हरने वाला), गणनायक, जगभूप, बुध (प्रतिबोधक), विरंचि (विधिकर्त्ता), जिनवर, मदनजीत, जगजीत, अभिराम, रम्यरमण, भगवान, ज्ञानवान, रमाकंत (स्वयं की शक्तियों के नाथ) चर, परम आल्हादक, सुरपति, क्षेत्राधीश, नरपति, आदीश, आदिपुरुष, संत, महंत, अनंत, अरिहंत, शुद्ध चेतना, आतमराम, अकाम, कामरूप (आनन्दमग्न), मतराम, सुंदर, सरस, विराम, विद्वान, महाराज, द्विजराज, भवनाव, क्षितिपालक, भयटालक, आखण्डल (एकछत्र स्वामी), क्षेत्रपाल (स्व-परक्षेत्र पालक), नटवरलाल (विमल भावों का नाटक करनेवाला), त्रिभंगी लाल (अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य का अवभासक), कृष्ण (सर्व भाव प्रकाशन करते हुए भी निजभाव का आकर्षक होने से कृष्ण), महारुद्र (कर्म शत्रु का नाशक होने से), अमर, ऊर्णनाभि (मकड़ी की भाँति पृ. २२-२३ पर 'आप ही मैं खेले तार सौं बहुरि सकौंचे सार' (१/१७), अवितर्क, ऊहापोह वितीत, देव (नित्य गुणों में रमने से कवि 'करे क्रीड भव सिंधु मैं तातैं जीव हु देव' तक कह देते हैं (५६/५)।)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी म

कठिन शब्दावली

पृ. २२-२३

असम = कोई बराबर नहीं
महासम = सबके बराबर अकेला
अलेसी = लेश्या रहित
अभू = अजन्मा
स्वभू = स्वयं से पर्यायों का उत्पाद
अरज = ज्ञानावरणादि रहित
विरज = विरक्त
अरुज = निरोग
फहा = फँसा
अब्दा = जल
अतनु प्रहारी = कामनाशक
भेवा = भेद, रहस्य
सुअनाश्री = किसी के आश्रय नहीं
अविगत = अविनाशी

पृ. २५ जनिजाश्री = निज वैभव में उत्पाद
भोगीसा = शेषनाग, धरणेन्द्र

पृ. २७ अछेप = बाधा रहित
विमोष = चोरी रहित
अषोभ = क्षोभ रहित

पृष्ठ	शब्द	अर्थ
	अनीन	= अन्यून, कम नहीं
	अच्छीन	= अक्षीण
	इकंग	= दिगम्बर
पृ. २७	अपात	= पतन रहित
	अधात	= धातु रहित देह
	अमाम	= ममता रहित
	अबाम	= स्त्री रहित
	अभाम	= स्त्री रहित
	अजूहो	= अभी है
	अपायो	= अप्राप्त
	प्रणीता	= कहा गया
	निकंद	= नष्ट करने वाला
	असोष	= चिन्ता रहित, शोषण रहित
	अबादी	= वचन रहित
	अथापो	= किसी ने स्थापना नहीं की
	दुपक्षो	= निश्चय व्यवहार-पक्षवाला
	ठाम	= स्थान
	विधात	= धातु रहित
पृ. २८	अपर	= अन्य
	अरुण	= सूर्य
	चार	= आचारण, परिणमन करने वाला
	अतुल अतूल	= भारी, हल्का
	नादि	= अनादि
पृ. २९	करा	= किरण
	सुगमक	= समझने में सरल
	अतिक्षम	= महासमर्थ
	क्षमाकर	= क्षमाशील
पृ. ३०	अलापित	= अलिप्त
	नागर	= चतुर
पृ. ३६	पाथा	= पानी
	आसेव्या	= सेवा योग्य
	छति	= शक्ति
पृ. ४३	असाथ	= अकेला
पृ. ४४	उपधि	= परिग्रह
	उतपथि	= गलत राह
पृ. ४५	उनमान	= अल्पता
	अपासि	= बंधन रहित
पृ. ५३	दायाद	= कुटुंबी
पृ. ६२	ओपासक	= उपास्य
	अंवर	= आकाश
	अमानो	= अनंत
	ऊपनी	= उत्पन्न हुई
पृ. ७४	कैतव	= छल
	करमामय	= कर्मरूपी रोग
	धू	= उडाने वाला, ध्वसं करने
पृ. ७५	कदरजता	= कंजूसी
	हरत	= हरा होना, खुश होना
	कलभ	= हाथी
	खोघा	= इन्द्रियों में लिप्त
पृ. ८५	खात	= सेंध
	खुभ्यो	= प्रविष्ठ
	खुटे	= छूटे
	खुस्यो	= छीना गया
	मदत्ती	= मस्ती
	खेल	= पानी की खेल
	क्षोणी	= पृथ्वी
	खैरलभ्य	= इन्द्रियों से अप्राप्त
पृ. ८८	गमक	= ज्ञान
	ग्राम	= गाँव, समूह
	ग्रामणी	= गाँव का स्वामी

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृ. ९० गिरानाथ = बृहस्पति
गिरपति = सुमेरू
गिलै = निगलता है
धरधारी = धारकों को धारण करनेवाली
अमाय = असीम
धुरु = गाडी का धुरा
पृ. ९२ छंद = कपट, छंद
पृ. ९३ गंज = मौहल्ला, बाजार
गंजै = गंजा करना
गंतव्यं = जाना चाहिए
पृ. ९४ धूसरौ = धूल भरा
पृ. ९८ उद्र = उदर, पेट
पृ. ९९ सिखी = मोर
घौरक = घुडक
चंचत्कांचरन = चमकता हुआ सोना
पृ. १०२ चतुः शरण = आरहत, सिद्ध, साहू और केवली कथित धर्म रूप चार शरण
पृ. १०५ चारचारी = आचार का आचरण करनेवाला
निकूपा = निकम्मा
चार = दूत
पृ. १०६ असक्ती = आसक्ती, राग
वोट = आड
चीलै = मार्ग
घालि = छोड़कर
पृ. १०७ वादि = बेकार
पृ. ११० भोर = भ्रम
पृ. ११४ छक = लालसा
छन्न = ढका हुआ
दादिका = दाद, शाबासी
छिपा = रात्रि
छिनक प्रवादी = बौद्ध
छिक छाक = छिद्र, दोष
छोति = क्षति
पृ. ११७ छीतल = शिथिल
पृ. ११८ क्रम = चरण
पृ. १२० जात रुपाभ = स्वर्ण की चमक
जुटित = जुडे हुए
क्रमाब्ज = चरण कमल

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मांन = नाप
पृ. १२१ जहै = छोड़े
भिषक = वैद्य
चित्र = अद्भुत
पृ. १२२ जातुचित = किंचित
जित = विजयी
पृ. १२३ डेदर = मेंढक
पृ. १२४ जुवो = अलग
जेहली = आलसी
जेर = हल्के
पृ. १२५ जैत = जीत
जौन्ह = चाँदनी
पृ. १२६ झषध्वज = कामदेव
पृ. १२७ झांण = ध्यान
झिकाय = तृप्त
करिमा = कालिमा
पृ. १२९ झोक = ऊंघ
पृ. १३० भूति = वैभव, राख
पृ. १३८ ठट्ट = ठाठ, वैभव
ठालिय = ठालापन, फालतूपन्त
पृ. १३९ ढूणा = औलंभा
पृ. १४२ डाबा = ओंस
डाबर = गड्ढा
पृ. १४३ डूडूगर = जादूगर

	अब्द	= बादल
पृ. १४६	ढाहा	= तट
	ढाण	= कुये का ढाणा
पृ. १५२	णीय	= नीति
	अणीइ	= अनीति
	मुय	= छोड़ दे
पृ. १५३	तूप	= स्तूप
	हर्म्यावली	= भवनों की पंक्ति
पृ. १५४	तपनीय	= स्वर्ण
	तटिनी	= नदी
पृ. १५६	ताणै	= लक्ष्य लेते हैं
	त्रिदशाधिप	= देवों की स्वामी
पृ. १५८	तुल	= समान
	हुतभुग	= अग्नि
पृ. १५९	तेह	= तेज
पृ. १६७	दवियान	= दबनेवाले,
	दत्तव	= दाता
पृ. १६९	द्विप	= हाथी
पृ. १७३	दंगल	= जंगल
पृ. १७५	धिषणा	= बुद्धि
पृ. १७६	धज	= धीरज
पृ. १८१	नाकपति	= इन्द्र
पृ. १८७	पिनाकि	= महादेव
	पिडच	= प्रत्यंचा
	पिधान	= वस्त्र
पृ. १९२	निकूप	= दुष्ट
पृ. २००	फीटी	= थोथी
पृ. २०२	वर्मा	= रक्षक
पृ. २०७	विहाय	= आकाश
पृ. २०८	चेता	= ज्ञाता
पृ. २१०	वैवस्वत	= काल
पृ. २११	तापह	= ताप नष्ट करने वाला
पृ. २२७	यियासी	= इच्छा
पृ. २४९	क्लम	= संक्लेश
पृ. २५३	देसा	= उपदेश
पृ. २६५	व्रीडा	= लज्जा
पृ. २६७	षंड	= नपुंसक
पृ. २७०	स्थवीयान	= अचल
पृ. २८६	हच्छपकरि	= हस्तक्षेपकारक
पृ. २८८	वारन	= हाथी
पृ. २९०	क्षौम	= रेशमी वस्त्र

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज